इकाई – 1 – शरीर संगठन

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 शरीर संगठन एक परिचय
    1.3.1 शरीर की सबसे छोटी इकाई – कोशिका
    1.3.2 कोशिका का समूह – ऊतक
    1.3.3 शरीर के विभिन्न भाग
1.4 शरीर के विभिन्न संस्थान
    1.4.1 ज्ञानेन्द्रिय संस्थान
    1.4.2 अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र
    1.4.3 मांसपेशी संस्थान अथवा पेशीय संस्थान
    1.4.4 पोषण या पाचक संस्थान अथवा आहार तंत्र
    1.4.5 श्वासोच्छवास संस्थान अथवा श्वसन संस्थान
    1.4.6 मूत्रवाहक एवं मलत्याग संस्थान या उत्सर्जन तंत्र
    1.4.7 रक्त वाहक संस्थान अथवा परिवहन तंत्र
    1.4.8 अंतस्त्रावी तंत्र
    1.4.9 लसिका तंत्र
    1.4.10 वातनाड़ी संस्थान अथवा तंत्रिका तंत्र
    1.4.11 उत्पादक संस्थान अथवा प्रजनन तंत्र

1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ माना गया है, किन्तु इस देह को प्राप्त करने में कुछ विशेष शुभ संकल्पों अथवा कर्मो की आवश्यकता होती है। ऋषि और मनीषियों का मानना है, कि यह जन्म और शरीर विभिन्न जन्मान्तरों के पुण्यों का परिणाम होता है।

लौकिक दृष्टि से कहें अथवा **आध्यात्मिक दृष्टि** से मनुष्य का अपने लक्ष्य के लिये अथवा मुक्ति को प्राप्त करने के लिये स्वस्थ मन एवं शरीर की नितान्त आवश्यकता होती है। **शास्त्र में कथन है –**

''शरीरंमाद्य खलु धर्म साधनम्''

अर्थात् यह शरीर **धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष** का साधन है। दूसरे शब्दों में शरीर के माध्यम से ही मनुष्य इन चारों पुरूषार्थो को प्राप्त कर सकता है।

शरीर को परिभाषित करते हुय **आचार्य चरक** का कथन है –

''शीर्यते इति शरीरम्''

अर्थात् निरन्तर विनाश को प्राप्त होने के कारण इसे शरीर कहा गया है, मनुष्य शरीर के अन्दर दो प्रकार की क्रियाए सदैव चलती रहती है। **निर्माण संबधी तथा विनाश संबधी** , शरीर की कोशिकायें जो शरीर की सबसे छोटी इकाई है, अपनी पूर्ण आयु अथवा पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेने पर स्वतः ही नष्ट हो जाती है, और उनके स्थान पर नयी कोशिकाओं का निर्माण होता है। बाल्यावस्था में यह निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया तेज होती है तथा विनाश सम्बन्धी प्रक्रिया धीमी होती है। निर्माण संबधी प्रक्रिया के फलस्वरूप यह शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है, वृद्धि को प्राप्त करता हुआ युवा बन जाता है। युवावस्था में ये प्रक्रियायें लगभग समान रहती हैं। तथा उस समय यह शरीर कुछ समय के लिये एक सा बना रहता हैं। परन्तु वृद्धावस्था में निर्माण की प्रक्रिया की अपेक्षा विनाश की प्रक्रिया तेज होती जाती है। परिणामस्वरूप यह शरीर धीरे – धीरे घटता जाता है। इस प्रकार निरन्तर विनाश को प्राप्त करता हुआ यह शरीर अन्त में वृद्धावस्था के उपरान्त मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। और मृत्यु को प्राप्त होना उसका धर्म तथा यह संसार की नियती भी है।

इस प्रकार अनेक छोटी – छोटी इकाईयों से मिलकर बना यह मानव शरीर उत्कृष्टता की अनमोल कृति है। प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई में आप मानव शरीर संगठन का अध्ययन करेंगे व जानेंगे कि मानव शरीर कैसे कार्य करता है। तथा कितने भागों में विभाजित है।

1.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ❖ शरीर संगठन के बारे में अध्ययन कर सकेंगे।
- ❖ शरीर के मुख्य संस्थानों के बारे में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।
- ❖ शरीर के मुख्य संस्थानों के कार्यो को समझ सकेंगे।
- ❖ प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिये गये प्रश्नों के उत्तर दे पाने में सक्षम हो सकेंगे।

1.3 शरीर संगठन – एक परिचय –

मनुष्य शरीर अनेक अवयवों का सम्मिलित रूप है। जिस प्रकार एक मशीन अनेक कलपुर्जो से मिलकर बनी है। उसी प्रकार हमारा शरीर भी अनेक अंग अवयवों से मिलकर बना है।

तथा इस शरीर का संचालन स्वयं मनुष्य की इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है, जब तक उसमें प्राण होते है, और मशीन का संचालन मनुष्य के ऊपर ही निर्भर करता है, क्योंकि वह निश्प्राण होती है।

हमारा शरीर अनेकों कोशिकाओं से मिलकर बना है। शरीर की सबसे छोटी इकाई **कोशिका** होती है। ये कोशिकायें शरीर में असंख्य मात्रा में होती है। कोशिकाओं को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के माध्यम से ही देखा जा सकता है। इन कोशिकाओं मे स्वयं वृद्धि करने का गुण पाया जाता है। मनुष्य का जन्म केवल दो कोशिकाओं की वृद्धि से ही होता है।

प्रिय विद्यार्थियों, ये कोशिकायें हैं क्या? यह जानने के लिये इनका विस्तृत अध्ययन करना अनिवार्य है –

1.3.1 शरीर की सबसे छोटी इकाई – कोशिका (Cell)

प्रत्येक कोशिका एक तरल (जैली) पदार्थ से बनी है। उसे **जीवद्रव्य** कहते हैं। जीवद्रव्य के बीच में एक **केन्द्रक** होता है। केन्द्रक, कोशिका का महत्वपूर्ण भाग होता है। केन्द्रक जनन आदि क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है, केन्द्रक में **Genes** होते है। ये **R.N.A** तथा **D.N.A** से मिलकर बनती है। ये जीन्स पैतृक गुणों के संवहन का कार्य करते हैं, इनके द्वारा ही कोशिका अपने जैसी अन्य कोशिकायें उत्पन्न करती है। कोशिकायें विकास के कुछ समय बाद नष्ट भी होती है, तथा फिर पुनः नयी कोशिका का निर्माण होता रहता है। इस तरह कई कोशिकायें मिलकर ऊतक का निर्माण करती हैं।

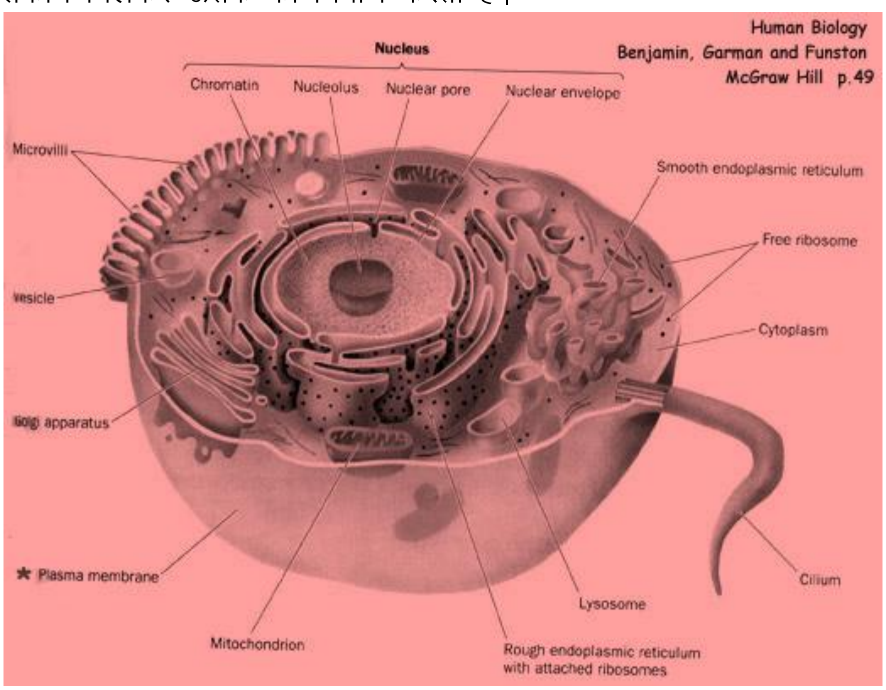

1.3.2 कोशिका का समूह – ऊतक (Tissue)

मनुष्य शरीर में भिन्न – भिन्न कार्यो का सम्पादन अलग – अलग प्रकार की कोशिकाएं करती है। एक ही प्रकार की बहुत सी कोशिकाओं से मिलकर जो संरचना बनती है, वह ऊतक कहलाता है।

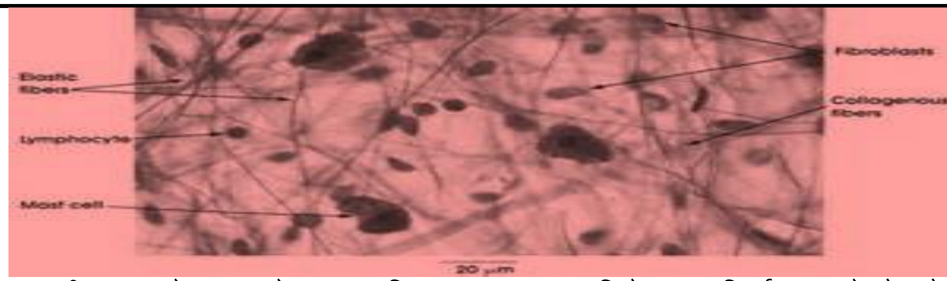

एक ही तरह के बहुत से ऊतक मिलकर एक अंग विशेष का निर्माण करते हैं, जैसे शरीर में मस्तिष्क के निर्माण में तंत्रिका कोशिकायें भाग लेती हैं, इनसे पहले **ऊतक** बनता है और फिर ऊतकों के समूह से मिलकर **मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र** का निर्माण करते हैं। रचना के अनुसार ऊतक **(Connective Tissue)** जो शरीर के अंगों को परस्पर जोड़े रखने में सहायक है, अस्थि ऊतक जो कि अस्थि का निर्माण करते हैं, **उपकला ऊतक (Epithelial Tissue)** त्वचा या अंगों की बाहरी त्वचा का निर्माण करता है। इसी प्रकार **तंत्रिका ऊतक तथा पेशी ऊतक** अपना – अपना कार्य करते हैं, बहुत से ऊतक मिलकर शरीर के अंग और शरीर के तंत्र **(System)** का निर्माण करते हैं, और इन तंत्र **(System)** से मिलकर पूरे शरीर का निर्माण होता है।

1.3.3 शरीर के विभिन्न भाग–

प्रिय विद्यार्थियों, मानव शरीर के चार मुख्य भाग होते है। मानव शरीर के चार प्रमुख भागों का विवरण इस प्रकार है –

1. **सिर** – मानव शरीर का महत्वपूर्ण भाग मस्तिष्क के भी दो भाग किये जा सकते हैं। जिनमें (**1**) **खोपड़ी** तथा (2) **चेहरा** दो भागों में बॉटा जा सकता है।
   - **(I) खोपड़ी** – खोपड़ी सिर के ऊपरी तथा पिछले भाग की हड्डी का वह आवरण (कोष्ठ) है जिसमें '**मस्तिष्क**' सुरक्षित रहता है। खोपड़ी के इस भाग को कपाल भी कहा जाता है।
   - **(II) चेहरा (Face)**– चेहरा के अन्तर्गत **नाक, कान, आँख, मुख तथा ललाट** व दोनों **जबड़ों** की गणना की जाती है। ज्ञानेन्द्रियों में चार चेहरे के अन्तर्गत आती है।
2. **ग्रीवा (Neck)** – गर्दन सिर को धड़ से जोड़ती है। ग्रीवा सिर तथा धड़ के बीच का भाग है, गर्दन के पीछे **रीढ़ की हड्डी** तथा आगे की ओर **टैंटुआ** तथा इनके मध्य में **ग्रास नली** स्थित है। इस प्रकार शरीर के इस छोटे से भाग में भोजन प्रणाली के अंग तथा श्वसन संस्थान के अंग स्थित रहते है।
3. **धड़ (Trunk)** – गर्दन के नीचे का भाग धड़ कहलाता है। धड़ के दो उपविभाग हैं– (1) **ऊपरी भाग वक्षस्थल (2) निचला भाग पेट (उदर)** कहलाता है।

   धड़ के इन दोनों भागों को विभाजित करने वाली एक पेशी है, जिसे **डायफ्राम** कहते है। यह पेशी धड़ के मध्य में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली होती है।

वक्षस्थल के अन्तर्गत **फेफड़े तथा हृदय** मुख्य अंग हैं, तथा उदर में **आमाषय, यकृत, प्लीहा, वृक्क (गुर्दे), छोटी तथा बड़ी आँत तथा श्रोणि मेखला** स्थित है।

4. **शाखायें(Limbs)** – धड़ के ऊपरी भाग से दो शाखाए (हाथ) कन्धों की हड्डियों से जुड़े रहते हैं। इनके भी दो उप विभाग हैं – दायाँ (Right) बायाँ (left) धड़ के

निम्न भाग में **श्रोणी मेखला** से दो शाखायें अर्थात् टाँगों के भी दायें व बायें दो भाग हैं।

1.4 शरीर के विभिन्न संस्थान –

प्रिय विद्यार्थियों, हमारा शरीर अनेक अंगों से मिलकर बना है। इन अंगों के द्वारा शरीर के अनेक कार्यो का सम्पादन होता है। शरीर के उन भागों को जो किसी कार्य विशेष को करते हैं, उन्हें अंग कहते हैं। प्रत्येक अंग की अलग क्रियायें (Function) होती हैं, जैसे **पैर का चलना, हाथ द्वारा पकड़ना, आँखों का देखना, आमाशय द्वारा भोजन को पचाना** आदि क्रियायें होती है।

अनेक अंग समूह मिलकर किसी एक विशेष कार्य को करते है। तब उन क्रियाओं के कार्य समूह को संस्थान कहा जाता है। इस प्रकार अनेक अंग मिलकर एक संस्थान **(System)** बनाते है, और अनेक संस्थान मिलकर एक शरीर बनाते हैं। इस प्रकार मनुष्य शरीर में मुख्य ग्यारह (11) संस्थान **(System)** माने गये है।

1.4.1 ज्ञानेन्द्रिय संस्थान –

हमारे शरीर के वह अंग जिनसे हमें अपने चारों ओर के परिवेश का ज्ञान प्राप्त होता है। उन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है। हमारे शरीर में ज्ञानेन्द्रियों की संख्या 5 है। **आँखें, नाक, कान, जिह्वा तथा त्वचा,** इन ज्ञानेन्द्रियों का सीधा संबध हमारे देखने, सूघने, सुनने, स्वाद तथा स्पर्श आदि पाँच संवेदनों से होता है। इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों से मिलकर ही ज्ञानेन्द्रिय संस्थान बनता है। आँख के कार्य सम्पादन में विभन्न भाग कार्निया, उपतारा (Giris) तथा पुतली (Pupil) तथा (Ratina) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है तथा हमें देखने संबधी संवेदना की अनुभूति होती है।

,कान की संरचना को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है, एक **वाह्य, मध्य तथा आंतरिक कान।** वाह्य कान ध्वनि तरंगों को मध्य कान तक पहुँचाता है, तथा मध्य कान यह तरंगों को आन्तरिक कान तक पहुँचाता है।

गंध का ज्ञान कराने वाली ज्ञानेंन्द्रिय नाक के दो प्रमुख भाग होते है – पहला बाहरी तथा दूसरा आंतरिक। घ्राण संवेदना का अहसास कराने वाले कोश आंतरिक नाक में उपस्थित नासिका गुहा में होतें है। यही कोश गंध युक्त पदार्थो से निकलने वाले सूक्ष्म वाष्पमय कणों से प्रभावित होकर संबधित संवेदना को मस्तिष्क केन्द्रों के घ्राण शिरा तक पहुँचाते है, जिसके फलस्वरूप हमें गंध का अहसास होता है।

स्वाद का ज्ञान कराने वाली ज्ञानेंन्द्रिय जिह्वा में स्थान – स्थान पर गड्ढ़े तथा उभार होते हैं, जिनमें स्वाद कलिकाएँ होती है। जिह्वा की नोक पर उपस्थित स्वाद कलिकाएँ मिठास का तथा पश्च भाग में स्थित कलिकाएँ कड़वेपन, पार्श्व किनारों में स्थित कलिकाएँ खट्टेपन तथा मध्य और आगे के भाग में स्थित कलिकाएँ नमकीनपन के स्वाद का अहसास कराने में सहायक होती है। जो भोजन हम ग्रहण करते है वे लार में अच्छी तकरह मिलकर जिह्वा के स्वाद तंतुओं के द्वारा स्वाद कोशों में पहुँचता है। यहीं स्वाद कोश संवेदना से उत्तेजित होकर अपनी उत्तेजना स्वाद कलिकाओं तक पहुँचाते है। जिसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क की सहायता से विभिन्न स्वादों का अहसास कराते है।

त्वचा **स्पर्श, ताप, शीत, दबाव और पीड़ा का ज्ञान** कराने वाली इंद्रिय है। त्वचा की तीन परत निम्न है – 1. बाह्य 2. मध्य 3. आंतरिक । सभी परतों में अलग – अलग प्रकार

के स्पर्श संबधी संवेदना कोश उपस्थित होते है। यही कोश उपर्युक्त पदार्थो से उत्तेजित होकर भिन्न – भिन्न प्रकार के स्पर्श संबधी संवेदन का आभास कराते है।

1.4.2 अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र –

मनुष्य शरीर का अधार **अस्थि तंत्र** ही है। यह अस्थि तंत्र ही **मांस, त्वचा, धमनियों, शिराओं, स्नायु व शरीर के सभी कोमल अंगों** को सुरक्षा देता है। मानव शरीर को आकार प्रदान करना, शरीर की सन्धियों को व्यवस्थित करना तथा शरीर को कार्य करने तथा चलने – फिरने आदि के योग्य बनाना यह कार्य अस्थि तंत्र द्वारा सम्पादित होता है।

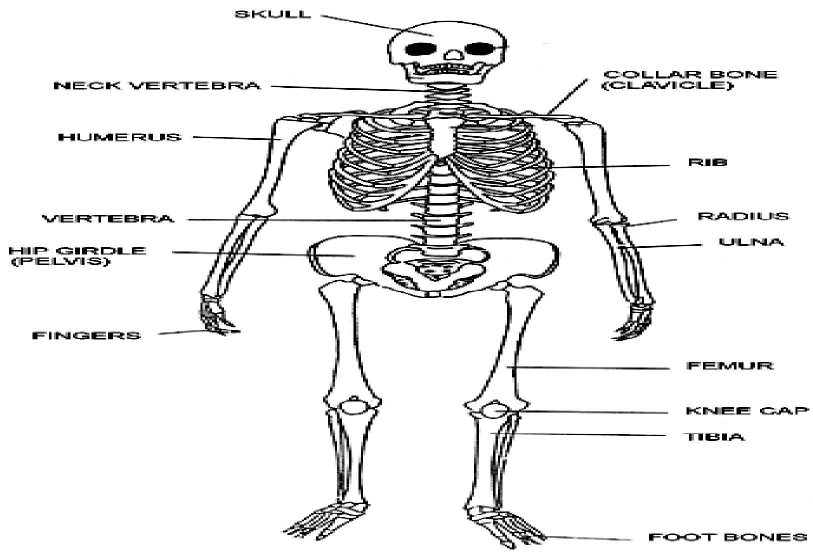

अस्थि तंत्र लगभग **206 हड्डियों** से मिलकर बना है। ये हड्डियाँ आपस में जुड़कर मजबूत ढाँचे का निर्माण करती है। अस्थियों के विकास के लिये **कैल्शियम, फास्फोरस जैसे खनिज लवण तथा विटामिन 'सी'** और 'डी' आवश्यक होते है। अस्थि पंजर में कुछ हड्डियाँ लम्बी, कुछ चपटी, कुछ गोल, कुछ टेढ़ी – मेढ़ी और कुछ बेलनाकार होती है। हड्डियों की लम्बाई – चौड़ाई भी अलग – अलग पायी जाती है। शरीर में हड्डियों का भार शरीर के भार का प्रायः 16वां हिस्सा होता है।

अस्थि तंत्र में हाथों की ऊपरी भुजा कंधों से जुड़ी होती है। कंधे से जुड़ी एक हड्डी जिसे **ह्यूमरस (Humorous)** कहते है, का ऊपरी सिरा कंधे के जोड़ से जुड़ा रहता है। कंधे के जोड़ में सामने की ओर **कालर बोन (Caller Bone)** तथा पीछे की ओर त्रिभुजाकार हड्डी **(Scapula)** होती है। कोहनी के जोड़ से ह्यूमरस का निचला हिस्सा जुड़ा रहता है। इस जोड़ में नीचे **(Radius)** और अलना **(Alna)** नामक दो हड्डियाँ होती है, ये मिलकर **अग्रभुजा** का निर्माण करती है। इसके निचले सिरे कलाई की हड्डियों से जुड़े रहते हैं, तथा इनसे अंगुलियों की तीन – तीन हड्डियाँ जुड़ी रहती हैं। मेरूदण्ड, जिसमें गर्दन की सबसे पहले कशेरूका स्थित है, गर्दन की पहली कशेरूका से खोपड़ी जुड़ी होती है। इसके कई भाग होते हैं। जैसे **कपालास्थि,** जिसमें **मस्तिष्क** होता है, तथा सामने की ओर दो गहरे गड्ढे **(Orbit)** होते है। जिसमें नाक की हड्डी होती है। नाक के नीचे ऊपरी जबड़ा **(Mandible)** होता है तथा इस ऊपरी जबड़े के ठीक नीचे दूसरा जबड़ा (निचला जबड़ा)

होता है। जो कान के पास की टेम्पोरल **(Temporal)** हड्डी से निकले हुये सिरों के दोनों ओर जुड़ा होता है। दोनों जबड़ों में 16 – 16 दाँत हड्डियों के बने खाँचों में लगे रहते है।

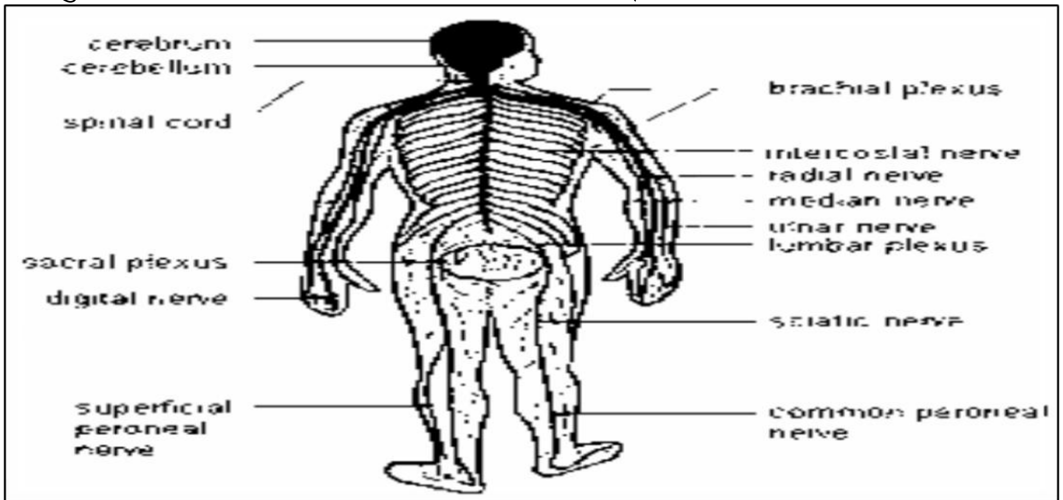

पसलियों के 7 जोड़े स्टर्मम **(Sternum)** से जुड़े होते है, और पीछे की ओर ये पसलियाँ वक्ष की कशेरूकाओं से जुड़ी होती है। नीचे वाली दो जोड़ी पसलियों के अग्रभाग स्वतन्त्र होते है, धड़ में श्रोणी **(Pelvis)** की अस्थियां दो समान भागों की बड़ी अस्थियों से मिलकर बनती है। पीछे की ओर ये क्रम से जुड़ी होती है। इनके दोनों तरफ से कूल्हे के जोड़ों से जांघ की लम्बी बेलनाकार हड्डी जुड़ी होती है। जो फीमर **(Femur)** कहलाता है। फीमर का निचला सिरा घुटने के जोड़ द्वारा टिबिया **(Tibia)** और फिबुला **(Fibula)** नाम की दो लम्बी अस्थियों से जुड़ा होता है। इन दोनों के निचले सिरे एवं पैर के पंजे की हड्डियाँ मिलकर **Ankle Joint** या पंजे का निर्माण करती है। पैर के पंजे में 5 मेटाटारसल **(Metatarsal)** और टारसल **(Tarsal)** अस्थियाँ होती है। इनमें पैर छोटी – छोटी अंगुलियों की हड्डियाँ जुड़ी रहती है।

1.4.3 मांसपेशी संस्थान अथवा पेशीय संस्थान – मांस संस्थान अथवा पेशी संस्थान **(Muscular System)** मनुष्य शरीर मांस पेशीय संस्थान के कारण ही सुन्दर तथा सुडौल दिखाई देता है। क्योंकि शरीर का ऊपरी ढाँचा पूर्णतः मांसाच्छादित होता है। मनुष्य शरीर का अधिकांश वाह्य तथा आन्तरिक भाग मांसपेशियों से ढका रहता है।

'मांस' अथवा **'मांसपेशियाँ'** लसदार समूह का नाम है। मांसपेशियाँ एक – एक मांससूत्र होती है या मांस का गुच्छा होती है। मांसपेशियां में संकोचन एवं शिथिलन का विशेषगुण होता **है**। संकोचन के विशेष गुण के कारण ही हम अपने हाथ – पैर सिर व अन्य शारीरिक अवयवों को विभिन्न दिशाओं में सरलतापूर्वक घुमा सकते हैं, जैसे – **हाथों से लिखना, पैरों से चलना, मुँह खोलना – बंद करना, हृदय का धड़कना, आँखों की पुतलियों का इधर – उधर होना, सिकुड़ना** आदि कार्य भी इन्हीं मांसपेशियों के विशेष गुण से ही सम्भव है।

मनुष्य शरीर में छोटी – बड़ी लगभग कुल **519 मांसपेशियां** पायी जाती हैं। मांसपेशियों दो प्रकार की पायी होती है।

1. **एच्छिक पेशी (Voluntary)**
2. **अनैच्छिक पेशी (Non Voluntary)**

1. **<u>एच्छिक पेषी (Voluntary)</u> –**

पाठको जैसा नाम से स्पष्ट है जिन पेशियों पर हम अपनी इच्छाानुसार परिवर्तन कर सकते है।ऐच्छिक पेशी वे होती है, जो मनुष्य की ईच्छानुसार कार्य करती है, ये स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती रहती है। मनुष्य इन्हें अपनी इच्छानुसार चला सकता है। ऐच्छिक पेशी जिन्हें पराधीन मांसपेशी भी कहते है।

2. **<u>अनैच्छिक पेशी (Non Voluntary)</u> –**

पाठको अनैच्छिक पेशीय स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती रहती है। मनुष्य अपनी इच्छानुसार इन्हें नहीं चला सकता है। ये पेशियाँ दिन – रात अपना कार्य निरन्तर करती रहती हैं। जैसे – **हृदय, श्वसन संस्थान, अग्न्याशय, अन्न नली** आदि की माँसपेशियाँ अपना कार्य करती रहती है।

मनुष्य शरीर की मांसपेशियाँ जितनी सुदृढ़ होती है। मनुष्य का शरीर मांसपेशियों को सुदृढ़ होने के कारण ही सुगठित, सुन्दर और शक्तिशाली होता है। मांसपेशियों से शरीर को उष्णता प्राप्त होती है। अनैच्छिक मांसपेशी जिन्हें स्वाधीन मांसपेशी भी कहते हैं,

1.4.4 पोषण या पाचक संस्थान अथवा आहार तंत्र –

पाचन संस्थान के अन्तर्गत मुख, अन्न नलिका, अग्न्याशय, पक्वाशय, क्लोम ग्रन्थि (अग्न्याशय) पित्ताशय, यकृत, छोटी आँत, बड़ी आँत आते है। पाचन तंत्र विभिन्न खाद्य पदार्थो का पाचन कर शरीर के लिये उपयोंगी बनाता है। जिससे शरीर उनका उपयोग ऊर्जा एवं बृद्धि के लिये कर सके।

जब किसी खाद्य पदार्थ को मुँह में दाँतों द्वारा चबाया जाता है, तो इस दौरान मुँह में उस भोज्य पदार्थ में लार ग्रन्थियों से लार निकलकर उसमें मिल जाती है। लार खाद्य पदार्थ को गला देती है। जिससे खाद्य पदार्थ आसानी से आमाशय में चला जाता है।

आमाशय एक बड़ी थैलीनुमा होता है, जब आमाशय में लार मिला भोजन पहुँचता है, तब आमाशय की दीवारों की ग्रन्थियों में मौजूद **हाइड्रोक्लारिक अम्ल** निकलकर भोजन में मिलता है। तत्पश्चात लगभग 3–5 घंटे में इसे पक्वाशय में भेज दिया जाता है। पक्वाशय में यह भोजन कुछ पतला (लेई जैसा) आता है, इसमें **पित्ताशय** से **पित्त रस** यहाँ आकर मिलता है। पित्त और पक्वाशय से निकले रस से भोजन फिर क्षारीय बन जाता है। इसके बाद भोजन छोटी आँत में आता है। पचे हुये भोज्य पदार्थो का छोटी आँत की दिवारों द्वारा अवशोषण होता है, तथा यह भोजन आँतों में होने वाली गति से आगे बढ़ता जाता है। छोटी आँत लगभग 6–7 मीटर लम्बी होती हे। तथा इसके द्वारा भोजन के प्रायः सभी आवश्यक तत्व अवशोषित कर लिये जाते है। इसके बाद पचा हुआ भोजन बड़ी आँत में पहुँचता है। बड़ी आँत में भी कुछ मात्रा में पानी व लवण का अवशोषण होता है। बड़ी आँत में यह क्रिया 5–6 घंटे तक चलती है। इस क्रिया के पश्चात् पचा हुआ आहार मल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जो उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। मनुष्य शरीर को भोजन के पाचन द्वारा **शर्करा, प्रोटीन, वसा, विटामिन्स, खनिज लवण** व **पानी** आदि प्राप्त होते है। भोजन के पाचन में लगभग 14 – 18 घंटे तक का समय लग जाता है।

1.4.5 श्वासोच्छावास संस्थान अथवा श्वसन संस्थान –

श्वसन संस्थान के अन्तर्गत श्वसन संबधी यन्त्र तथा **नाक, स्वरयन्त्र (Larynx) श्वसन नलिका (Wind Pipe) व फेफड़े (Lungs)** आते हैं।

इस संस्थान के मुख्य कार्य दूषित रक्त को शुद्ध करके प्राणवायु **(Oxygen)** प्रदान कर पूरे शरीर को शुद्ध करना है। जिससे कि समस्त अंग सुचारू रूप से अपना कार्य कर सकें।

मनुष्य भोजन और पानी के बिना कुछ समय जीवित रह सकता है , किन्तु 'श्वास' के बिना एक भी पल जीवित नहीं रह सकता है। जिस क्रिया द्वारा बाहरी वातावरण से शुद्ध प्राण वायु अर्थात् ऑक्सीजन **(O2)** को ग्रहण किया जाता है, तथा शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न कार्बन–डाईऑक्साइड **(CO2)** अशुद्धियों को शरीर से बाहर निकाला जाता है। उसे श्वसन क्रिया अथवा **'श्वासोच्छवास क्रिया'** कहते हैं। प्रत्येक जीव जगत के समस्त जीवित प्राणी में क्रिया स्वाभाविक रूप से चलती रहती है। यह क्रिया यदि बंद हो जाए तो मृत्यु हो जाती है।

श्वसनतंत्र में **नाक, श्वास नलिका एवं फेफड़े** शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त **डायफाम, वक्ष** और **उदर** की पेशियाँ भी श्वसन क्रिया में सहायता करती है।

जब ताजी हवा फेफड़ों में भर जाती है, तब वह बारीक रक्त नलिकाओं के माध्यम से रक्त के सम्पर्क में आती है। तथा इस दौरान रक्त में कार्बन – डाईऑक्साइड वाष्पशील हानिकारक पदार्थ निकल जाते हैं। उसमें ऑक्सीजन मिल जाती है।

मनुष्य सामान्य तौर पर एक मिनट में 16 से 24 बार श्वास लेता है, और छोड़ता है, तथा छोटे बच्चों में यह क्रिया और जल्दी – जल्दी होती है। नवजात शिशु एक मिनट में 40 बार श्वांस लेता है, और छोड़ता है। श्वांस की गति दौड़ने, काम करने या अन्य तरह के परिश्रम करने से भी तेज होती है। क्योंकि परिश्रम करते समय शरीर को अधिक मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, और इसकी आपूर्ति से श्वसन क्रिया तेज हो जाती है।

1.4.6 मूत्रवाहक एवं मलत्याग संस्थान या उत्सर्जन तंत्र –मनुष्य शरीर में स्वस्थ रहने, जीवित रहने के लिये प्रकृति ने पोषण व निष्कासन जैसी महत्वपूर्ण प्रणाली बनाई है। इस प्रणाली के शरीर में ठीक प्रकार से कार्य ना करने पर शरीर से वर्ज्य पदार्थ बाहर नहीं निकल पाते है, जिससे शरीर रोगों का घर बन जाता है। भोजन के पाचन होने से तथा कोशिकीय प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जो कोशिकाओं की टूट – फूट होती रहती है। इस टूट – फूट एवं मरम्मत की क्रिया के फलस्वरूप शरीर में बहुत से दूषित पदार्थ एकत्र होते रहते है। इन दूषित पदार्थो को शरीर विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा उत्सर्जी अंगों से बाहर निकालता रहता है। इन्हीं उत्सर्जी अंगों से मिलकर उत्सर्जन संस्थान का निर्माण होता है। इन अंगों में **त्वचा, वृक्क, फेफड़े, बड़ी आँत, मूत्राशय** एवं **मलाशय** इत्यादि आते हैं। त्वचा से अतिरिक्त जल एवं दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निष्कासित होते है। वृक्क रक्त से मूत्र, अम्ल, जल आदि को निष्कासित करता है तथा फेफड़े से कार्बन–डाईऑक्साइड एवं बड़ी आँत अनुपयोगी (दूषित) भोजन को शरीर से बाहर निष्कासित करती है।

1.4.7 रक्त वाहक संस्थान अथवा परिवहन तंत्र (Circulatory System) –रक्त वाहक संस्थान अथवा परिवहन तंत्र या परिसंचरण तंत्र प्रमुख रूप से हृदय और रक्त नलिकाओं से मिलकर बनता है। रक्त वहिकाएं समस्त शरीर में फैली होती हैं। रक्त वहिकाएं रक्त संचरण का कार्य करती है।

हृदय रक्त संचरण की क्रिया का सबसे प्रमुख अंग है। यह एक **नाशपाती** के आकार का मांसपेशी की एक थैली जैसा होता है। हृदय को शरीर का **पम्पिंग स्टेशन** कहा जाता है, क्योंकि हृदय की मांसपेशियों के द्वारा ही रक्त का परिसंचरण होता है।

मनुष्य का हृदय विशेष तरह की मांसपेशियों का बना होता है। यह दो भागों **बायें तथा दायें भागों** या **प्रकोष्ठों** में बंटा होता है। इन दोनों भागों का आपस में कोई संबध नहीं होता है। ये दोनों भाग ऊपरी तथा निचले दो हिस्सों में बटे रहते हैं और इन दोनों भागों के बीच में कपाट या वाहक **(Valves)** होते है, जो एक ही ओर खुलते हैं। इनसे रक्त ऊपर के प्रकोष्ठ से आ तो सकता है, लेकिन वापस नहीं जा सकता है। इस प्रकार हृदय में 4 प्रकोष्ठ होते है।

बायें प्रकोष्ठ में शुद्ध रक्त होता हैं जो (बायें निचले प्रकोष्ठ) **बायें निलय** के संकुचल से, धमनियों द्वारा समस्त शरीर में संचारित होता है। अशुद्ध रक्त दायें प्रकोष्ठों में रहता है, जो शरीर की समस्त शिराओं द्वारा आता है। यह रक्त **दायें निलय** (दायें निचले प्रकोष्ठ) के संकुचन से **फुफ्फुस धमनी (Palmonary Artery)** द्वारा फेफड़ों को भेज दिया जाता है। फेफड़ों में श्वसन क्रिया द्वारा रक्त को ऑक्सीजन प्रापत होती है, और कार्बन–डाईआक्साइड निकलती है। फेफड़ों में जब रक्त शुद्ध हो जाता है, तब उसे फुफ्फुस शिराओं द्वारा बायें ऊपरी प्रकोष्ठ में भेज दिया जाता है, वहाँ से बायं निलय द्वारा फिर समस्त शरीर में संचारित हो जाता है। इस तरह मनुष्य शरीर में **परिसंचरण** की क्रिया चलती है।

1.4.8 अंतस्त्रावी तंत्र –

इस तंत्र के अन्तर्गत अंतस्त्रावी ग्रन्थियाँ आती है। इन ग्रन्थियों से महत्वपूर्ण और उपयोगी हारमोन्स स्रावित होते है। जो शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाओं का सम्पादन करते हैं। अंतःस्त्रावी ग्रन्थियों के स्राव नलिकाओं द्वारा अंगों तक जाकर सीधे रक्त प्रवाह में मिलकर

सभी अंगों में पहुँचते है। ये ग्रन्थियाँ शरीर के विभिन्न भागों में स्थित होती है। प्रमुख अंतःस्रावी ग्रन्थियों का वर्णन निम्न है –

1. **पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland) –** यह मस्तिष्क के निचले भाग में अग्रभाग में स्थित होती है। इस ग्रन्थि से कई तरह के हार्मोन्स निकल कर रक्त में मिलते है। ये हार्मोन्स निम्न है –

   (क) थायरॉइड उत्तेजक हार्मोन्स (T.S.H) – यह हार्मोन थायराइड के कार्यो जैसे आयोडीन को थायराइड हार्मोन्स में बदलने, रक्त में उसके प्रवाह आदि को नियंत्रित करने में सहयोग करता है।

   (ख) एड्रीनोकार्टीकोट्राफिक हार्मोन (A.C.T.H) – एड्रीनल ग्रन्थियों के विकास तथा उससे निकलने वाले हार्मोन पर नियंत्रण करता है।

   (ग) वृद्धि हार्मोन (Growth Harmone) – यह हार्मोन शरीर विभिन्न ऊतकों की वृद्धि में सहायता करता है। जब इसका स्राव कम मात्रा में होता है, तो कद नाटा रह जाता है। इस ग्रन्थि के स्राव से बच्चों की ऊंचाई बढ़ती है।

   (घ) फाँलिकल उत्तेजक हार्मोन (F.S.H) – यह गन्थि स्त्रियों के डिम्ब निर्माण ओवेरियन फॉलिकल **(Overion Follicles)** और पुरूषों में शुक्राणुओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

   (ड़) ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (L.H) – यह हार्मोन स्त्रियों में कार्पस ल्यूटिस **(Carpus Luteus)** के निर्माण में सहायक होता है, तथा गभिर्णी स्त्री के स्तनों का भी विकास करता है। पुरूषों में टेस्टोस्टेरान का स्राव करता है।

पीयूष ग्रन्थि के पश्च भाग से स्रावित होने वाले हार्मोन

(क) आक्सीटोसिन (Oxytocin) – यह हार्मोन स्त्रियों के गर्भाशय की पेशियों पर प्रभाव डालता है।

(ख) एण्टीडाययूरोटिक हार्मोन (A.D.H) – इस हार्मोन के प्रभाव से मूत्र की मात्रा में कमी आती है। जब A.D.H कम मात्रा में निकलता है, तो गुर्दो द्वारा पानी का अवशोषण कम होता है। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ जाती हे। इस हार्मोन की अधिक मात्रा रक्त चाप को बढ़ा देती है।

2. **थायरॉइड ग्रन्थि (Thyroid Gland)** – यह ग्रन्थि गर्दन के सामने नीचे की ओर स्थित होती है। थायरॉयड ग्रन्थि **थायरॉक्सिन** का स्राव करती है, तथा ऊतकों की चयापचय क्रियाओं का नियमन करती है। थायरॉक्सिन के कम स्रावण से अंगों में विकृति तथा अधिक स्रवण से **हायपरथायरोडिज्म** नामक रोग हो जाता है।
3. **पैराथायरॉइड ग्रन्थि (Parathyroid Gland)** – यह ग्रन्थि थायरॉइड ग्रन्थि के पास उससे लगी हुयी होती है। यह ग्रन्थि **मटर के दाने** के आकार की होती है, तथा इनकी संख्या 4 होती है। इनसे निकलने वाला हार्मोन **पैराथारमोन,** शरीर में **कैल्शियम तथा फास्फोरस** का वितरण तथा चयापचयी क्रियाओं का नियमन करता है। इस हार्मोन की अधिकता से हड्डियाँ कमजोर तथा गुर्दो में पथरी बनने लगती है। इसकी कमी से कैल्शियम की कमी हो जाती है।

4. **एडरीनल ग्रन्थियाँ (Adrinal Gland)** – ये ग्रन्थियाँ दोनों गुर्दो के ऊपर स्थित होती है। एड्रीनल से दो हार्मोन **एड्रेनलीन और नारएड्रेनलीन** निकलते है।
5. **थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland)** – ये ग्रन्थि दोनों फेफड़ों के मध्य स्थित होती है। यह बच्चों में दो वर्षो तक बढ़ती हे। उसके पश्चात सिकुड़कर छोटी हो जाती है, और व्यस्क में तंतुमय अवशेष के रूप में ही रह जाती है।
6. **पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland)** – ये ग्रन्थि लाल रंग की गुठली के आकार की होती है। जो मस्तिष्क के पश्च भाग में स्थित होती है।

1.4.9 लसिका तंत्र (Lymphatic System)

लसिका तंत्र की शरीर की प्रतिरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका है। लसिका तंत्र के निर्माण में **लसिका द्रव, लसिका कोशिकाए एवं लसिका ग्रन्थियाँ** सहायक होती है। लसिका द्रव छोटी – छोटी रक्त नलिकाओं से छन कर आया होता है। जो वापस रक्त वहिकाओं में नहीं जा पाता है। लसिका कोशिकायें ऊतकों के बीच में बारीक नलिकाओं के रूप में फैली होती हैं, ये ऊतकों से द्रव को एकत्रित कर लसिका वहिकाओं में भेजती है।

लसिका गाढ़े या **लिम्फनोड्स,** छोटी व बड़ी दानों आकार की हो सकती हैं लसिका वाहिकाएं इनमें लिम्फ आती है। इन गाठों में श्वेत रक्त कणिकाएं आती है। रक्त के लिये श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण भी लिम्फ गाठों में होता है। ये शरीर की सुरक्षा के लिये कुछ प्रतिपिण्डों का निर्माण करते हैं।

1.4.10 वातनाड़ी संस्थान अथवा तंत्रिका तंत्र –

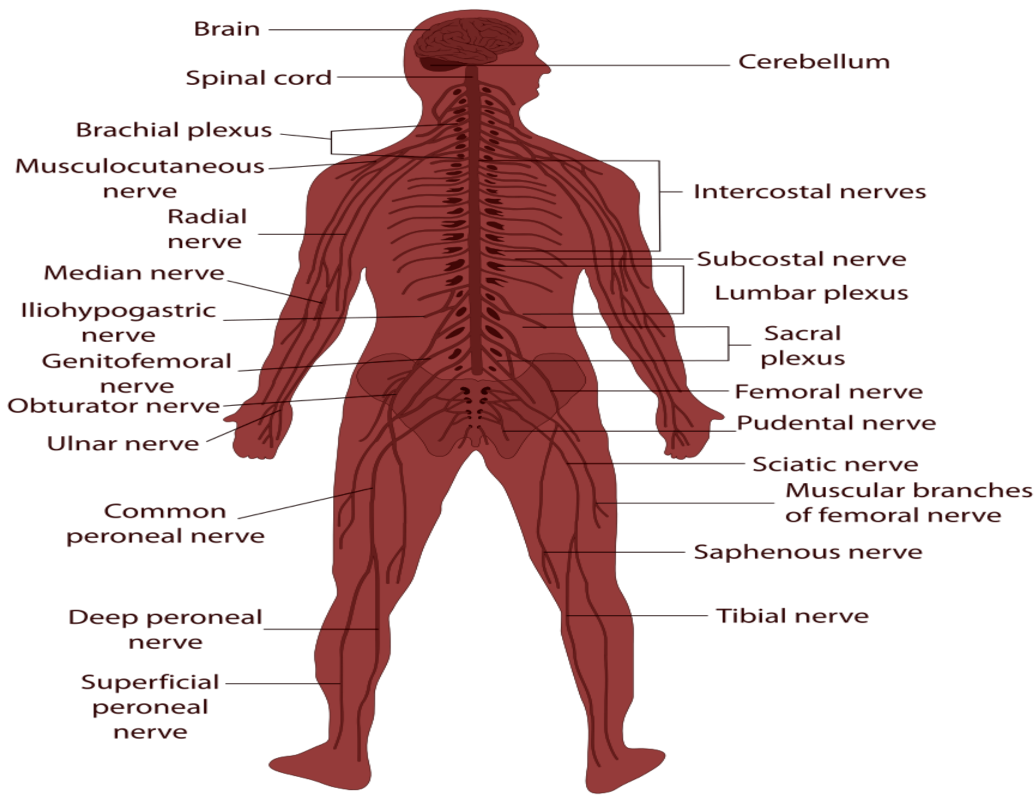

वातनाड़ी संस्थान या तंत्रिका तंत्र शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है। यह संस्थान शरीर के सभी संस्थानों पर नियंत्रण रखता है, और उनको नियमित भी करता है। इसमें **मस्तिष्क, मेरूदण्ड** में स्थित **सुषुम्ना या मेरूरज्जु (Spinal cord)** एवं इनसे निकलने वाली तंत्रिकायें **(Nerve)** आती है।

मस्तिष्क के दो प्रमुख भाग होते हैं, पहला **लघु मस्तिष्क** और दूसरा **वृहद् मस्तिष्क।** वृहद् मस्तिष्क के अलग – अलग क्षेत्र अपना अलग – अलग कार्य करते है। कुछ चिंतन – मनन का कार्य करते हैं। स्मरण शक्ति भी वृहद् मस्तिष्क में एकज रहती है। वृहद् मस्तिष्क के कार्य हैं जैसे – **पीड़ा, उष्णता, शीतलता, स्पर्श** आदि का ज्ञान वृहद् मस्तिष्क का दायां हिस्सा शरीर के बायें भाग पर नियंत्रण रखता है, तथा बायाँ हिस्सा शरीर के दायें भाग पर नियन्त्रण रखता है। लघु मस्तिष्क शरीर में विभिन्न पेशियों की गति पर नियंत्रण रखता है। शरीर की गति, चलना – फिरना आदि कार्यों का नियमन इनके द्वारा होता है।

मस्तिष्क **बुद्धि, विवेक, विचार, अनुभव** इत्यादि का केन्द्र है। इन्द्रियों का बोध जैसे– **श्रवण, दृष्टि, गंध, स्पर्श, स्वाद** इत्यादि विभिन्न नाड़ियों के माध्यम से मस्तिष्क करवाता है। नाड़ियों **(Nerve)** के कार्य विद्युत तारों के समान ही होते हैं। क्योंकि जिस तरह धातु के तारों द्वारा विद्युत एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जाती है। उसी प्रकार तंत्रिकाएं या नाड़ियाँ भी संदेशों को आदान – प्रदान करती है। तंत्रिकाएं समस्त शरीर में फैली होती हैं। इनमें से कुछ सीधे मस्तिष्क से निकलती हैं। इन्हें मस्तिष्कीय कपालिक तंत्रिकाए **(Crauial Nerves)** कहते हैं। इनकी संख्या 12 होती है। शेष अन्य बहुत सी तंत्रिकाएं मेरूरज्जु के अलग – अलग हिस्सों से निकलती हैं। ये 31 जोड़े होती है, हमारे सम्पूर्ण शरीर का संचालन इन्हीं नाड़ियों या तंत्रिकाओं द्वारा होता है।

1.4.11 उत्पादक संस्थान अथवा प्रजनन तंत्र –प्रजनन तंत्र भी शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है। यह संस्थान जनन अंगों से मिलकर बनता है। यह संस्थान प्रजनन अथवा सन्तानोत्पत्ति के लिये समस्त प्राणियों में आवश्यक है। स्त्री और पुरूषों में अलग – अलग तरह के प्रजनन अंग होते हैं। **बाह्य जननांग** तथा **आंतरिक जननांग।** स्त्रियों के जनन अंग, डिम्ब ग्रन्थियाँ, डिम्ब वाहिनियाँ व गर्भाशय आती है, ये अंग श्रेणी गुहा के अन्दर स्थित होते है।

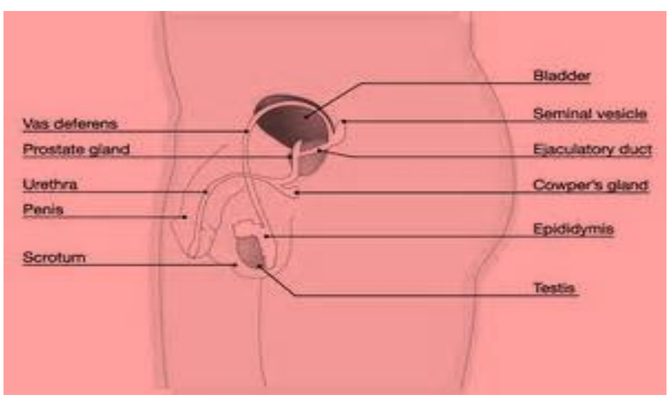

डिम्ब ग्रन्थि डिम्ब या अण्डे का निर्माण तथा वृषण शुक्राणुओं का निर्माण करते हैं। जब डिम्ब व शुक्राणु मिलते हैं, तब भ्रूण की रचना होती है। डिम्ब व शुक्राणु के आधे –

आधे क्रोमोसोम (23) होते है। डिम्ब और शुक्राणु जब मिलते हैं, क्रोमोसोम्स पूरे **46** हो जाते है।

<u>अभ्यास प्रश्न</u> –

(क) सत्य / असत्य बताइये –

1. एक ही प्रकार की कोशिकाओं से मिलकर जो संरचना बनती है, उसे ऊतक कहते है।
2. मानव शरीर के मुख्य आठ भाग होते है।
3. अस्थितंत्र 206 अस्थियों से मिलकर बना होता है।
4. मनुष्य शरीर में 619 मांसपेशियाँ पायी जाती है।

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति –

1. कोशिका का ऊर्जा ग्रह ....है।
2. मांसपेशियाँ ....प्रकार की होती है।
3. मेरूरज्जु के अलग – अलग हिस्सों से ....जोड़े तंत्रिकाएं निकलती है।
4. एड्रीनल ग्रन्थियाँ ....के ऊपर स्थित होती है।
5. ऑक्सीटोसिन हार्मोन पीयूष ग्रन्थि के..भाग से स्रावित होता है।

1.5 सारांश –

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे कि, मानव शरीर संगठन में शरीर के मुख्य 11 संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ये संस्थान शरीर को **आधार, दृढ़ता प्रदान करने, गति प्रदान करने, रक्त संचरण पोषण तथा सन्तानोत्पत्ति** में सहायक है। शरीर की सबसे छोटी इकाई कोशिका अपने आप में पूर्ण है।

इस प्रकार एक कोशिका में सभी संस्थानों की प्रतिकृति होती है। कोशिकाए आपस में मिलकर ऊतकों का निर्माण करती है। अनेक ऊतक मिलकर अंगों का निर्माण करते है, तथा अनेक अंग मिलकर एक संस्थान का निर्माण करते है। तथा इस प्रकार अनेक संस्थान मिलकर एक शरीर का निर्माण करते है। तथा यह शरीर के ही माध्यम से मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। परलौकिक दृष्टि से देखें तो, यह शरीर ही **धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष** का साधन है। मुक्ति का साधन है।

1.6 शब्दावली –

कोशिका – मानव शरीर की सबसे छोटी इकाई
ऊतक – कोशिकाओं का समूह
प्रकोष्ठ – कोष्ठक
पक्वाशय – आमाशय
क्लोमग्रन्थि – अग्न्याशय

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

(क) सत्य / असत्य बताइये –

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति –

1. माइट्रोकान्ड्रिया 2. दो 3. 31 जोड़े 4. किडनी 5. पश्च भाग

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री –

1. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
2. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
3. सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
4. अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
5. Chaurasia’s B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

1.10 निबंधात्मक प्रश्न –

1. कोशिका व ऊतक का सचित्र वर्णन करते हुये शरीर के मुख्य भागों का वर्णन कीजिये।
2. शरीर के समस्त संस्थान पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिये।

इकाई–2 कोशिका व ऊतक की रचना व क्रिया

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 कोशिका रचना एवं क्रिया
 2.3.1 कोशिका भित्ती
 2.3.2 जीव द्रव्य
 2.3.3 नाभिक
2.4 ऊतक की रचना एवं क्रिया
 2.4.1 तंत्रिका तंत्र ऊतक
 2.4.2 मांसपेशी तंत्र ऊतक
 2.4.3 अस्थि तंत्र ऊतक
 2.4.4 उपकला तंत्र ऊतक
 2.4.5 संयोजक ऊतक
 2.4.6 ग्रन्थि ऊतक
 2.4.7 रूधिरीय ऊतक
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना –

मानव शरीर ईश्वर द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर कृति है। ईश्वरीय निर्माण की उत्कृष्टता का नमूना यह मानव शरीर अनेक छोटी – छोटी, केवल सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Mocroscope) के द्वारा ही देखी जा सकने वाली कोशिकाओं का समूह है। यह कोशिकाऐं क्या है, कैसी दिखती है, कैसे कार्य करती है यह स्वाभाविक प्रश्न है। शरीर में यह सबसे छोटी जीवित इकाई है और यही इकाई थोड़े भिन्न स्वरूप लेकर विभिन्न ऊतकों का निर्माण करती है जिसके कार्य विभाजित है परन्तु इनका मूल स्वरूप एक जैसा ही है।

प्रस्तुत इकाई में कोशिका का स्वरूप, ऊतकों का स्वरूप एवं कार्य का विवेचन है।

2.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- मानव शरीर की प्रथम इकाई कोशिका के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कोशिका की रचना और क्रियाविधि का वर्णन कर सकेंगे।

- ऊतक और ऊतक संरचना को समझ सकेंगे।
- ऊतक के विभिन्न प्रकार एवं कार्यो की विवेचना कर सकेंगे।
- अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

2.3 कोशिका रचना एवं क्रिया –

मानव शरीर के आधारभूत अवयव को कोश/कोशा/कोशिका कहते है। मानव शरीर कोशिकाओं का समूह मात्र है। कोशिका को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है।

"मानव शरीर की सूक्ष्मतम संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई को कोश/कोशा/कोशिका कहते है।"

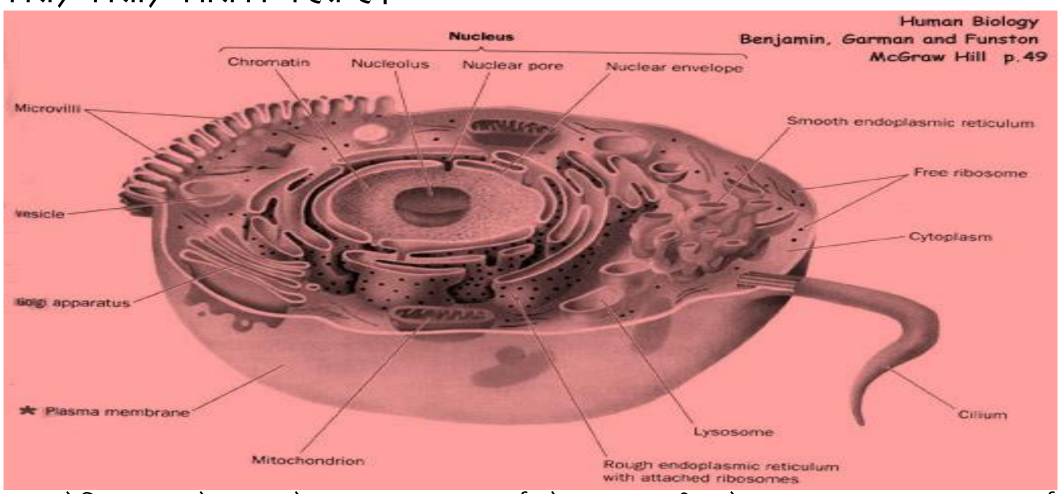

हर कोशिका अपने आप में एक स्वतंत्र इकाई है परन्तु शरीर में यह अलग – अलग कार्य करती है और विभिन्न कार्यो के अनुसार इनके स्वरूप में कुछ भिन्नता होती है। यह केवल सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Mocroscope) द्वारा ही देखी जा सकती है। मानव जीवन का प्रारम्भ एक कोशिका से होता है। माता के गर्भ में यह कोशिका विकसित एवं विभाजित होती है और पूर्ण शरीर विकास इन्ही के विकास और विभाजन का नतीजा है।

मानव शरीर में लगभग 200 प्रकार की कोशिका है किन्तु इनके मूल स्वरूप में समानता होती है। हर कोशिका एक कोशिका भित्ति (Plasma Membrane) से ढकी होती है। यह कोशिका भित्ती (Plasma Membrane) एक थैली की भाँति होती है, जिसके अन्दर जीव द्रव्य (Cyto plasm) भरा होता है। इस जीव द्रव में विभिन्न सक्रिय अंग (Organelles) एवं नाभिक (Nucleus) डूबे रहते हैं।

कोशिका का आकार 15–500 mm का होता है और एक व्यस्क का शरीर लगभग 100 ट्रिलियन कोशिकोओं का समूह है। इनका पोषण और विकास रक्त द्वारा पहुँचाए गए पोषक तत्वों से होता है। यह पोषक तत्व कोशिका भित्ती (Plasma Membrane) से भीतर प्रवेश पाते और कोशिका द्वारा जीव कार्य विकास अथवा संग्रह के लिए उपयोग में लाये जाते है।

2.3.1 कोशिका भित्ती – (Plasma Membrane)- कोशिका को **वसा, प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेड** से बनी हुई लचकदार झिल्ली घेरे रहती है, जिसे कोशिका भित्ती (Plasma

Membran) कहते हैं। इस भित्ती से केवल कोशिका के लिये आवश्यक पदार्थ ही प्रवेश पा सकते है। अतः कोशिका की रक्षा, श्वसन, पोषण आदि क्रियाओं में इसका महत्वपूर्ण योगदान है।

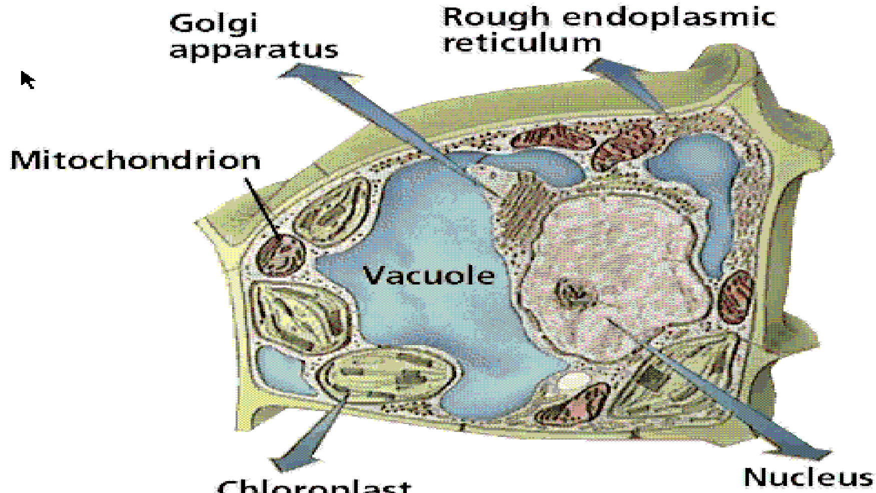

Figure 4.8

<u>कोशिका भित्ती के कार्य</u> –

1. कोशिका के अवयवों की रक्षा करती है।
2. जीव द्रव के रसायनिक संगठन को बनाए रखती है।
3. यह पोषक तत्वों एवं ऑक्सीजन को ग्रहण कर कोशिका में प्रवेश कराती है।
4. कोशिका मे उत्पन्न मल (त्याज्य पदार्थो) का निष्कासन करती है।
5. अन्य कोशिकाओं से सम्बन्ध एवं सूचनाओं का आदान – प्रदान भी इसी के द्वारा होता है।

<u>2.3.2 जीव द्रव्य (Cytoplasm)</u> –

कोशिका भित्ती एवं नाभिक के बीच के द्रव्य को जीव द्रव्य (Cytoplasm) कहते है। इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **जीव द्रव** (Cytosol)
2. **कोशिकांग** (Organelles)

जीव द्रव (Cytosol) **वह तरल है** जिसमें कोशिकांग (Organelles) डूबे रहते है। कोशिका का 55 प्रतिशत हिस्सा इसी तरल से भरा होता है। यह तरल में 75 – 90 प्रतिशत पानी होता है। जिसमें **वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेड** आदि पदार्थ घुले रहते है। अनेक जीव रासायनिक क्रियाऐं इसी जीव द्रव में होती है।

<u>कोशिकाग (Organelles)</u> – कोशिका के क्रियात्मक अंग है। यह अनेक प्रकार के है और प्रत्येक अंग के अलग – अलग कार्य है ये कोशिकागं निम्न है।

क) सेन्ट्रोसोम (Centrosome) – नाभिक के पास ही मौजूद रहता है। यह दो गोलाकार रचनाओं से बना होता है, जिसे सेन्ट्रीयोल्स (Centrioles) कहते है। इनके चारों तरफ टुब्यूलिन (Tubulin) के बने हुए धागों की रचनाऐं बनी होती है। यह कोशिका विभाजन के समय महत्वपूर्ण कार्य करते है।

ख) अन्तर्द्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum) – यह झिल्ली की बने हुए चपटे थैलों, नलियों के समान आकार की होती है। यह नाभिक के निकट ही होती है। यह दो प्रकार की होती है – खुरदुरी, चिकनी (Smooth Endoplasmic reticulum), खुरदुरी जालिकाओं में राइबोसोम (Ribosome) चिपके रहते है। इनका कार्य प्रोटीन निर्माण है। चिकनी जालिकाओं का कार्य वसा एवं स्टेराइड निर्माण का है। मॉसपेषियों में मौजूद चिकनी जालिकाओं के द्वारा कैल्शियम संचय एवं निष्कासन कर इनका संकुचन एवं प्रसरण क्रिया होती है।

ग) राइबोसोम (Ribosome) – राइबोसोम प्रोटीन से बनते है। इनका कार्य कोशिका के लिए आवश्यक प्रोटीन बनाना है। यह अन्तर्द्रव्यी जालिका अथवा नाभिक की दीवार से चिपके रहते है। कुछ राइबोसोम मुक्तावस्था में जीवद्रव्य में भी रहते है।

घ) माइट्रोकॉन्ड्रिया (Mitochondria) – इसे कोशिका का विद्युतग्रह भी कहते है। यह ज्यादातर अण्डाकार होते है। कोशिका में इनकी संख्या उसकी उर्जा आवश्यकताओं के अनुसार होती है। यह द्विपरतीय होते है। अन्दर वाली परत में यह आवश्यक रासायनिक एन्जाइम होते है जिससे यह **ग्लूकोज** का पूर्ण ऑक्सीकरण कर **कोषिका को उर्जा** प्रदान करते है। इस आक्सीकरण प्रक्रिया में ATP बनते है, जिसमें उर्जा संग्रहित रहती है। ATP को (Energy Coin) भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें उर्जा संग्रहित रहती है। जहाँ पर भी कोशिका को किसी भी कार्य के लिए उर्जा की आवश्यकता होती है वहाँ पर कोशिका इन्हीं ATP को तोड़कर उर्जा प्राप्त कर लेती है। **माइटोकॉन्ड्रिया** में अपना DNA भी होता है, जिससे यह स्वतंत्र विभाजन में सक्षम होते है।

ड़) **गॉल्जी उपकरण** (Golgi apparatus) – यह एक परतीय झिल्लियों की बनी होती है। चपटी थैलियों सी होती है। और एक दूसरे से सटी 3 – 20 थैलियों के इस समूह को गोल्जी उपकरण कहते है। यह अन्तर्द्रव्यी जालिका से समबद्ध रहती है। इनका कार्य जालिका में बने प्रोटीन के स्वरूप में सुधार करना और उनको एकत्रित करना है। इनके द्वारा एकत्रित वैसिकल्स (Vesicles) में जमा कर आवश्यक स्थानों पर पहुँचाने के लिए छोड़ दिये जाते है।

च) लाइसोसोम (Lysosomes) – छोटी गोल थैली के समान संरचना वाली इन कणिकाओं का कार्य **"अन्तरकोशिका पाचन"** (Intracellular) का है। इनमें 40 अलग – अलग प्रकार के स्राव पाये जाते है। जब कोशिका आहार द्रव्य को ग्रहण करती है तब यह आहार कणों से भरे **वैसीकल्स** (Vesicles) से जुड़ जाते है और अपना द्रव उसमें छोड़ देते है। द्रव में मौजूद पाचक स्राव (Enzymes) आहार कणों को पचा देते है और उन्हें ग्लूकोज (Glucose) **अमीनो एसिड** (Amino acid) आदि में तोड़ देते है, और तभी यह पाचित अंष इनकी झिल्ली द्वारा अवशोषित कर कोशिका द्रव (Cytosol) में छोड़ दिया

जाता है। यह खराब हो चुके या पुराने पड़ चुके सक्रिय कोशिका अंग (Organelles) को भी नष्ट करते है, इसे **ओटोफेगी** (Autophagy) कहा जाता है। कोशिका के अन्दर प्रवेष कर चुके जीवाणु (Bacteria) आदि का नाश करना भी इन्हीं का कार्य है। जो भाग इनकी झिल्ली द्वारा अवशोषित होने लायक नहीं होता अथवा मूल रूप होता है। उसे यह कोशिका झिल्ली (Plasma membrane) से जुड़कर कोशिका से बाहर फेंक देते है।

छ) **पराक्सीसोम** (Peroxisomes) – यह भी **लाइसोसोम** की तरह होते है पर उससे कुछ छोटे होते है। इनका कार्य कोशिका में मौजूद अथवा बाहर से प्रवेश पाने वाले विषरूप द्रव्यों का आक्सीकरण (Oxidisi) कर नष्ट करना है जैसे शराब इत्यादि।

इनके अलावा कोशिका द्रव (Cytosol) में कुछ अन्य रचनाऐं भी पाई जाती है जैसे **वसा** (Lipid) कोशिका के रंग का कारण रंग कणिकाऐं (Pigment granules) आदि। कोशिका को आवश्यक स्वरूप देना और कोशिकांगों को स्थिर रखना या उनके स्थान परिवर्तन का कार्य मइक्रोफिलामेन्ट और ट्यूब्यूल्स (Microfilaments and tubules) करती है। यह पूरी कोशिका के अन्दर जाल जैसी संरचना बनाए रखते है जिससे कोशिकांग (Organelles) अपने स्थान पर बने रहते है। इसे साइटोस्केलेटन (Cytoskeleton) कहते है। जैसे शरीर को अस्थि समूह (Skeleton) सहारा और स्वरूप प्रदान करता है। इसी प्रकार कोशिका को स्वरूप और कोशिकांगों को सहारा यह पतले धागों के जाल जैसी संरचना (Cytoskeleton) का कार्य है।

2.3.3 नाभिक (Nuclus)-यह कोशिका का सबसे प्रमुख अंग है। यह कोशिका के बीच में स्थित रहता है और कोशिका के समस्त कार्यो को नियंत्रित करता है। यह द्विपरतीय झिल्ली से ढका होता है और इसके अन्दर जीव का डी0एन0ए0 क्रामोजोम (Chromosomes) के रूप में उपस्थित रहता है। हर व्यक्ति का अपना अलग **डी0एन0ए0** होता है। जो उसे माता और पिता से प्राप्त होता है। हमारा शरीर हमारे डी0एन0ए0 की एक अभिव्यक्ति मात्र है। कोशिका अथवा शरीर के कार्य गति, मृत्यु आदि सभी इस नाभिक में मौजूद डी0एन0ए0 द्वारा नियंत्रित क्रियायें है। नाभिक के अन्दर भी जीव द्रव भरा होता है, और इसे न्यूक्लीओप्लास्म (Nucleolus) कहते है।

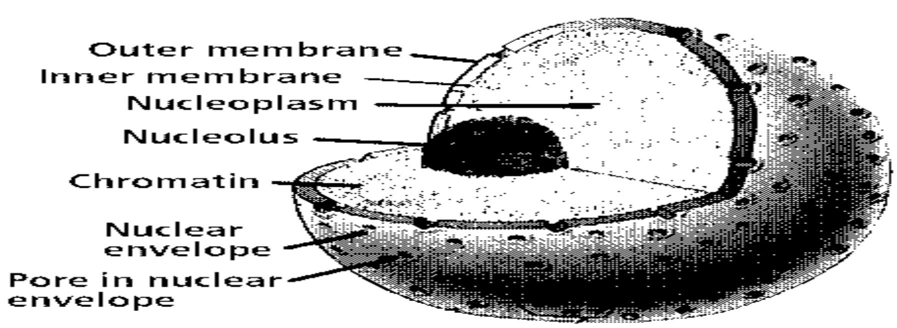

अभ्यास प्रश्न –1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क) मानव जीवन का प्रारम्भ ____________ से होता है।

ख) हर कोशिका ____________ से ढकी होती है।

ग) कोशिका का उर्जाग्रह ____________ है।

घ) कोशिका का प्रमुख अंग ____________ है।

ड़) राइबोसोम का कार्य कोशिका के लिए आवश्यक ____________बनाना है।

2.4 ऊतक की रचना एवं क्रिया –

समान स्वरूप एवं समान कार्य वाली कोशिकाओं के समूह को ऊतक कहते है। कुछ ऊतक विशेष स्थानों पर पाए जाते हैं और कुछ सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहते है। ऊतकों के समूह मिलकर शरीर के अंगों का निर्माण करते है।

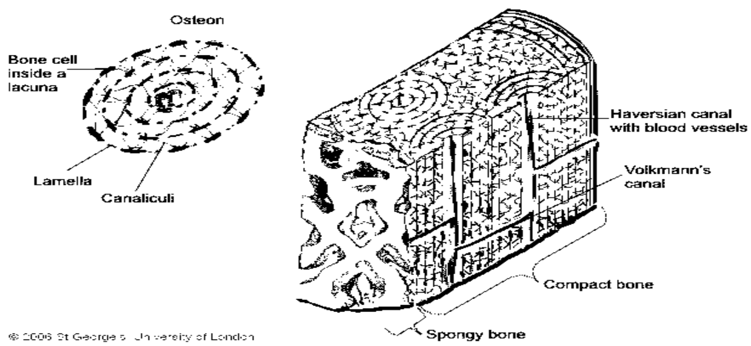

उतकों के निम्न प्रमुख प्रकार है –

1. **उपकलीय तन्त्र ऊतक –** यह शरीर के भीतरी और बाहरी अंगों/प्रत्यंगों को ढके रहती है। यही स्रावी ग्रन्थियों का भी निर्माण करती है।
2. **सं**योजी तंन्त्र ऊतक – यह शरीर की रक्षा और शरीर के अंगों की सुरक्षा करती है। यह अंग प्रत्यंगों को जोड़े रखने का कार्य करती है। अतः शरीर को उसका स्वरूप प्रदान करने का कार्य यही ऊतक करते हैं।
3. **मांसपेशी तन्**त्र ऊतक – इनका कार्य शरीर को और शरीरांगों को गति प्रदान करना है शरीर में उष्मा उत्पत्ति का कार्य भी यही करती है।
4. **तन्त्रिका तन्त्र ऊतक –** इनका कार्य संवेदनाओं को ग्रहण करना और शरीर की मांसपेशियों, अंगों, स्रावी ग्रन्थियों को प्रेरित करना है।

शरीर के प्रमुख उतकों की संरचना एवं कार्य –

2.4.1 तंत्रिका तंत्र ऊतक (Nervous Tissue) – इन उतकों द्वारा शरीर के तन्त्रिका तन्त्र का निर्माण होता है। मस्तिष्क (Brain) तन्त्रिका नाड़ी (Nerves) सुषुम्ना (Spinal Cord) इससे निर्मित होते है। यह ऊतक न्यूरॉन (Neuron) नामक कोशिका से बनती है। न्यूरॉन के तीन प्रमुख भाग होते है।

अ) **सैल बाडी** (Cell Body) – इसमें नाभिक होता है और अन्य कोशिकांग (Organells) होते है।

ब) **डैनड्राइट** (Dendrites) – यह बारीक रेशों का जाल होता है जो कोशिका भित्ती का बना होता है। यह संवेदनाओं को ग्रहण करता है।

स) **एक्जान** (Axon) – यह एक नलिका के जैसा लम्बा न्यूरॉन का अंग है। यह संवेदनाओं को भेजने का कार्य करता है।

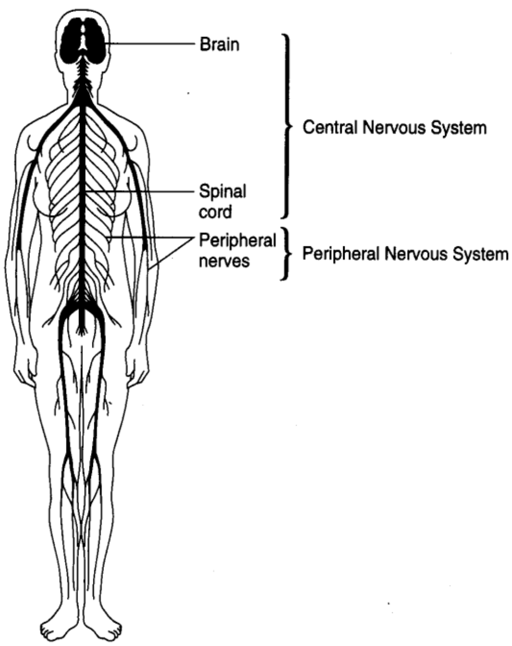

न्यूरॉन के निम्न तीन प्रकार होते है –

1. **यूनीपोलर नर्व सैल्स** (Unipolar Nerve Cells) – इसमें एक ही तरफ से संवदेना आती और जाती है।
2. **बाईपोलर नर्व सैल्स** (Bipolar Nerve Cells) – इसमें एक तरफ से संवदेना प्राप्त होती है और दूसरी तरफ से प्रक्षित कर दी जाती है।
3. **मल्टीपोलर नर्व सैल्स** (Multipolar Nerve Cells) – इसमें अनेक सूत्रों से संवदेना प्राप्त होती है और एक एक्जान से दूसरे न्यूरॉन को प्रक्षित कर दी जाती है।

इन उतकों के निम्न कार्य है।

1. संवेदनाओं को ग्रहण करना।
2. संवेदनाओं को अन्य कोशिकाओं, न्यूरान्स को प्रेक्षित करना।
3. संवेदनाओं का संश्लेषण (Analysis) करना और संग्रह करना (Memory) ।

2.4.2 मांसपेशी तंत्र ऊतक– सम्पूर्ण शरीर में फैली और शरीर के अधिकांश भाग का निर्माण यह करती है। यही शरीर को गति प्रदान करती है। यह केवल बाह्य अंगों में ही नहीं होती बल्कि **नसों, ह्रदय, पाचन तंत्र, श्वास नलिका,** आदि में भी मांसपेशी तन्त्रीय ऊतक होती है। इनमें संकुचन और प्रसरण की क्रिया होती है।

मांसपेशी तन्त्र ऊतक तीन प्रकार के होते है –

1. **स्कैलेटल या ऐच्छिक मॉसपेषी (Skeletal or Voluntary Mussels)**
2. **स्मूथ या अनैच्छिक मॉसपेषी (Smooth or Involuntary Mussels)**
3. **हृत मांसपेषी (Cardiac Mussels)**

ऐच्छिक मॉसपेशियाँ हाथ पैर इत्यादि में होती है, इनकी क्रियाओं पर नियन्त्रण होने के कारण इन्हें ऐच्छिक कहा जाता है। **उठना, बैठना, लिखना, चलना** आदि क्रियाऐं इन्हीं के कारण सम्भव होती है। **अनैच्छिक मॉसपेषियाँ आहार नली, पेट** आदि में होती है। इनकी क्रिया हमारे द्वारा नियंत्रित नहीं की जा सकती है। हृत मॉसपेशी केवल हृदय में होती है। यह जन्म से लेकर मृत्यु तक लगातार बिना रूके कार्य करती रहती है।

2.4.3 अस्थि तंत्र ऊतक (Bony Tissue) –उपस्थि **(Cortilage)** संधि **(Joints)** एवं अस्थियाँ **(Bones)** मिलकर अस्थि तन्त्र **(Skeletal System)** की रचना करते है। इनका कार्य शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करना और शरीर को एक स्थिर स्वरूप प्रदान करना है। अस्थि की कोशिका को आस्टियासाइट **(Osteocyte)** कहते है। अस्थियों के दो प्रकार होते है।

1. ठोस या कड़ी हड्डियाँ **(Compact bones)**
2. पतली या मुलायम हड्डियाँ **(Spongy bones)**

हड्डियों के चारों तरफ एक झिल्ली होती है जिसे **पेरीऑस्टियम (Periosteum)** कहते है। बड़ी हड्डियों के बीच में रिक्त स्थान होता है। जिसमें मज्जा **(Bone marrow)** भरा होता है।

रक्त कोशिकाओं का निर्माण रक्त मज्जा **(Red bone marrow)** में होता है। जो बड़ी हड्डियों के बीच में मिलता है। **अस्थियों को संयोजी तन्त्र उतक** में रखा जाता है।

2.4.4 उपकला तंत्र ऊतक (Epithelial Tissue) – यह ऊतक शरीर के और प्रत्येक अंग – प्रत्यंग के बाहय और भीतरी भाग को ढके रहती है। इनका कार्य सुरक्षा का है। यह एक परत के रूप में फैली होती है। प्रत्येक स्थान और उसके कार्य के अनुसार इसके भिन्न प्रकार होते है।

1. **<u>एक स्तरीय उपकला ऊतक (Simple epithilium)</u>** –

यह एक कोशिका स्तर या परत के रूप में होती है और कोशिका के आधार पर इसके निम्न भेद है।

अ) **<u>सिम्पल स्क्वैमस ऊतक (Simple Epithilium)</u>** – इसमें कोशिका चपटी होती है। स्थान – **हृदय, सिरा, धमनी** आदि

ब) **<u>सिम्पल क्यूबाइडल (Simple Ciboidal)</u>** – इसमें कोशिका चौखण्डाकार होती है। स्थान – **स्रावी ग्रन्थि** आदि

स) **<u>सिम्पल कालम्नर ऊतक (Simple Calumner)</u>** – इसमें कोशिका स्तम्भाकार सिम्पल कालम्नर होती है। स्थान – **आहारनली , आमाषय** आदि

द) **<u>सूडोस्ट्रेटिफाइड कालम्नर ऊतक (Pseudostratified Calumner)</u>** – इसमें भी कोशिका स्तम्भाकार

होती है किन्तु, इस प्रकार लगी होती है कि बहुस्तरीय ऊतक हों पर होती तो एक स्तरीय है। स्थान – **ष्वास नलिका, मूत्र मार्ग** आदि

2. <u>बहुस्तरीय उपकला ऊतक (Stratified Epithelium)</u> – इसमें कोशिकाओं की अनेक परतें होती हैं इन्हें कोशिका के आकार के आधार पर निम्न भेद हैं।

अ) **<u>स्ट्रेटिफाइड स्क्वैमस उपकला ऊतक (Stratified Squamish Epithelium)</u> –** यह बहुस्तरीय चपटी कोशिका युक्त उपकला ऊतक है। स्थान – मुख, त्वचा आदि

<u>ब) स्ट्रेटिफाइड क्यूबाइडल उपकला ऊतक (Stratified Cuboidal Epithelium)</u> – यह बहुस्तरीय चौखण्डी कोशिका वाली उपकला ऊतक है। स्थान – स्वेद ग्रन्थि आदि

<u>स) स्ट्रेटिफाइड कॉलम्नर उपकला ऊतक (Stratified Columnar Epithelium)</u> – यह बहुस्तरीय स्तम्भाकार कोशिका से बनी उपकला ऊतक है। स्थान – ग्रासनलिका आदि

द) <u>ट्रान्सीषनल उपकला ऊतक (Transitional Epithelium)</u> – इसमें अनेक प्रकार की कोशिका बहुस्तर युक्त होती है। स्थान – मूत्राशय आदि

2.4.5 संयोजक ऊतक (Areolar or Connective Tissues) –यह शरीर में सबसे ज्यादा मात्रा में पाया जाने वाला ऊतक है। अलग – अलग प्रकार की संयोजी ऊतकों का कार्य भी भिन्न – भिन्न प्रकार का होता है। यह अन्य ऊतकों को आपस में जोड़ रखने, स्थिरता प्रदान करने, खाली स्थानों को भरना, मेदा संचय, आन्तरिक अंगों की सुरक्षा एवं रक्त आदि द्वारा अन्य ऊतकों के पोषण का कार्य भी करती है। मूल रूप से तन्तुमय जाल (Extracellular Matrix) से बनी होती है। जिसमें विभिन्न प्रकार की कोशिकाएं पायी जाती है। यह कोशिकाऐं है – फाइब्रोब्लास्ट (Fibrobloast) एडिपोसाट्स (Adipocytes) मास्ट (Mast Cells) श्वेत रक्त कोशिका (White Blood Cells) etc. इनके चारों ओर इलास्टिक (Elastic Fibres) एवं रेटीकुलर तन्तु (Reticular Fibers) का जाल बना रहता है। जिसमें अन्य प्रोटीन तत्व भी है। इसके निम्न पाँच भेद कहे गए हैं –

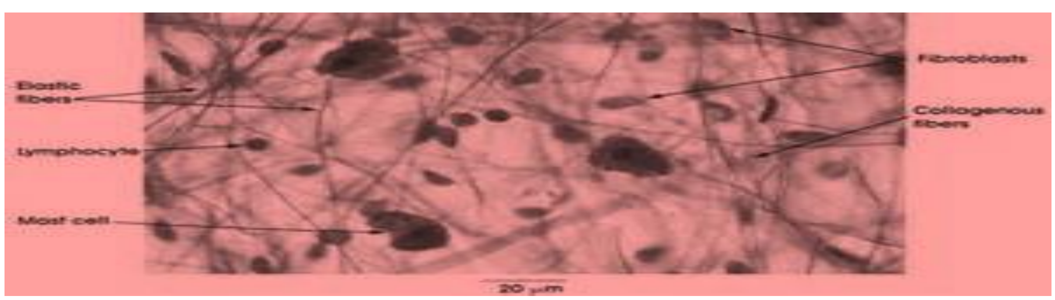

1. **<u>लूज संयोजी ऊतक (Loose Connective Tissue)</u> –** इनका कार्य मेद आदि का संचय, कोमल अंगों की सुरक्षा आदि है। इसके भी निम्न तीन भेद कहे गए है।
   <u>अ)</u> एरिओलर संयाजी ऊतक (Areolar Connective Tissue)

ब) एडिपोज ऊतक (Adipose Tissue)

स) रेटिकुलर संयोजी ऊतक (Reticular Connective Tissue)

2. **डैन्स संयाजी ऊतक (Dense Connective Tissue) –** इनका कार्य जोड़ों को मजबूती प्रदान करना, कोमल अंगों की सुरक्षा, माँसपेशी और अस्थियों के जोड़ बनाना आदि है। इसके भी तीन भेद कहे गये हैं – ?

    अ) डैन्स रेगुलर संयोजी ऊतक (Dense Regular Connective Tissue)

    ब) डैन्स इरैगुलर संयोजी ऊतक (Dense Irregular Connective Tissue)

    स) इलास्टिक संयोजी ऊतक (Elastic Connective Tissue)

3. **उपास्थि (Cartilage) –** इनको कोमल अस्थियाँ भी कहते है। इनका कार्य अस्थि निर्माण पूर्व अंगों की सुरक्षा है। इनमें ही **कैल्शियम, फास्फोरस** आदि तत्व जमा होकर अस्थि का रूप देते है। यह कोमल और मुड़ सकने वाली होती है। कुछ स्थानों पर यह ऐसी ही रह जाती है, जैसे कान, नासिका का अग्र भाग, श्वास नलिका इसके उदाहरण है। इसके भी तीन भेद हैं।

अ) हाइलाइन उपास्थि (Hyline Cartilage)

ब) फाइब्रो उपास्थि (Fibro Cartilage)

स) इलास्टिक (Elastic Cartilage)

4. **अस्थि तंत्र ऊतक (Bone Tissue) –** अस्थि तन्त्र ऊतक को भी संयोजी ऊतक के अन्तर्गत
 रखा जाता है।

4. **तरल संयोजी ऊतक (Liquid Connective Tissue) –** रक्त एवं लसिका (Blood and lymph) तरल संयोजी ऊतक है। इनका कार्य ऊतकों का पोषण , रक्षा आदि है।

2.4.6 स्रावी ग्रन्थि ऊतक (Glondular Tissue) -स्रावी ग्रन्थि उस कोशिका या कोशिका समूह को कहते है जो शरीर के लिए आवश्यक क्रियाओं सम्पादन के लिए जरूरी तत्वों का स्राव करती हैं। यह स्राव नलिकाओं अथवा रक्त में छोड़ा जाता है। शरीर में 2 प्रकार की स्रावी ग्रन्थियाँ पाई जाती है।

1. **बहिस्रावी ग्रन्थि –** यह अपने स्रावों को सीधे त्वचा आन्त्रादि में स्रावित करती है। इनके द्वारा स्रावित द्रव्य – चिकनाई (Mucus) स्वेद (Sweat) कर्णादी के मल (Ecar) पाचक स्राव (Digestive enzyme) आदि होते है। यकृत (Liver) , स्वेद ग्रन्थि (Sweat Glands) आदि इसके उदाहरण है।
2. **अन्तःस्रावी ग्रन्थि –** इन ग्रन्थियों के स्राव सीधे रक्त में मिलते है। इनके द्वारा हार्मोन्स (Harmones) का स्राव होता है। यह जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पिट्यूटरी (Pituitary), अधिवृक्क ग्रन्थि (Supra renal gland) आदि इसके उदाहरण है। शरीर में कुछ ग्रन्थियों से दोनों प्रकार के स्राव होते है। ऐसी ग्रन्थियाँ जो

अन्तःस्रावी और बहिस्रावी दोनों कार्य करती है उन्हें उभयस्रावी ग्रन्थि (Hetero Crime Gland) कहते है। उदाहरण अग्न्याशय (Pancreast) आदि।

2.4.7 रूधिरीय ऊतक (Blood) – यह एक तरल संयोजी ऊतिक है। यह कोशिका द्रव एवं प्रोटीन, मिनरल आदि से बना है। इस द्रव भाग को प्लाजमा (Bloof Plasma) कहते हैं। इसमें शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्व घुले रहते हैं। इसमें तीन प्रकार की कोशिका पाई जाती है –

1. लाल रक्त कण (Red Blood Cells)
2. श्वेत रक्त कण (White Blood Cells)
3. प्लेटलेट्स (Platelits)

यह शरीर में परिभ्रमण करता रहता है और शरीर की जीवाणु से रक्षा, पोषण, ऊतक मल का गुर्दो (Kidney) आदि के द्वारा निष्कासन का कार्य करता है।

अभ्यास प्रश्न –2

2.**रिक्त स्थानों की पूति कीजिए** –

(क) समान स्वरूप एवं समान कार्य वाली कोशिकाओं के समूह को ————————————कहते है।

(ख) तंत्रिका तंत्र ऊतक का कार्य ————————को ग्रहण करना है।

(ग) रूधिरीय ऊतक में ———————प्रकार की कोशिका पायी जाती है।

(घ) शरीर में सबसे ज्यादा मात्रा में पाये जाने वाला ———————— ऊतक है।

सत्य / असत्य –

(क) शरीर में दो प्रकार की स्रावी ग्रन्थि पायी जाती है।

(ख) तंत्रिका तंत्र ऊतक द्वारा तंत्रिका तंत्र का निर्माण नहीं होता है।

(ग) अस्थियों की कोशिका को आस्टियोसाइट कहते हैं ।

(घ) ऊतकों का कार्य संवेदनाओं का संग्रह करना है।

2.5 सारांश –

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे कि हर जीव शरीर की रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई को कोशिका कहते है। कोशिका के अन्दर विभिन्न कोशिकांग (Organelles) होते है। जो स्वतंत्र जीवन में सक्षम नहीं होते पर एकजुट कार्य कर यह जीवित कोशिका का कारण होते है। कोशिका आहार ग्रहण, पाचन, उत्सर्जन आदि समस्त कार्य करती है। अनेक कोशिका मिलकर ऊतक बनाती है। अनेक ऊतकों से अंग बनते है और अनेक अंगों का समूह शरीर है। ऊतक समान आकार तथा समान कार्य करने वाली कोशिकाओं का समूह होता है। यही ऊतक अंगों का निर्माण कर पूरे शरीर का निर्माण करते हैं। अतः अब आप सहज रूप से शरीर का मूल स्वरूप कोशिका व कोशिकाओं के समूह ऊतकों को जान गये होंगे व शरीर का महत्व व उपयोगिता को भली प्रकार समझ गये होंगे।

2.6 शब्दावली –

कोश / कोशा/ कोशिका – शरीर की रचनात्मक एवं क्रियात्मक सूक्ष्मतक इकाई।
भित्ती – दीवार
ऊतक – कोशिका समूह
नाभिक – कोशिका नियंत्रक केन्द्र
न्यूरॉन – तन्त्रिका तन्त्र की प्राथमिक इकाई / कोशिका
ए0टी0पी0 (ATP) – शरीर में ऊर्जा का संग्रह करने वाला रसायन। जिसे आवश्यकता पड़ने पर कोशिका तोड़कर ऊर्जा प्राप्त करती है।
डी0एन0ए0 (DNA) – नाभिक के अन्दर मौजूद दीर्घ रसायन जो जीव की पहचान है और जीव के स्वरूप और क्रियाओं का नियंत्रक है।
प्लाजमा – रक्त का कोशिका हीन तरल भाग ।
एच्छिक – अपनी इच्छानुसार चलाए जा सकने वाली।
अनैच्छिक – जो अपनी ईच्छानुसार नहीं चलाई जा सकती है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. (क)कोशिका
   (ख) कोशिका भित्ती
   (ग) माइट्रोकॉण्डिया
   (घ) नाभिक
   (ङ) प्रोटीन

2. **रिक्त स्थानों की पूति कीजिए** –

(क) ऊतक
(ख) संवेदनाओं
(ग) तीन
(घ) संयोजक ऊतक

<u>सत्य / असत्य –</u>

(क) सत्य
(ख) असत्य
(ग) सत्य
(घ) सत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
8. सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
9. अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री –

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
8. सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
9. अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

2.10 निबंधात्मक प्रश्न –

1. कोशिका की रचना व क्रिया का वर्णन कीजिए ।
2. ऊतक से क्या अभिप्राय है ? विभिन्न प्रकार के ऊतकों को समझाते हुए इनके कार्य बताइये।

इकाई – 3 – अस्थि व पेशी तंत्र की रचना व कार्य

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अस्थि संस्थान : एक परिचय
3.3.1 कंकाल के कार्य
3.3.2 अस्थियों का आकार – प्रकार
3.3.3 अस्थियों का संगठन एवं रचना
3.3.4 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या
3.4 संधि परिचय
3.5 मांस संस्थान अथवा पेशी तंत्र – एक परिचय
3.5.1 पेशियों का नामकरण
3.5.2 पेशियों का उद्गम एवं निवेशन
3.5.3 पेशियों की बनावट
3.6 मांसपेषियों के भेद
3.6.1 ऐच्छिक पेशियाँ
3.6.2 अनैच्छिक पेशियाँ
3.7 पेशियों के कार्य एवं गतियाँ
3.8 शरीर की मुख्य पेशियाँ
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.13 सहायक पाठ्य सामग्री
3.14 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना –

पिछली इकाई में आपने शरीर संगठन के आयाम कोशिका से ऊतक निर्माण का अध्ययन किया। इन ऊतकों से विभिन्न तंत्रों का निर्माण होता है। मानव शरीर विभिन्न तंत्रों से मिलकर बना है। शरीर का एक अति–महत्वपूर्ण संस्थान कंकाल तंत्र है। मानव शरीर का ढाँचा अस्थियों से मिलकर बना है। अस्थियों के इस ढाँचे को अस्थि पंजर या कंकाल तंत्र कहते है। यह कंकाल शरीर के कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करता है। अस्थियों से बना मानव शरीर का ढाँचा, जो कि अलग आवृत्ति की होने के कारण शरीर के अलग – अलग हिस्सों को सहारा, सुरक्षा एवं गति प्रदान करता है, तथा मांसपेशियों के कारण मनुष्य अपने हाथ – पैर, सिर आदि विभिन्न शारीरिक अव्यवों को विभिन्न दिशाओं में सरलतापूर्वक घूमा सकते है तथा विभिन्न कार्य भी किये जाते है। यह मांसपेशियों के विशेष गुण 'संकोचन' के कारण हो पाता है। प्रस्तुत इकाई में कंकाल तंत्र व पेशीय तंत्र की विवेचना आपके सम्यक अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

3.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र के विषय में सामान्य परिचर्चा प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ कंकाल के विभिन्न कार्यो की विवेचना कर सकेंगे।
- ❖ अस्थि पंजर में अस्थियों के आकार, उनके संगठन के विषय में जान सकेंगे।
- ❖ अस्थियों की संरचना, उनके स्थान एवं स्वरूप को जान सकेंगे।
- ❖ संधियों के विषय में जानेंगे।
- ❖ पेशियों के उद्भव एवं निवेशन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ पेशियों की बनावट तथा मांसपेशियों के भेदों का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।
- ❖ पेशियों के विभिन्न कार्यो एवं गतियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। ?
- ❖ शरीर की मुख्य पेशियों के बारे में व पेशियों की संरचना एवं कार्यो के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ प्रस्तुत इकाई के अन्त में तथा परीक्षा में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम होंगे।

3.3 अस्थि संस्थान : एक परिचय

मानव शरीर का आधारभूत ढाँचा अस्थियों से बना है। शरीर की स्थिरता, आकार, आदि का मूल कारण अस्थियाँ ही है। मूल रूप से अस्थियाँ नियमित रूप से बढ़ने वाली, अपने आकार को नियमिति करने वाली अपने अन्दर होने वाली किसी भी प्रकार की टूट – फूट को ठीक करने में सक्षम है। मनुष्य का अस्थि संस्थान विभिन्न प्रकार के ऊतकों का समूह है।

1. अस्थि ऊतक (Bone or Osseous tissue)
2. उपास्थि (Cartilage)
3. घन संयोजी ऊतक (Dense Connective tissue)
4. उपकला ऊतक (Epithelium)
5. मेदवह ऊतक (Adipose tissue)
6. नाड़ी वह ऊतक (Nervous tissue)

इसी कारण एक अस्थि को अपने आप में एक अव्यव (Organ) माना जा सकता है। अस्थि समूह को अस्थिवह संस्थान के अन्तर्गत रखा जाता है। मानव शरीर में अस्थियों की कुल संख्या 206 है। शरीर के अन्य अंग प्रत्यंगों के ही समान ये भी विकसित अथवा वृद्धि को प्राप्त होती है। वृद्धावस्था आने पर जीर्ण होती है और व्यायामादि द्वारा मजबूत होती है। हमारे शरीर के भार का 18 प्रतिशत हिस्सा अस्थियों से बना है।

मांसपेशी, पेशीबन्धन, बन्धनी आदि अस्थियों से लिपटे रहते हैं। मानव शरीर का बाह्य स्वरूप इसी ढाँचे के अनुरूप होता है। विभिन्न अस्थियाँ जिस स्थान पर आपस में जुड़ी होती है। उस स्थान को संधि कहते है।

हड्डियों के बीच में रिक्त स्थान होते है। जिनमें मज्जा भरी होती है। मज्जा एक प्रकार का द्रव है। यह दो प्रकार का होता है लाल एवं पीली। लाल मज्जा में रक्त की लाल एवं

सफेद कोशिकाओं का निर्माण होता है। पीली मज्जा में मेद वाही कोशिका (Fat Cells) होते है।

3.3.1 कंकाल के कार्य –

1. यह शरीर के कोमल अंगों, मांसपेशियों के लिए आधार का कार्य करती है।
2. शरीर के कोमल एवं प्रमुख अंगों की सुरक्षा इनका प्रमुख कार्य है। यह मस्तिष्क, हृदय आदि को बाहरी आघात से सुरक्षा प्रदान करते है।
3. शरीर को कार्य करने, चलने – फिरने आदि के योग्य बनाना।
4. यह शरीर के लिए उपयोगी खनिज **कैल्शियम, फास्फोरस** आदि का संग्रह करते है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें रक्त में पुनः लौटा देते हैं।
5. लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण बड़ी अस्थियों के मध्य में स्थित लाल मज्जा (Red bone marrow) में होता है।
6. पीली मज्जा में मेद (Fat) जमा होती है।

3.3.2 अस्थियों का आकार – प्रकार –

अस्थियों के आकार और संरचना के आधार पर अस्थियों के निम्न पाँच प्रकार कहे गए हैं –

1. **लम्बी अस्थियाँ (Long Bones)** – यह अस्थियाँ लम्बी होती है। इनके बीच के भाग को दण्ड (Shaft) कहते है। इसके दो सिर (Head) होते है। यह लम्बाई में बढ़ती है। जैसे उरू अस्थि (Femur) , प्रगण्डास्थि (Humorous) आदि।
2. **छोटी अस्थियाँ (Short Bones)** – यह हड्डियाँ लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में लगभग बराबर होती है। यह कलाई में (Carpals) एवं टकनों में पायी जाती है।
3. **चपटी अस्थियाँ (Short Bones)** – यह चपटे आकार की होती है। जैसे सिर की अस्थियाँ, (Skull Bones), असफलक आदि।
4. **असमाकृति अस्थियाँ (Irregular Bones)** – यह विषमाकार अस्थियाँ है और किसी भी प्रकार में नहीं रखी जा सकती ह। जैसे क**शेरूका (Vertebrae) नितम्बास्थि (Hip bonr)** आदि।
5. **कण्डरास्थि (Sea-maid Bones)** – यह कण्डराओं (Tendons), या जोड़ों में विकसित होने वाली हड्डियाँ है। जैसे जन्वास्थि (Patella),

3.3.3 अस्थियों का संगठन एवं रचना –अस्थियाँ भले ही अन्य अंगों की तरह कोमल न दिखें पर इनमें बढ़ने, किसी भी प्रकार की टूट – फूट को ठीक करने की क्षमता होती है और इसका कारण इनमें मौजूद चार प्रकार की कोशिकाऐं है –

1. **आस्टिओजैनिक कोशिका (Osteogenic Cells) –** यह विभाजन में सक्षम अस्थि कोशिका है यह **आस्टिओब्लास्ट** का निर्माण करते हैं। यह अस्थि आवरक कला के अन्दरूनी भाग में पाए जाते हैं।
2. **आस्टिओब्लास्ट (Osteoblasts) –** यह कोशिकाऐं अपने चारों तरफ कोलैजन (Collagen) नामक प्रोटीन एवं **कैल्शियम** आदि का स्राव कर अस्थि निर्माण करते हैं।

3. **<u>आस्टिओसाइट (Osteocytes) –</u>** यह अस्थि निर्माण कर चुकी कोशिकाऐं हैं जो अस्थियों के बीच में बारीक रिक्त स्थान में होती है। इनमें कोई विभाजन नहीं होता है।
4. **<u>आस्टियोक्लास्ट (Osteoclast) –</u>** यह बड़ी – बड़ी कोशिका होती है और इसका कार्य अस्थि को घोलकर सोखना है। जिससे उनका आकार नियंत्रित हो सके।

इनके अलावा अस्थियों में **आस्टियोब्लास्ट** द्वारा स्रावित **कोलेजन** (Collagen) नामक **प्रोटीन, कैल्शियम कार्बोनेट** (Calcium Carbonate), **कैल्शियम फॉस्फेट** (Calcium Phosphate) , **मैग्नीशियम , पोटेशियम** आदि खनिज होते है। व्यस्क की अस्थियों का दो तिहाई हिस्सा खनिज लवणों से बना होता है।

कोलेजन से अस्थियों में लचक और खजिन लवणों से मजबूती आती है। इनके कारण ही हड्डियों में स्टील जितनी मजबूती होती है।

<u>3.3.4 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या –</u>मनुष्य शरीर में कुल 206 हड्डियाँ पायी जाती है। अंगों के आधार पर इनकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है।

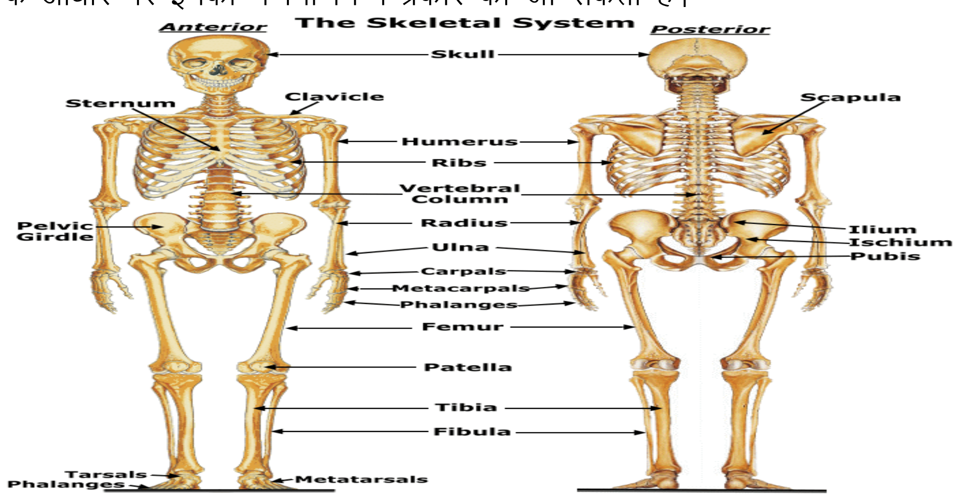

1.	कपाल (Cranium) में	– 8
2.	चेहरा (Face) में	– 14
3.	कान (Ear) में	– 6
4.	गले में हाइऑइड (Hyoid) में	– 1
5.	रीढ़ (Spinal Column) में	– 26
6.	पसली (Ribs) में	– 24
7.	छाती (Sternum) में	– 1
8.	उर्ध्व शाखा (प्रत्येक हाथ मे 30)	– 60
9.	अधो शाखा (प्रत्येक पैर मे 30)	– 60
10.	नितम्बास्थि	– 2
11.	अक्षकास्थि (Clavicle)	– 2
12.	स्कन्धास्थि (Scapula)	– 2

योग – 206

इन अस्थियों का विशेष विवरण निम्न प्रकार है –

1. **कपाल –** कपाल में कुल 22 अस्थियाँ है। इनको दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। कपाल (Cranial) अस्थि, चेहरे (Facial) अस्थियाँ। कपाल की अस्थियाँ, मस्तिष्क को सुरक्षा प्रदान करती है। चेहरे की अस्थियाँ निम्न है।

1. **नासास्थि (Nasal Bones)**	–	2
2. **उर्ध्वहन्वास्थि (Maxilla Bones)**	–	2
3. **कपोलास्थि (Zygomatic Bones)**	–	2
4. **अधोहन्वास्थि (Mandible Bones)**	–	2
5. **अश्रुअस्थि (Lactic Bones)**	–	2
6. **तालु अस्थि (Palatine Bones)**	–	2
7. **अधः शुक्तिकास्थि (Inferior nasal Bones)**	–	2
8. **नासाफलकास्थि (Bomber)**	–	1
कुल	–	**14**

इनमें से केवल अधोहन्वास्थि ही चल संधि युक्त है। कपाल अस्थियाँ 8 है।

1. **ललाटास्थि (Frontal Bone)**
2. **पार्षिकास्थि (Parietal Bone)**
3. **शंखास्थि (Temporal Bone)**
4. **पष्च कपालास्थिअ (Occipital Bone)**
5. **कीलकास्थि (Sphenoid Bone)**
6. **झर्झरास्थि (Ethmoidal Bone)**

इसके अलावा सिर में कान की अस्थियाँ भी मिलती हैं जो तीन अस्थियों का जोड़ा है – मुद्‌गर **(Malleus)** नेहाई **(Incus)** रकाब **(Stapes)**

कपाल में दो रन्ध्र भी मिलते है। ब्रहम्रन्ध्र और अधिपति रन्ध्र। यह बच्चों में एक वर्ष होने तक भर जाते है।

गर्दन (Neck) की अस्थियाँ – गर्दन में कुल आठ अस्थियाँ होती है। जिसमें एक आगे की तरफ श्वास नलिका के आगे की तरफ होती है। जिसे हाइआइड **(Hyoid)** अस्थि कहते हैं। बाकी सात ग्रीवा कशेरूका है जिनके बीच में कशेरूका रन्ध्रक होता है **(Vertebral Foramen)**। इसमें से सुषुम्ना नाड़ी **(Spinal Cord)** रहती है।

2. **वक्ष (Thorax Bone) की अस्थियाँ –** वक्ष के बीचों बीच आगे की तरफ उर्वास्थि **(Sternum)** होता है। यह चपटी अस्थि है। पसलियाँ आगे की

तरफ इसी अस्थि से जुड़ी रहती है। पसलियाँ उर्वास्थि के दोनों तरफ 12 की संख्या होती है। जिनमें से ऊपर की 10 उर्वास्थि से जुड़ी रहती है। बाकी की 2 जिन्हें फ्लोटिंग रिब्स **(Floating Ribs)** कहते है यह उर्वास्थि से नहीं जुड़ी होती है। पीछे की ओर यह 12 वक्षीय कशेकरूकाओं से जुड़ी रहती है। इनका कार्य हृदय और फेफड़ों की रक्षा करना है। कशेरूका के कशेरूक रन्ध्रक से सुषुम्ना नाड़ी होती है। इनके अलावा एक अक्षकास्थि **(Clavicle)** और एक स्कन्धास्थि **(Scapula)** भी है।

3. **उदर एवं श्रोणी की अस्थियाँ –** उदर में केवल पाँच कशेरूका होती है। जिसके रन्ध्रक में सुषुम्ना नाड़ी सुरक्षित रहती है।

   श्रोणी में दो नितम्बास्थि एक त्रिकास्थि और एक अनुत्रिकास्थि होती है। त्रिकास्थि अनुत्रिकास्थि में सुषुम्ना की नाड़ियाँ सुरक्षित रहती है। पैर उर्वास्थि नितम्बास्थियों से जुड़ी रहती है।
4. **भुजाओं की अस्थियाँ –** हर भुजा में सबसे ऊपर की तरफ प्रगण्डास्थि होती है। जो स्कन्धास्थि से जुड़ा रहता है। इस सन्धि को स्कन्ध संधि कहते है। नीचे की तरफ प्रण्डास्थि बहिःकोष्ठाअस्थि एवं अन्तः प्रकोष्ठास्थि से जुड़ी होती है। इस संधि को कूर्पर संधि कहते है। हाथ की कलाई 8 मणिबन्ध की अस्थियाँ से बनती है। यह 8 अस्थियाँ चार – चार अस्थियों की दो पंक्तियों में लगी होती है। इन अस्थियों से हथेली की 5 शलाकास्थियाँ जुड़ी होती है। जिनके अग्रभाग में अंगुलियों की अस्थियाँ होती है। हर अंगुली में तीन अंगुलास्थि होती है और अंगूठे में दो अंगुलास्थि होती है।
5. **टाँगों की अस्थियाँ –** जाँघ की अस्थि को उर्वास्थि **(Femur)** कहते है। यह नितम्बास्थि से जुड़ी होती है नीचे की तरफ यह अन्तर्जघास्थि **(Tibia)** और बहिर्जघास्थि **(Fibula)** से जुड़ी होती है। इसी जोड़ में ऊपर की तरफ जान्वास्थि **(Patella)** होती है। एड़ी में 7 गुल्फास्थियाँ **(Tarsals)** होती है। इनसे 5 अनुगुल्फास्थियाँ **(Mehatarsals)** जुड़ी होती है। इनसे प्रत्येक पैर की अंगुली की तीन अंगुलास्थियाँ और पैर के अंगूठे से दो अंगुलास्थि जुड़ी होती है। इस प्रकार मनुष्य के कंकाल में कुल 206 हड्डियाँ होती है।

3.4 संधि परिचय –

दो या दो से अधिक अस्थियों के जोड़ को सन्धि कहते है। सन्धियों के कारण ही शरीर में किसी भी प्रकार की गति संभव हो पाती है। क्रिया अथवा गति के आधार पर सन्धियों के निम्न भेद कहे गए हैं।

1. **सिनाथ्रोसिस (Synarthrosis)** – यह वह संधियाँ है जिनमें बिल्कुल भी गति संभव नहीं है। इस प्रकार की संधियाँ कपाल में मिलती है। यह पूर्ण अचल संधियाँ हैं।
2. **एम्फी आर्थोसिस (Amphiarthrosis)** – यह अर्ध चल संधियाँ है। जिसमें बहुत कम गति संभव हैं। अन्तः और बहिर्जंघास्थि संधि इसका उदाहरण है।

3. डाय – आर्थोसिस (Amphiarthrosis) – यह पूर्ण चल संधियाँ है जिनमें अत्यधिक गति संभव है जैसे कूर्पर संधि **(Elbo Joint)**, स्कन्ध संधि **(Shoulder Joint)** इत्यादि।

संरचना के आधार पर संधियों को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है –

1. **तन्तुमय संधियाँ (Fibrous Joints)**,
2. **उपस्थिमय संधियाँ (Cartilaginous Joints)**,
3. **साइनोवियल संधियाँ (Synovial Joints)**,

1. **तन्तुमय संधियाँ (Fibrous Joints)** – यह वह संधियाँ है जिनमें तन्तुमय संयोजी ऊतक से जुड़ी होती है। इनमें या तो बिल्कुल भी गति संभव नहीं होती है या कुछ गति संभव होती है।

   क) सूचर्स **(Sutures)** – यह कपाल की संधि में पाए जाते है। यह केवल नवजात शिशु में ही अर्धचल होते है बाद में यह पूर्ण अचल हो जाते हैं।

   ख) सिण्डेस्मोसिस (Synvlrdmosis) – इनमें अस्थियाँ स्नायुओं **(Ligments)** से बहुत मजबूती से जुड़ी होती है। जिस कारण इनमें बहुत मजबूती से जुड़ी होती है। जिस कारण इनमें बहुत कम गति संभव होती है। अधः अन्तर्जघास्थि और बहिर्जघास्थि संधि इसका उदाहरण है।

   ग) गोम्फोसिस (Gomphosis) – दाँत और जबड़े की संधि इसका उदाहरण है। इसमें जबड़े में बने गर्तो में दाँत गड़े होते है।

2. **उपास्थिमय संधियाँ (Cartilaginous Joints)** – इनमें अस्थियाँ उपास्थि **(Cartilage)**,
   से जुड़ी होती है। इसके दो प्रकार हैं।

   क) सिन्कान्ड्रोसिस (Synchondrosis) _ – यह विकासशील अस्थियों में पाए जाते है। इनमें गति संभव नहीं होती है। अस्थि विकास पूर्ण होने पर यह अस्थि भाग जुड़ जाते है औ एक लम्बी अस्थि का निर्माण करते हैं। यह लम्बी अस्थियाँ मध्य और सिरा भाग के बीच में एक होने से पहले (पूर्ण विकास से पहले) पाए जाते है।

   ख) सिम्फाइसिस (Symphyses) _ – इसमें अस्थि के बीच में तन्तुमय कार्टिलेज **(Fibro Cartilage)** होती है जिससे इनमें बहुत कम गति संभव होती है। उदाहरण – कशेरूका संधि **(Intervertebral Joint)**

3. **साइनोवियल संधियाँ (Synovial Joints)** – यह शरीर की अधिकांश संधियाँ है। इनमें अत्यधिक गति संभव है। (चल संधि) इन संधियों में अस्थियों के जोड़ वाले भाग पर उपास्थि की परत चढी होती है। यह भाग एक संधि कैप्सूल **(Joint capsule)** नामक झिल्ली से ढका रहता है और इसके अन्दर चिकना द्रव **(Synovial Fluid)** भरा होता है। इनके उदाहरण **कोहनी, घुटने, टखने** आदि की संधियाँ है। इन्हें संधि भाग **(Aerticular surface)** के आधार पर छः भागों में बाँटा गया है –

क) <u>संसपी/प्रसर संधि (Gliding/Planar Joint)</u> – यह कलाई की हड्डियों के बीच में पाई जाती है।

ख) <u>कोर/ कब्जेदार संधि (Hinge capsule)</u> – यह घुटने, कोहनी की संधि है।

ग) धुराग्र / कीलदार संधि (Pivot Joint) – यह बहिर्प्रकोष्ठास्थि और अन्तःप्रकोष्ठास्थि **(Radio – ulna Joint)** में मिलती है।

घ) **<u>कौन्डाइलाइड संन्धि –</u>** यह वहिप्रकोष्ठास्थि और मणिबन्ध अस्थि संधि में पाई जाती है। उदाहरण यह संधि **घुटने के जोड़** में पायी जाती है।

ड़) <u>सैडल संधि (Saddle Joint)</u> – यह मणिबन्ध और शलाकास्थियों **(Carpo – Metacarpal joint)** की संधि में मिलता है।

च) <u>गेंद – बल्ला संधि (Ball and Socket Joint)</u> – यह स्कन्ध संधि आदि में मिलती है। शरीर की सभी संधियों को उपरोक्त प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

<u>अभ्यास प्रश्न – 1</u>

प्रश्न 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) हमारे शरीर के भार का ....हिस्सा अस्थियों से है।

ख) जिस स्थान में अस्थियाँ आपस में जुड़ी होती है। उसे ....कहते है।

ग) कंकाल का प्रमुख कार्य कोमल एवं ....अंगों की रक्षा करना होता है।

घ) मनुष्य शरीर में छोटी – बड़ी कुल अस्थियों की संख्या ....है।

ड़) रचना के आधार पर अस्थियों को ....प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

2. **<u>सत्य / असत्य बताइये –</u>**

क) हड्डियों के बीच में रिक्त स्थान में मज्जा होती है।

ख) चेहरे की अस्थियों की संख्या 14 होती है।

ग) गेंद एवं बल्ला संधि हाथों की अंगुलियों में पायी जाती है।

3.5 मांस संस्थान अथवा पेशी तंत्र – एक परिचय

अनेकों कोशिकाओं एवं उनके समूह ऊतकों द्वारा ही शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। इन्हीं कोशिकाओं से ही मांसपेशी की उत्पत्ति होती है। मांसपेशी के प्रत्येक तन्तु में अनेक कोशिकाएं होती है।

मनुष्य शरीर का अधिकांश वाह्य व आन्तरिक भाग मांसपेशियें से ढका रहता है। शरीर का ऊपरी हिस्सा पूर्ण रूपेण मांसाच्छादित होने के कारण ही शरीर सुन्दर तथा सुडौल दिखाई देता है।

मांसपेशियां अथवा मांस एक लसदार समूह को कहते है। मांसपेशियां या तो मांस के गुच्छे के रूप में होती है या एक – एक मांस सूत्र के रूप में होती हे। इन पेशियों में 'संकोचन' का विशेष गुण पाया जाता है। इस संकुचन के गुण के कारण ही हम अपने हाथ – पाव, सिर आदि शारीरिक अंगों को विभिन्न दिशाओं में घुमा सकते हैं तथा उनके द्वारा

विभिन्न कार्य किये जा सकते हैं। जैसे – मुँह का खोलना, तथा बंद करना, हाथों से लिखना, पाँवों से चललना आदि, हृदय की धड़कन, भोजन का सरककर गले से नीचे उतरा, आँखों की पुतलियों का सिकुड़ना और फैलना आदि भी इन्हीं के कारण सम्पन्न होते है।

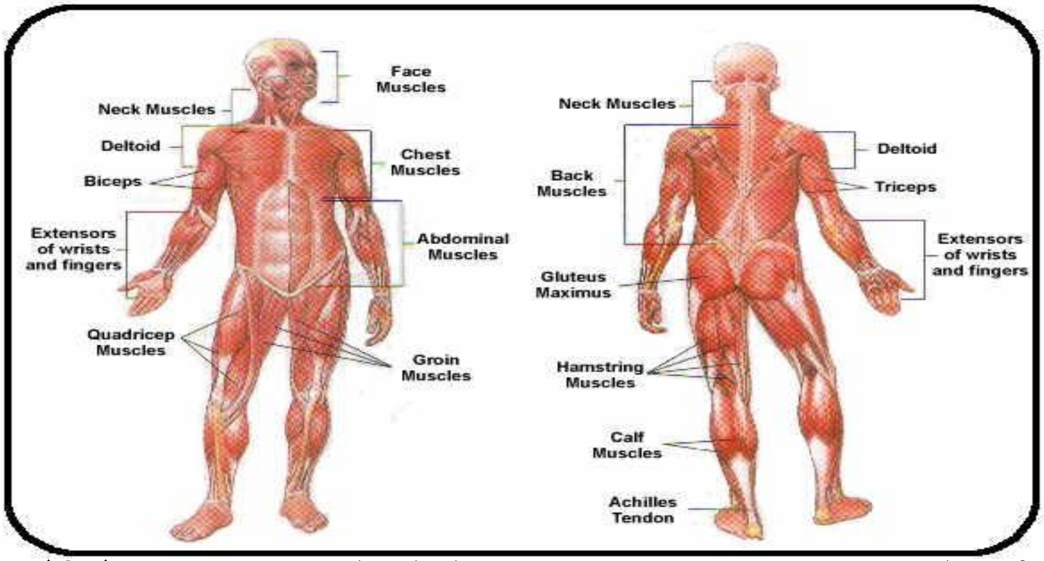

3.5.1 **पेशियों का नामकरण –** पेशियों के नाम उनकी बनावट क आधार पर उनके कार्य के आधार पर शरीर में उनकी स्थिति एवं उनके तन्तुओं की दिशा के आधार पर रखा जाता है। उदाहरण के लिए – कार्य के आधार पर पेशियों का नामकरण – बांह की पेशी Flexor Policies Longs नामक पेशी या आकृति के आधार पर डेस्टाइड (Deltoid Muscle) जो कि डेस्टा के आकार की है व स्थिति के आधार पर External Intercostals and Internal Intercostals पेशियों के नाम रखे गये है।

3.5.2 पेशियों का उद्‌गम एवं निवेशन –

क)**उद्‌गम –** उद्‌गम से तात्पर्य पेशी का वह सिरा जो पेशीय संकुचन होने पर स्थिर अवस्था में होता है। वह सिरा अस्थि जिस हिस्से से जुड़ता है उस स्थल या सम्बन्धित स्थान को उद्‌गम स्थल कहा जाता है। पेशियों के उनके कार्य के अनुसार उनके उद्‌गम स्थल में परिवर्तन होते रहते है। पेशी का उद्‌गम स्थल सामान्यतः अक्षीय कंकाल के अधिक समीप रहता है।

ख) **निवेशन –** पेशी के निवेशन का अर्थ पेशी के गतिशील से है। अर्थात् अस्थि के उस हिस्से (स्थल) से पेशी का निवेशन होता है। सामान्यतः पेशी का उद्‌गम अक्षीय कंकाल (Axial Skeleton) के अधिक समीप होता है, तथा निवेशन दूरस्थ जुड़ाव होता है। पेशियों की क्रिया के अनुसार ही इनके उद्‌गम स्थल परिवर्तित होते है, साथ ही निवेशन स्थल भी परिवर्तित हो जाते है।

3.5.3 पेशियों की बनावट –

पेशियों की बनावट पेशी तन्तुओं के विभिन्न आकारों में व्यवस्थित होने के कारण होती है। तन्तुओं की विभिन्न व्यवस्थाओं के फलस्वरूप ही पेशियों की शक्ति, गतिशीलता, स्थिरता, लचीलापन आदि होता है। पेशी के मध्य भाग के लम्बे होने से पेशी में गति अधिक होती

है। मोटी पेशी में शक्ति अधिक होती होगी। किसी पेशी में तन्तुओं की संख्या अधिक है तो उस पेशी में शक्ति अधिक होती है। यह पेशियाँ विभिन्न आकार – प्रकार की होती है। फेशीकिल्स (Fascicles) जो कि कंकालीय तन्तु के छोटे – छोटे गुच्छों के समूह होते है। इसी फेशीकल्स की व्यवस्था तथा उनके टेन्डम्स से जुड़ाव स्ट्रेप पेशी, पंख के समान पीनेट पेशी तथा गोलाकार पेशी मुख की ऑर्बिकुलेरिस ओरिस, आँखों की पेशी आर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ प्रेशी आदि है। स्ट्रेप पेशी का उदाहरण – गर्दन की स्टर्नोहाइड पेशी उदरीय भित्ती की रेक्टस एण्डोमिनिस पेशी, फ्यूजीफार्म पेशी का उदाहरण – बाँह की बाइसेप्स पेशी, यह तकले के आकार की हाती है।

3.6 मांसपेशियों के भेद –

मानव शरीर में छोटी – बड़ी कुल 519 मांसपेशियां पायी जाती है। इनके निम्नलिखित दो भेद माने जाते है –

1. **ऐच्छिक पेशी** (Voluntary)
2. **अनैच्छिक पेशी** (Non Voluntary)

3.6.1 ऐच्छिक पेशियाँ– ऐच्छिक पेशी को पराधीन मांसपेशी भी कहते है। ये मांसपेशियां मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती है। ऐच्छिक पेशियों का प्रयोग करना या ना करना मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करती है। ऐच्छिक पेशियाँ जैसे हाथ – पाँव आदि की मांसपेशियाँ।

3.6.2 अनैच्छिक पेशियाँ –अनैच्छिक मांसपेशी को स्वाधीन मांसपेशी भी कहते है। ये मांसपेशियां स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती है तथा मनुष्य इन मांसपेशियों को अपनी इच्छानुसार नहीं चला सकता है। अनैच्छिक मांसपेशियों अपना कार्य निरन्तर दिन – रात करती ही रहती है। जैसे – श्वसन संस्थान की मांसपेशीयां, हृदय की पेशी, अग्न्याशय, अन्ननली आदि की मांसपेशियां स्वतः ही अपना कार्य निरन्तर करती ही रहती है।

3.7 पेषियों के कार्य एवं गतियाँ –

पेशियों के क्रियात्मक होने के कारण ही शरीर में विभिन्न अंगों में गति संभव होती है। जिससे मनुष्य विभिन्न प्रकार के कार्यो को सम्पादित कर पाता है। सामान्यतः पेशियों में निम्न गतियाँ होती रहती है। जैसे – पेशियों में आकुंचन (Flexion) प्रसारण (Extention) तथा अपवर्तन, (Abfiction) अभिवर्तन (Adduction) एवं घूर्णन (Rotation) तथा पर्यावर्तन (Circumduction)।

पेशियाँ शरीर के विभिन्न भागों में गति लाने के लिए समूहों (Group) में कार्य करती है। पेशियां का समूह दूसरे समूह के विरूद्ध कार्य करने के कारण उसका विरोधी (Antagonist) कहलाता है। संकोचक पेशी शरीर के किसी भी भाग में गति का कार्य करती है। वे अविरोधी (Agonists) होती है। जो इनके विपरीत कार्य करती है। वे प्रतिरोधी पेशियाँ (Antagonists) होती है। अपवर्तक पेशी व अभिवर्तक पेशियाँ एक – दूसरे के विरोधी होती है। कुछ पेशियाँ स्थिरीकारक पेशियां (Fixates) होती है जो भुजा के भागों को तब स्थिर रखती है। जब शरीर के अन्य भाग में गति हो रही हो। ऐसी पेशियाँ जो गति उत्पन्न करती है तथा दो या दो से अधिक हो, उन्हें योगवाही पेशी कहा जाता है।

शरीर के किसी भी भाग में गति किसी एक पेशी के कारण उत्पन्न नहीं होती है। बल्कि कई पेशियाँ मिलकर यह कार्य करती है। उदाहरण के लिए – पेन उठाने के लिए कोई एक पेशी कार्य नहीं करती, इस कार्य को सम्पन्न करने में अंगुलियों, अंगूठे, कलाई, कोहनी, कंधा धड़ तक की गति आवश्यक होती है।

3.8 शरीर की मुख्य पेशियाँ –

मानव शरीर की मुख्य पेशियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है –

1. **सिर की पेशियां (Muscles of the head)** – मनुष्य शरीर में सिर की अधिकतर पेशियां चेहरे में स्थित रहती है। सिर में कपाल आक्सीपीटोफ्रन्टैलिस पेशी (Occipitafrontales Muscles) की एपोन्यूरोसिस से ढका होता है। जिसे गैलीया एपोन्यूरोटिका (Gales Aponeurotica) कहा जाता है। यह पेशी दो भागों एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर दो भागों में विभक्त होती है। यह दोनों भाग क्रमशः फ्रन्टल अस्थि एवं ऑक्सीपीटल अस्थि पर स्थित होते है।
2. **चेहरे की पेशियाँ** (Miscles of face) – चेहरे की पेशियों को उनके कार्यो के अनुसार दो भागों में विभक्त किया है –
   I. हाव भाव की पेशियाँ (Muscles of facial Expression)
   II. चबाने की पेशियाँ (Muscles of Mastication)

1. हाव भाव की पेशियाँ (Muscles of facial Expression) – ये पेशियां त्वचा में खिचांव उत्पन्न कर विभिन्न प्रकार के हाव – भाव उत्पन्न करती है। ये पेशियाँ निम्न है।

   क) **आक्सीपिटोफ्रन्टैलिस पेशी** (Occipitofrontalis)– यह ललाट एवं आँखों के ऊपरी भाग का निर्माण करती हे।

   ख) **आर्बिकुलेरिस आक्यूलाइ पेशी** (Orbicularis Ocular) – यह गोलाकार पेशी आँखों को खोलने और बंद करने का कार्य करती है, तथा आँखों को गोल – गोल घुमाने के लिए इस पर छोटी – छोटी पेशियां होती है।

   ग) **ऑर्बिकुलेरिस ऑरिस पेशी** (Orbicularis Ores)– यह गोलाकार पेशी मुँह के चारों ओर स्थित है।

2. **चबाने की पेशियाँ (Muscles of Mastication)** – ये पेशियां भोजन को चबाते समय निचले जबड़े को ऊपर व नीचे, दायें – बायें तथा मुँह को बंद करती है। जिससे भोजन अच्छी तरह पिस जाता है। ये पेशियां निम्न है।

   क) **टेम्पोरेलिस पेशी (Temporaries Muscles)**– यह पेशी निचले जबड़े को ऊपर उठाकर मुँह को बंद करने का कार्य करती हैं।

   ख) **टैरीगाइड पेशी (Pterygoid Muscles)** – यह टैरीगाइड प्रवर्ध से लेकर मेण्डीबूलर तक फैली होती हैं इस पेशी से एक प्रकार से जुगाली सी होती है। जिससे भोजन को भली – भाँति चबाया जा सकता है।

   स) **मैसेटर पेशी (Master muscle)** – यह पेशी जबड़े के कोण से जाइगोमेटिक आर्च तक फैली होती है। यह चबाते समय निचले जबड़े को ऊपर उठाकर ऊपरी जबड़े से मिलाती है। जिससे भोजन अच्छी तरह पिस जाता है।

3. **गर्दन की पेशियाँ** (Neck Muscles) – गर्दन को अनेक पेशियां लगी होती है। जिनके सहारे सिर दांये – बायें, ऊपर – नीचे, घुमाया जा सकता है। ये पेशियाँ निम्न है –

   क) **स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड पेशी (Sternocleidomastoid Muscles)–** यह पेशी गर्दन के सामने स्थित होती है। जब दोनों ओर की पेशी में एक साथ संकोच होता है। तब यह पेशी गर्दन झुकाने का कार्य करती है।

   ख) **टैपीजियस पेशी (Trapeziums Muscles) –** यह पेशी वक्ष के पीछे वे गर्दन में स्थित होती हैं। यह पेशी त्रिकोणाकार होती है। इस पेशी के ऊपरी भाग में संकुचन से स्कैपुला ऊपर की और तथा निचले भाग के संकुचल से नीचे की ओर खिचांव होता है। परन्तु जब सम्पूर्ण पेशी में एक साथ संकुचन होता है, तो यह स्कैपुला (कंधों के पीछे की ओर खीचती है। अर्थात् मेरूदण्ड की ओर खींचती है।

   ग) **प्लैटिज्मा मायोइड्स (Platys Myoides)** – यह पेशी गर्दन की निचली सतह पर त्वचा के नीचे स्थित होती है। इस पेशी के संकुचित हाने पर मुँह के कोण के नीचे हो जाते है तथा गर्दन की त्वचा खींच जाती है। इनके अतिरिक्त गर्दन में **स्टर्नोहायाइड पेशी** (Stern hyoid Muscles) **माइलोहायाइड** (Mylohyoid) **स्टाइलोहायइड** (Stylohyoid) **आदि पेशियां होती है।**

4. **वक्ष भाग की पेशियां (Muscles of Trunk) –** वक्ष भाग की पेशियां निम्न है –

   क) पेक्टोरेलिस मेजर पेशी (Prctoralis Major Muscles)– यह पेशी भुजा (बाँह) को वक्ष के सामने की ओर खींचने का कार्य करती है तथा कंधे का घुमाव भी इसी पेशी में होता है।

   ख) पेक्टोरेलिस माइनर पेशी (Pectorals Minor Muscles) – यह पेशी पेक्टोरेलिस मेजर पेशी के नीचे स्थित होती है तथा यह स्कैपुला को नीचे की ओर खींचती है।

   ग) **सीरेटस एन्टीरियर पेशी (Serratas Anterior)** – यह पेशी स्कैपुला को आगे की ओर तथा बाहर की ओर खींचने का कार्य करती है।

   घ) **डायाफ्राम (Diaphragm)** – यह पेशी वक्ष स्थल व उदर क्षेत्र को अलग करती है। यह गुम्बद के आकार की चौड़ी पेशी है।

   ड़) **वाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (External Intercostals Muscles)** – यह पेशी पसलियों को आगे और ऊपर की ओर उठाने का कार्य करती है। इसी पेशी के कारण फेफड़ों में वायु भर पाती है।

   च) **आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (Internal Intercostals Muscles) –** यह पेशी भीतर की ओर स्थित होती है। यह पेशी पसलियों को नीचे एवं अन्दर की ओर खींचने का कार्य करती है। इस पेशी के कारण ही श्वसन बाहर निकलने में मदद होती है।

5. **पीठ की पेशियाँ (Muscles Of the Back) –** पीठ के ऊपरी भाग एवं निचले भाग की चौड़ी सपाट पेशी क्रमशः ट्रेपीजियस (Trapeziumsy Muscles) एवं

लेटीमीसम डॉसाई (Latissimus Dassi Muscles) तथा रोहम्बॉइडियस व लीवेटर स्कैपुल (Levator Scapulace) पेशियाँ प्रमुख है। जिनका निवेशन ऊपरी भुजा की अस्थियों से होता है। पीठ की पेशियों में कुछ अतिविशिष्ट पेशियों के अन्तर्गत श्वसन में भाग लेने वाली सीरेटस पोस्टीरियर सुपीरियर (Serratus Posterior Superior Muscles) पेशी है एवं स्प्लैनियस पेशी (Splenius Muscles) है। इस पेशी में संकुचलन हाने से सिर का प्रसारण (Extension) होता है। सैक्रोस्पाइनैलिस पेशी का कार्य वर्टिबल कॉलम को प्रसारित करना है। इन पेशी का दूसरा नाम रेक्टस स्पाइनैलिस (Rectus Spinalis) भी है।

6. **भुजा की पेशियाँ –** इसके अन्तर्गत वाइसेप्स ब्रैकिएलिस पेशी (Biceps Branchi Muscles) तथा सवस्कैपुलेरिस पेशी (Supscapularis Muscles) टेरीस मेजर पेशी (Teres Major Muscles) डेल्टॉइड पेशी (Deltoid Muscles) कोरेकोब्रैकिएलिस पेशी आदि पेशियां आती है।
7. **श्रोणिगत पेशियाँ (Pelvic Muscles)–** इसमें लीवेटर एनाई (Levator ani Muscles) कौक्सिजाई पेशियां (Coccygei Muscles) ग्लूटियस मैक्सिमस (Gluteus Maximus) आदि पेशियां आती है।
8. **पैरों की पेशियां –** जंघा के आगे की तरफ सार्टोरियस रैक्टस फिमोरिस (Rectus Femora's) वास्टस लेट्रेलिस, मिडिएलिस (Vastus Lateralis, Vastis Medialis) और पीछे की तरफ बाइसेप्स फिमोरिस(Biceps femoris) , सेमिटेन्डिनोसस (Semitendinosus) आदि मांसपेशियां होती है। घुटने के नीचे के हिस्से में गैस्ट्रोक्नीमियस (Gastrocnemius) सोलियस (Solius) आदि प्रमुख है।

शरीर की सबसे बड़ी मांसपेशी ग्लूटियस मैक्सिमस (Gluteus Maximus) है। यह नितम्ब भाग में मिलती है। सबसे लम्बी मांसपेशी सार्टोरियस (Sartorius) है। यह जंघा के अग्रभाग में पाई जाती है। शरीर की सबसे छोटी मांसपेशी स्टेपीडियस (Stapedius) है। यह कर्ण के अन्दर पाई जाती है।

अभ्यास प्रश्न–2

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**
   क) पेशी का विशेष गुण ....है।
   ख) मानव शरीर में छोटी – बड़ी कुल ....पेशियां पायी जाती है।
   ग) ऐच्छिक पेशी को .... पेशी भी कहते हैं।
   घ) पेशी के निवेशन का अर्थ ....हिस्से से है।
2. **सत्य / असत्य बताइये**
   क) मनुष्य शरीर का अधिकांश बाहय व आंतरिक भाग मांसपेशियों से ढका रहता है।
   ख) संकुचन के कारण ही मनुष्य शारीरिक अंगों को विभिन्‍न दिशाओं में घुमा सकता है।
   ग) आर्बिकुलेरिस आक्यूलाइपेशी भुजाओं की पेशी है।

घ) डायफ्राम वक्ष स्थल व उदर क्षेत्र को अलग करता है।

3.9 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों आपने अध्ययन किया कि अस्थि और संधियाँ शरीर की गति का कारण है। इसके अलावा अस्थियाँ शरीर के कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करती हैं और शरीर को एक स्थूल आधार प्रदान करते हैं। अस्थियों का निर्माण सजीव पदार्थ और खनिजों के मेल से होता हैं। अस्थियों के अन्दर रक्त का निर्माण होता है। कंकाल तंत्र अन्य तंत्रों को सहारा देता है एवं मांसपेशीय संस्थान एवं रक्त से इसका सीधा संबध हैं। शरीर मांसपेशीय संस्थान शरीर की समस्त क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है। सभी अंग मांसपेशियों के समूह के रूप में ही है। मांसपेशियों में कुछ पेशियां ऐसी होती है जो स्वयं अपनी इच्छानुसार कार्य करती है तथा कुछ पर हमारा नियन्त्रण नहीं होता है।

3.10 शब्दावली –

1. कार्बनिक पदार्थ – कार्बन युक्त पदार्थ
2. अस्थि – हड्डी
3. कंकाल – अस्थियों का समूह
4. बन्धनी – स्नायु
5. स्नायु – दो अस्थियों को जोड़ने वाले प्रतानवत/ सूत्र रचनाऐं
6. कण्डरा – मांसपेशियों को अस्थि से जोड़ने वाली रचनाऐं
7. जानु – घुटना
8. संस्थान – तन्त्र
9. ऊतक – कोशिकाओं का समूह
10. निवेशन – गतिशील हिस्सा
11. उद्‌गतम –
12. ऐच्छिक पेशी – जिस पेशी को ईच्छानुसार गति दी जा सके
13. अनैच्छिक पेशी – जिस पेशी को इच्छानुसार गति नहीं दी जा सकती।
14. आंकुचन – संकोच
15. प्रसारण – फैलाव

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

<u>अभ्यास प्रश्न–1</u>

<u>रिक्त स्थान की पूर्ति</u>

1. क) 18 प्रतिशत ख) सन्धि ग) प्रमुख अंगो घ) 206 ड) 5
2. सत्य/असत्य

   क) 18 सत्य ख) सत्य ग) असत्य

<u>अभ्यास प्रश्न–2</u>

1 क) संकुचन ख) 519 ग) स्वाधीन पेशी घ) गतिशील

2 क) सत्य ख) सत्य ग) असत्य घ) सत्य

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
8. सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
9. अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

3.13 सहायक पाठ्य सामग्री –

11. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
12. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
13. सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
14. अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
15. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. अस्थि संस्थान का परिचय दीजिए, एवं कंकाल तंत्र के कार्यो का वर्णन कीजिए?
2. अस्थियों के संगठन एवं रचना का वर्णन कीजिए तथा अस्थियों की संख्या का वर्णन कीजिए ?
3. संधियों का परिचय दीजिए?
4. मांसपेशियों का भेद सहित वर्णन करते हुये पेशियों के उद्गम एवं निवेशन समझाइये?
5. शरीर की मुख्य पेशियों का वर्णन कीजिए, तथा पेशियों के कार्य एवं गतियों का वर्णन कीजिए?

इकाई 4 – रक्त परिसंचरण तंत्र

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 रक्त परिसंचरण तंत्र का परिचय
4.4 रक्त के अवयव
 4.4.1 प्लाज्मा
 4.4.2 रक्त कणिकायें
4.5 रक्त के कार्य
4.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव
 4.6.1 हृदय
 4.6.2 धमनियॉ
 4.6.3 शिराएँ
 4.6.4 कोशिकाएं तथा लसिकायें
 4.6.5 फेफड़े
 4.6.6 महाधमनी तथा महा–शिरा
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तांवना

मानव शरीर विभिन्न तंत्रो से मिलकर बना है। मनुष्य के शरीर में एक विस्तृत नसों नाडियों का जाल एक जाल विछा होता है। जिस प्रकार हमारे घरो में पानी के वितरण के लिए पाइप लाइन विछी होती है उसी प्रकार रक्त के पूरे शरीर में संचरण के लिए धमनी तथा शिराओं की एक पाइप लाइन होती है। इसी पाइप लाइन को परिसंचरण तंत्र कहते है। इस इकाई में रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र का वर्णन किया जा रहा है। इस इकाई में आप जानेंगे कि किस प्रकार रक्त परिसंचरण तंत्र हृदय, धमनियॉ, शिराओं आदि के द्वारा रक्त को पूरे शरीर में प्रवाहित करता है तथा साथ ही दूषित रक्त को किस

प्रकार शुद्धिकरण के लिए भेजता है। रक्त शरीर का एक महत्व पूर्ण अवयव है प्रस्तुत इकाई में रक्त के विविध अवयवों का भी आपके अवलोकनार्थ वर्णन किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्यययन के बाद आप

- रक्त संचरण अथवा परिवहन तंत्र के विषय में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रक्त के विविध अवयवों का अध्ययन करेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थो को विस्तारपूर्वक समझ सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थो के उपभागों के मुख्य कार्यो के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- रक्त के प्रमुख कार्यो का भली–भॉति वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयवों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हृदय की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन करेंगे।
- धमनियों की संरचना एवं कार्यो की विवेचना कर सकेंगे।
- शिराओं की संरचना एवं कार्यो को जान सकेंगे।
- कोशिकाओं तथा लसिकाओं की संरचना एवं कार्यो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- महाधमनी तथा महाशिरा की कार्य प्रणाली का विस्तृनत रूप से वर्णन कर सकेंगे।

4.3 रक्त परिसंचरण तंत्र अथवा परिवहन–तन्त्र का परिचय

शरीर के भीतर जो एक लाल रंग का द्रव–पदार्थ भरा हुआ है, उसी को रक्त (Blood) कहते हैं। रक्त का एक नाम रुधिर भी है रुधिर को जीवन का रस भी कहा जा सकता है। यह संपूर्ण शरीर में निरन्तर भ्रमण करता तथा अंग–प्रत्यंग को पुष्टि प्रदान करता रहता है। जब तक शरीर में इसका संचरण रहता है तभी तक प्राणी जीवित रहता है। इसका संचरण बन्द होते ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। अब प्रश्न उठता है कि रुधिर की उत्पत्ति कैसे होती है। पाठको रुधिर की उत्पत्ति भ्रूण की मीसोडर्म से होती है। रुधिर मूल रूप से एक तरल संयोजी ऊतक (Fluid Connective Tissue) होता है।

सामान्यतः मनुष्य शरीर में रक्त की मात्रा 5–6 लीटर होती है। एक अन्य मत के अनुसार मनुष्य के शारीरिक भार का 20वाँ भाग रक्त होता है। रक्त पूरे शरीर में दौड़ता रहता है। परिसंचरण तंत्र में मुख्य रूप से हृदय, फेफड़े, धमनी व शिरा महत्वापूर्ण भूमिका निभाती है। हमारा हृदय एक पम्पिंग मशीन की तरह कार्य करता है जो अनवरत अशुद्ध रक्तम को फेफड़ों में शुद्ध करने तथा फिर शुद्ध रक्त को पूरे शरीर में भेजता रहता है।

प्रिय विद्यार्थियों रक्त परिसंचरण की यह प्रक्रिया जीवन भर चलते रहती है। आपके समक्ष अब कुछ प्रश्नि अवश्य होंगे–

- रक्त क्या है
- रक्त के मुख्य अवयव क्या है
- रक्त कणिकाऐं कितनी होती है

- रक्त की शरीर में क्या जरूरत है और इसके कार्य क्या है
- रक्त परिवहन तन्त्र में ह्रदय की क्या भूमिका है
- धमनी व शिरा की क्या उपयोगिता है
- महाधमनी व महाशिरा की क्या कार्यप्रणाली है

प्रस्तुत इकाई को पढने के उपरान्त उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जावोंगे।

4.4 रक्त के अवयव

रक्त (रूधिर) एक तरल संयोजी ऊतक (Fluid Connective Tissue) होता है। इसका Ph –7.3 से 7.5 के बीच होता है। रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.065 होता है। मनुष्य शरीर के भीतर इसका तापमान 100 डिग्री फा.हा. रहता है, परन्तु रोग की हालत में इसका तापमान कम अथवा अधिक भी हो सकता है। इसका स्वाद कुछ 'नमकीन' सा होता है। इसका कुछ अंश तरल तथा कुछ गाढ़ा होता है। रक्त में निम्नलिखित पदार्थों का मिश्रण पाया जाता है।

- प्लाज्मा (Plasma)
- रक्त कणिकायें (Blood Corpuscles)

इनके विषय में विस्तारपूर्वक विवरण निम्नानुसार है–

4.4.1 प्लाज्मा (Plasma) यह रक्त का तरल अंश है। इसे रक्त –वारि' भी कहते हैं। यह हल्के पीले रंग की क्षारीय वस्तु है। इसका आपेक्षिक घनत्व 1.026 से 1.029 तक होता है। 100 सी.सी. प्लाज्मा में निम्नलिखित वस्तुएँ अपने नाम के आगे लिखे प्रतिशत में पायी जाती हैं–

(1) पानीः	90%
(2) प्रोटीनः	7%
(3) फाइब्रीनोजिनः	4%
(4) एल्फा ग्लोब्युलिनः	0.46%
(5) बीटा ग्लोब्युलिनः	0.86%
(6) गामा ग्लोब्युलिनः	0.75%
(7) एलब्युमिनः	4.00%
(8) रसः	1.4%
(9) लवणः	0.6%

'प्लाज्मा' रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर–उधर ले जाने का कार्य करता है तथा उन्हें नष्ट होने से बचाता है। यह रक्त को हानिकर प्रतिक्रियाओं से बचाता है, विशेष कर इसके 'एल्फा ग्लोब्युलिन' सहायक वस्तुओं को उत्पन्न करके रक्त को बाह्य–जीवाणुओं से बचाते हैं। किसी संक्रामक रोग के उत्पन्न होने पर रक्त में इनकी संख्या स्वतः ही बढ़ जाती है। इसका 'फाइब्रोनोजिन' रक्तस्राव के समय रक्त को जमाने का कार्य करता है, जिसके कारण उसका बहना रूक जाता है। प्रदाह तथा रक्तस्राव के समय यह एक स्थान पर एकत्र हो

जाता है। प्लाज्मा' के कार्बनिक पदार्थ जो इसके घटक (Constituents) भी होते है जो इस प्रकार है।

(1) प्लाज्मा प्रोटीन (Plasma Proteins) प्लाज्मा प्रोटीन की मात्रा लगभग 300 से 350 ग्राम होती है। जिसमें निम्न प्रोटीन प्रमुख है।

- एल्बूमिन (Albumin)
- ग्लोब्यूरमिन (Globulins)
- प्रोथ्राम्बिन (Prothrombin)
- पाइब्रिनोजन (Fibrinogen)

(2) उत्सर्जी पदार्थ – मानव शरीर कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। कोशाओं से निकाली गई अमोनिया तथा यकृत कोशाओं से मुक्त किये यूरिया, यूरिक अम्ल,क्रिटीन,क्रिटिनीन आदि होते है जिसे रक्त से किडनी ग्रहण करती है तथा इनका निष्काषन होता है।

(3) पचे हुए पोषक पदाथ– इसमें ग्लूकोज,बसा, बसीय अम्ल, ग्लिसरॉल,अमीनों अम्ल,विटामिन,कोलेस्टाइल आदि होते है जिसे शरीर की सारी कोशायें आवश्यकतानुसार रक्त से लेती रहती रहती है।

(4) हारमोंन्स– ये अन्त:सावी ग्रन्थियों से सीधे रक्त में सीधे साव्रित होतें है। शरीर की कोशिकाये इन्हे रक्त से ग्रहण करती है।

(5) गैसे– प्लाज्मा में जल लगभग 0.25ml आक्सीाजन o-5ml नाइटोजन o-5 तथा कार्बन आदि गैसे घुली रहती है।

(6) सुरक्षात्मक पदार्थ– प्लाज्मो में कुछ सुरक्षात्मक पदार्थ (प्रतिरक्षी पदार्थ) होते है। जैसे लाइसोजाइम, प्रोपरडिन, जो जीवाणुओं तथा विषाणुओं को नष्ट करने में सहायक है।

(7) प्रतिजामन– प्लाज्मा में हिपेरिन नामक संयुक्त पालीसैकराइड मुक्त करती है जिस कारण रक्त को जमने से रोका जा सकता है।

4.4.2 रक्त –कणिकाएँ – ये तीन प्रकार की होती हैं–

(1) लाल रक्त कण(Red Blood Corpuscles)

(2) श्वेत रक्त कण (White Blood Corpuscles)

(3) प्लेटलेट्स (Platelets)

(4) स्पिन्डटल कोशिकाये (Spindle Cell)

इनके विषय में अधिक जानकारी निम्न प्रकार है–

(1) लाल रक्त कण– लाल रक्त कणो को (Erythrocytes) कहा जाता है। रूधिर में 99% RBCs होते है। ये आकार में गोल, मध्य में मोटे तथा चारों किनारों पर पतले होते हैं। इनका व्यास 1/3000 इंच होता है। इनका व्यास–आवरण रंगहीन होता है, परन्तु इनकी भीतर एक प्रकार का तरल द्रव भरा होता है, जिसे 'हीमोग्लोबिन' (Haemoglobin) कहते हैं। हीम (Heam) अर्थात् लोहा तथा 'ग्लोबिन' (Globin) अर्थात् एक प्रकार की प्रोटीन। इन दोनों से मिलकर 'हीमोग्लोबिन' शब्द बना है। ये रक्तकण, जिन्हें रक्त –कोषा (Blood Cell) कहना अधिक उपयुक्त रहेगा, लचीले होते हैं तथा आवश्यकतानुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित करते रहते हैं।

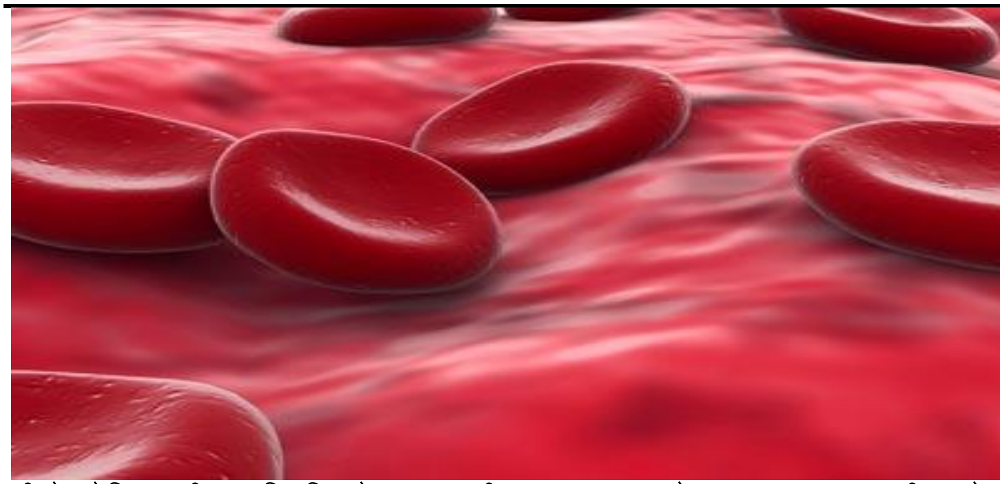

'हीमोग्लोबिन' की उपस्थिति के कारण ही इन रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है। हीमोग्लोबिन की सहायता से ये रक्त –फेफड़ों से ऑक्सीजन (Oxygen) अर्थात् प्राण वायु प्राप्तं करके उसे शुद्ध रक्त के रूप में सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते रहते हैं, जिसके कारण शरीर को कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। ऑक्सीजन युक्त हीमोग्लोबिन को (oxi Haemoglobin) ऑक्सी हीमोग्लोबीन कहा जाता है। हीमोग्लोबीन के हीम अणुओ के लौह (Iron) में आक्सीजन के साथ एक ढीला और सुगमतापूर्वक खुला हो जाने वाला अर्थात प्रतिवर्ती वॅान्डस (Reversible Bond) बना लेने की एक विशेष क्षमता होती है। अत फेफड़ों में आक्सीजन ग्रहण कर RBCs रूधिराणु इसका सारे शरीर में संवहन करते है और ऊतक द्रव्य के माध्यण्म से कोशाओं तक पहुॅचाते है इसलिए RBCs को आक्सीजन का वाहक कहा जाता है। हीमोग्लोबीन के प्रत्येक अणु में ग्लोबीन की चार कुण्डलित पालीपेप्टाइड श्रखलायें तथा हीम के चार अणु होते है।

4 Molecules of Globin + 4 Molecules of Heam ——→ Haemglobin (Hbu)

(2) श्वेत रक्त कण– श्वेत रक्त अणुओं (Leucocytes) भी कहते है।ये रक्त कण प्रोटोप्लाज्म द्वारा वाहक निर्मित हैं। इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। आवश्यकतानुसार इनके आकार में परिवर्तन भी होता रहता है। इनका कोई रंग नहीं होता अर्थात् ये सफेद रंग के होते हैं। लाल रक्त –कणों की तुलना में, शरीर में इनकी संख्या कम होती है। इनका अनुपात प्रायः 1:500 का होता है। एक स्वस्थ मनुष्य के रक्त की 1 बूँद में इनकी संख्या 5000 से 8000 तक पाई जाती है। इनका निर्माण अस्थि मज्जा (Bone Marrow), लसिका ग्रंथियाँ (Lymph Glands) तथा प्लीहा (Spleen) आदि अंगों में होता है। रक्त के प्रत्येक सहस्रांश मीटर में जहाँ रक्त कणों की संख्या 500000 होती है वहाँ श्वेत कणों की संख्या 6000 ही मिलती है। इनकी लम्बाई लगभग 1/2000 इंच होती है तथा सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता के बिना इन्हें भी नहीं देखा जा सकता। इनका आकार थोड़ी–थोड़ी देर में बदलता रहता है। साथ ही दिन में कई बार इनकी संख्या में घट–बढ़ भी होती रहती है। प्रातः काल सोकर उठने से पूर्व इनकी संख्या 6000 घन मि.मी. होती है।

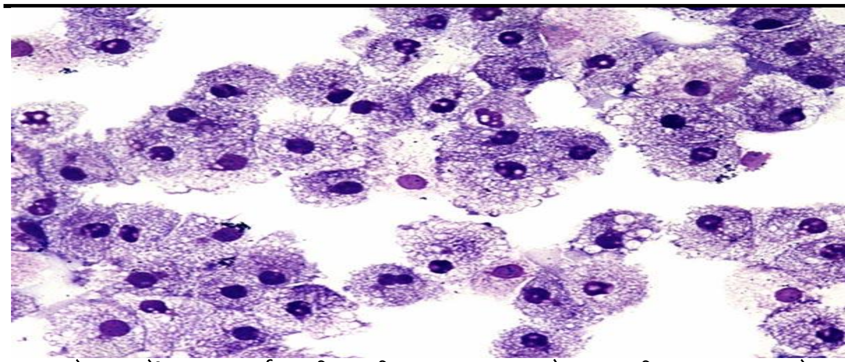

इन श्वेतकणों का कार्य शरीर की रक्षा करना है। बाहरी वातावरण से शरीर में प्रविष्ट होने वाले विकारों तथा विकारी–जीवाणुओं के आक्रमण के विरूद्ध ये रक्षात्मक ढंग से युद्ध करते हैं और उनके चारों ओर घेरा डालकर, उन्हें नष्ट कर डालते हैं। इसी कारण इन्हें शरीर–रक्षक (Body Guard) भी कहा जाता है। यदि दुर्भाग्यवश कभी इनकी पराजय हो जाती है तो शारीरिक–स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और शरीर बीमारी का शिकार बन जाता है। परन्तु उस स्थिति में भी ये शरीर के भीतर प्रविष्ट होने वाली बीमारी के जीवाणुओं से युद्ध करते ही रहते हैं तथा अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर देते हैं तथा पुनः स्वास्थ्य–लाभ कराते हैं। यदि रक्त में इन श्वेतकणों का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो शरीर की मृत्यु हो जाती है।

काम करते समय, भोजन के पश्चात गर्भावस्था में एवं एड्रीनलीन (Adrenaline) के इंजेक्शन के बाद शरीर में इन श्वेताणुओं की संख्या बढ़ जाती है। संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय इनकी संख्या में अत्यधिक वृद्धि होती रहती है। न्यूमोनिया होने पर इनकी संख्या ड्योढ़ी वृद्धि तक होती हुई पाई गयी है। परन्तु इन्फ्लुऐंजा में इनकी संख्या कम हो जाती है। रक्त में श्वेतकणों की संख्या में वृद्धि को श्वेतकण बहुलता (Leucocytosis) तथा ह्रास को श्वेतकण अल्पता (Leucopening) कहा जाता है।

संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय ये श्वेतकण विषैले जीवाणुओं से लड़ने के लिए कोशिकाओं की दीवार से भी पार निकलकर बाहर चले जाते हैं, जबकि उस समय लाल रक्तकण नलिकाओं तथा कोशिकाओं में ही बने रहते हैं। इन श्वेतकणों के निम्नलिखित भेद माने जाते हैं–

1. कणिकामय श्वेतरूधिराणु या ग्रैन्यूजलोसाइटस (Granulocytes)
2. कणिकाविहीन श्वेतरूधिराणु या अग्रैन्यूलोसाइटस (Aranulocyte)

1. कणिकामय श्वेतरूधिराणु (Granulocytes)– ये लगभग 10 से 15 तक व्यास के गोल से सक्रिय रूप से अमीबॉएड अर्थात विचरणशील होते है। इनके कोशाद्रव्य में अनेंकों कणिकायें होती है। ये तीन प्रकार के होते है।

(अ) ऐसिडोफिल्सक या इओसिनोफिल्सय (Acidophils or Eosinophil)–ये W-B-C- में 1 से 4 % तक होते है तथा ये शरीर में प्रतिरक्षण, ऐलर्जी एवं अतिसंवेदनशीलता का कार्य करते है।

(ब) बेसोफिल्सं (Basophils)–ये W-B-C- की कुल संख्या का 0.5 से 2 तक होते है। इनकी कणिकायें मास्ट कोशिकाओं द्वारा स्रावित हिपैरिन, हिस्टेसिन एवं सिरोटोनिन का वहन करती है।

(स) हिटरोफिल्स या न्यूैटरोफिल्स (Heterophils or Neutrophils)– W-B-C में इनकी संख्या सबसे अधिक 60 %से 70% तक होती है।

2– कणिकाविहीन श्वेतरूधिराणु कोशाद्रब्य. में कणिकायें हल्की नीली रंग की संख्या में कम होती है। इन्हे Amononuclear रूधिराणु भी कहते है। ये दो प्रकार की होती है।

(अ) लिम्फोसाइटस (Lymphocytes) ये छोटे 6 से 16 व्यास के होते है। ये W-B-C की संख्या का 20% से 40% होते है। इनका केन्द्रक बडा या पिचका होता है। इनमें भ्रमण की क्षमता कम होती है। इनका कार्य शरीर की प्रतिरक्षी प्रतिक्रियाओं के लिए आवश्यक प्रतिरक्षी प्रोटीन्स बनाना होता है। इसकी खोज नोबल पुरस्कार प्राप्त एमिल बॉन बेहरिग ने 1891 में की थी।

(आ) मोनोसाइटस (Monocytes) ये संख्या में कम W-B-C की कुल संख्या का 5% होते है। इनका व्यास 12 से 22 तक होता है। ये सक्रिय भ्रमण एवं भक्षण करते है।

(3) प्लेटलेट्स :– प्लेटलेट्स को (Thrombcytes) थ्रोम्बोसाइट या बिम्बाणु भी कहा जाता है । इनकी उत्पत्ति अस्थि–रक्त मज्जा (Red Bone Marrow) में लोहित कोशिकाओं (MEGAKARYOCYTES) द्वारा होती है। इनका लगभग 2.5 (म्यू) होता है। इनकी संख्या लगभग 250,000 (150,000 से 350000) तक होती है। इनकी लगभग 1/10 संख्या प्रतिदिन बदलती रहती है और रक्त में नवीन आती रहती है इनके प्रमुख कार्य है।

(1) रक्त कोशिकाओं के endothelium की क्षति की क्षतिपूर्ति।

(2) अवखण्डित होने पर हिस्टीमीन की उत्पत्ति करना।

(3) रक्त वाहिकाओं के अन्त स्तर में अथवा ऊतकों में क्षति हो जाने पर, यदि रक्तस्राव की सम्भावना हो या स्राव हो रहा हो तो प्लेटलेट्स रक्त स्कन्दन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

(4) स्पिन्डल कोशिकाये (Spindle Cell) ये स्तनियो के अतिरिक्त अन्य सभी कशेरूकियों में प्लेटलेटस के स्थान पर पायी जाती है। मानव शरीर में ये नही पायी जाती है पर इनका वही कार्य है जो कार्य प्लेटलेटस का होता है।

4.5 रक्त के कार्य

रक्त के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

- आहार– नलिका से भोजन तत्वों को शोषित कर, उन्हें शरीर के सब अंगों में पहुँचाना इस प्रकार उनकी भोजन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करना।
- फेफड़ों की वायु से ऑक्सीजन लेकर, उसे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाना और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।
- शरीर के प्रत्येक भाग से कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया, यूरिक एसिड तथा गन्दा पानी आदि दूषित पदार्थों को अपने साथ लेकर उन अंगों तक पहुँचाना, जो इन दूषित पदार्थों को निकालने का कार्य करते हैं।

- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।
- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों (Horomones) को अपने साथ लेकर शरीर से विभिन्न भागों में पहुँचाना।
- संपूर्ण शरीर के तापमान को सम बनाये रखना।
- बाह्य जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने हेतु श्वेत कणिकाओं को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते रहना।
- रक्त टूटी – फूटी तथा मृत कोशिकाओं को यकृत और प्लीहा में पहुँचाता है, जहॉ वे नष्ट हो जाती है।
- रक्त अपने आयतन में परिवर्तन लाकर ब्लैडप्रेशर पर नियन्त्रण रखता है।
- रक्त जल – संवहन के द्वारा शरीर के ऊतकों को सूखने से बचाता है और उन्हे नम एवं मुलायम रखता है।
- रक्त शरीर के अंगों की कोशिकाओं की मरम्मत करता है तथा कोशिकाओं के नष्ट हो जाने पर उसका नव–निर्माण भी करता है।
- रक्त शरीर के विभिन्न भागों से व्यर्थ पदार्थो को उत्सर्जन – अंगों तक ले जाकर उनका निष्कासन करवाता है।

4.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव

शरीर में रक्त संचरण के प्रमुख सहायक अंग निम्नलिखित हैं–

- हृदय (Heart)
- धमनिया (Arteties)
- शिराऐं (Veins)
- कोशिकाऐं तथा लसिकाऐं (Capillaries] Lymphatics)
- फेफड़े (Lungs)
- महाधमनी तथा महाशिरा

इन सबके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नानुसार है–

4.6.1 हृदय – रक्त संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपाती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। हाथ की मुट्ठी बाँधने पर जितनी बड़ी होती है, इसका आकार उतना ही बड़ा होता है। इसका निर्माण धारीदार (Striped) एवं अनैच्छिक मांसपेशी ऊतकों (Involuntary Muscles) द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा बायें हटकर दोनों फेफड़ों के बीच इसकी स्थिति है। यह पांचवी, छठी, सातवी, तथा आठवीं पृष्ठ देशीय–कशेरूका के पीछे रहता है। इसका शिरोभाग बायें क्षेपक कोष्ठ से बनता है। निम्न भाग की अपेक्षा इसका ऊपरी भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। इस पर एक झिल्लीमय आवरण चढ़ा रहता है। जिसे 'हृदयावरण' (Pericaerdium) कहते हैं। इस झिल्ली से एक प्रकार का रस निकलता है, जिसके कारण हृत्पिण्ड का उपरी भाग आर्द्र (तरल) बना रहता है।

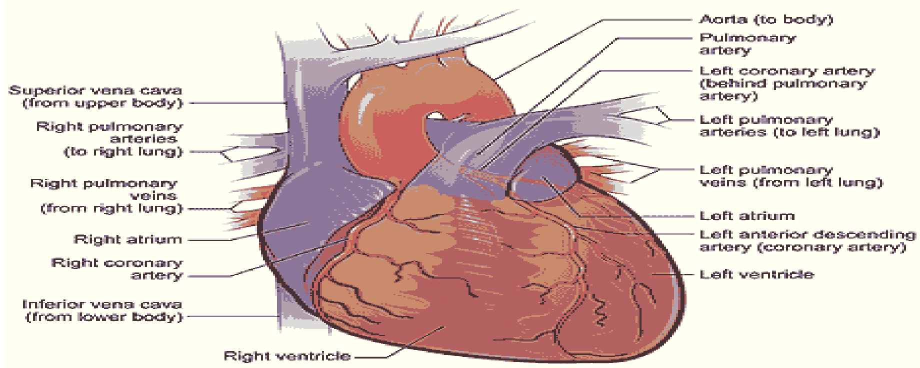

हृत्पिण्ड का भीतरी भाग खोखला रहता है। यह भाग एक सूक्ष्म मांसपेशी की झिल्ली से ढ़का तथा चार भागों में विभक्त रहता है। इस भाग में क्रमशः ऊपर–नीचे तथा दायें–बायें 4 प्रकोष्ठ (Chamber) रहते हैं। ऊपर के दायें–बायें हृदकोषों को 'उर्ध्व हृदकोष्ठ' अथवा 'ग्राहक–कोष्ठ' (Auricle) कहा जाता है तथा नीचे के दायें–बायें दोनों हृदकोष्ठों को 'क्षेपक कोष्ठ' (Ventricle) कहते हैं। इस प्रकार हृत्पिण्ड दोनों ओर दायें तथा बायें ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठों को अलग करने वाली पेशी से बना हुआ है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में रक्त आने के लिए हर ओर एक–एक छेद रहता है तथा इन छेदों में एक–एक कपाट (Valve) रहता है। ये कपाट एक ही ओर इस प्रकार से खुलते हैं कि ग्राहक कोष्ठ से रक्त क्षेपक कोष्ठ में ही आ सकता है, परन्तु उसमें लौटकर जा नहीं सकता, क्योंकि उस समय यह कपाट अपने आप बन्द हो जाता है। दायीं ओर के द्वार में तीन कपाट है। अतः इसे 'त्रिकपाट' कहते हैं। बायीं ओर के द्वार में केवल दो ही कपाट हैं, अतः इसे 'द्विकपाट' कहा जाता है

इसके ग्राहक कोष्ठों का काम 'रक्त को ग्रहण करना' तथा क्षेपक कोष्ठों का काम 'रक्त को निकालना' है। दायीं ओर हमेशा अशुद्ध रक्त तथा बायीं ओर शुद्ध रक्त भरा रहता है। इन दोनों कोष्ठों का आपस में कोई संबंध नहीं होता।

हृदय को शरीर का 'पम्पिंग स्टेशन' कहा जा सकता है। हृदय की मांसपेशियों द्वारा ही रक्त संचार की शुरूआत होती है। हृदय के संकोच के कारण ही उसके भीतर भरा हुआ रक्त महाधमनी तथा अन्य धमनियों में होकर शरीर के अंग–प्रत्यंग तथा उनकी कोषाओं (Cell) में पहुँचकर, उन्हें पुष्टि प्रदान करता है तथा उनके भीतर स्थित विकारों को अपने साथ लाकर, उत्सर्जन अंगों को सौंप देता है, ताकि वे शरीर से बाहर निकल जायें।शरीर में रक्त –संचरण धमनी, शिराओं तथा कोशिकाओं द्वारा होता रहता है। ये सभी शुद्ध रक्त को हृदय से ले जाकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती हैं तथा वहाँ से विकार मिश्रित अशुद्ध रक्त को लाकर हृदय को देती रहती हैं। शुद्ध रक्त का रंग चमकदार लाल होता है तथा अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का होता है। हृदय से निकलकर शुद्ध रक्त जिन नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाता है उन्हें क्रमशः धमनी (Artery) तथा केशिकाऐं (Capillaries) कहते हैं तथा अशुद्ध रक्त लौटता हुआ जिन नलिकाओं में होकर हृदय में पहुँचता है, उन्हें 'शिरा' (Veins) कहते हैं।

शिराओं द्वारा लाए गए अशुद्ध रक्त को हृदय शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। वहाँ पर अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का अपने विकारों की फेफड़ों से बाहर जाने वाली हवा

(निःश्वास) के साथ मिलकर, मुँह अथवा नाक के मार्ग से बाह्य–वातावरण में भेज देता है तथा श्वास के साथ भीतर आई हुई शुद्ध वायु से मिलकर पुनः हृदय में लौट आता है और वहाँ से फिर सम्पूर्ण शरीर में चक्कर लगाने के लिए भेज दिया जाता है। इस क्रम की निरंतर पुनरावृत्ति होती रहती है इसी को ' रक्त परिभ्रमण क्रिया' (Blood Circulation) कहा जाता है।

4.6.2 धमनियाँ (Arteries)– इनमें शुद्ध रक्त बहता है। ये रक्त नलिकाऐं लम्बी मांसपेशियों द्वारा निर्मित होती हैं। ये हृदय से आरम्भ होकर कोशिकाओं में समाप्त होती हैं। इनका संचालन अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा होता है। ये आवश्यकतानुसार फैलती तथा सिकुड़ती रहती हैं। इनके संकुचन से रक्त–परिभ्रमण में सरलता आती है। 'पल्मोनरी धमनी' तथा ' रक्त धमनी' के अतिरिक्त शेष सभी धमनियाँ 'शुद्ध रक्त का वहन करती हैं। इनकी दीवारें मोटी तथा लचीली होती हैं। छोटी धमनियों को 'धमनिका' कहते हैं।

4.6.3 शिराऐं (Veins)– इनमें अशुद्ध रक्त बहता है। ये नलिकाऐं पतली होती हैं। इनकी दीवारें पतली तथा कमजोर होती हैं, जो झिल्ली की बनी होती हैं। इनकी दीवारों में स्थान–स्थान पर प्यालियों जैसे चन्द्र कपाट बने रहते हैं। इनकी सहायता से रक्त उछलकर नीचे से ऊपर की ओर जाता है। इन पर मांस का आवरण नहीं रहता। अतः ये कट भी जाती हैं। जब ये ऊतकों में पहुँचती हैं, तब बहुत महीन हो जाती हैं तथा इनकी दीवारें भी पतली पड़ जाती हैं। 'फुफ्फुसी शिरा' एवं 'वृक्क शिरा' के अतिरिक्त अन्य सभी धमनियों में अशुद्ध रक्त बहता है। ये सब अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचाने का कार्य करती हैं।

4.6.4 केशिकाऐं तथा लसिकाऐं (Capillaries)– अत्यन्त महीन शिराओं को, जो एक कोशिका वाली दीवार में भी प्रविष्ट हो जाये, कोशिका कहा जाता है। इन्हें धमनियों की क्षुद्र शाखाऐं भी कहा जा सकता है। ये शरीर के प्रत्येक कोष में शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं तथा वहाँ से अशुद्ध रक्त को एकत्र कर शिराओं के द्वारा हृदय में पहुँचा देती हैं।

जब रक्त कोशिकाओं में बहता है, तो उनकी पतली दीवारों से उसका कुछ लाल भाग होता है। इस तरल पदार्थ को ही 'लसिका' कहते हैं। इसमें शक्कर, प्रोटीन, लवण आदि पदार्थ पाये जाते हैं। शरीर की कोशाए 'लसिका' में भीगी रहती हैं तथा इन्हीं लसिकाओं द्वारा कोशिकाओं का पोषण भी होता है।

4.6.5 फेफड़े– फेफड़े परिसंचरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। फुफ्फुसो में रक्त शुद्ध होता है

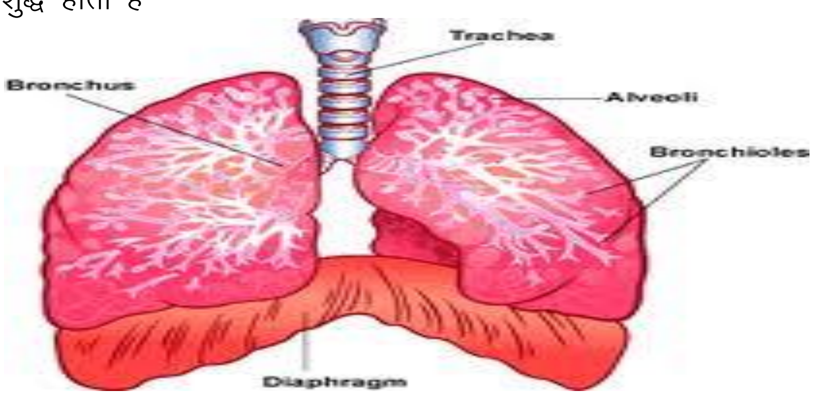

फुफ्फुसो को रक्त पहुॅचाने का कार्य फुफ्फुसीय परिसंचरण के द्वारा सम्पन्न होता है। वाहिकाए अशुद्ध रक्त को हृदय से फुफ्फुसो तक ले जाती है वहॉ रक्त शुद्ध होकर उसे पुन: हृदय में ले जाती है यहॉ से आक्सीजन युक्त रक्त शेष शरीर में वितरित होता है। फुफ्फुसीय परिसंचरण में 4 से 8 सेकण्ड का समय लगता है। हृदय के दाये निलय से फुफ्फुसीय धमनी के द्वारा फुफ्फुसीय रक्त परिसंचरण का आरम्भ होता है।

4.6.6 महाधमनी (Aorta) तथा महाशिरा (Venacava) की कार्य प्रणाली – यह सबसे बड़ी धमनी है। इसके द्वारा शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में फैलता है। इसकी कार्य प्रणाली निम्नानुसार है–

यकृत के भीतर से जाकर हृत्पिण्ड के दायें 'ग्राहक कोष्ठ' में खुलने वाली 'अधोगा महाशिरा' (Inferior Venacava) में शरीर के संपूर्ण निम्न भाग के अंगों का रक्त एकत्र होकर ऊपर को जाता है। शरीर के सभी भागों से अशुद्ध रक्त 'उर्ध्व महाशिरा' (Superior Venacava) में आता है। यह महाशिरा उस रक्त को हृदय के दायें ग्राहक कोष्ठ को दे देती है। रक्त से भरते ही वह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तथा एक दबाव के साथ उसे दायें क्षेपक कोष्ठ में फेंक देता है। दायां त्रिकपाट (Tricuspid Valve) इसके बाद ही बन्द हो जाता है और वह रक्त को पीछे नहीं जाने देता अर्थात् दायें क्षेपक कोष्ठ से दायें ग्राहक कोष्ठ में नहीं पहुँच सकता। फिर, ज्यों ही दायां क्षेपक कोष्ठ भरता है, त्यों ही वह रक्त को वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। फेफड़ों में शुद्ध हो जाने पर, शुद्ध रक्त दायें तथा बायें फेफड़े द्वारा वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा दायें ग्राहक कोष्ठ में भेज दिया जाता है। इसके पश्चात् यह रक्त दायें ग्राहक कोष्ठ से दबाव के साथ बायें क्षेपक कोष्ठ में आता है, जिसे यहाँ स्थित एक द्वि–कपाट (Biscuspid valve) उसको पीछे नहीं लौटने देता। फिर, जब वह दायां क्षेपक कोष्ठ भरकर सिकुड़ने लगता है, तब शुद्ध रक्त महाधमनी में चला जाता है और वहाँ से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है।

'महाधमनी' से अनेक छोटी–छोटी धमनियाँ तथा महाशिरा से अनेक छोटी–छोटी शिराऐं निकली होती हैं, जो निरंतर क्रमशः रक्त को ले जाने तथा लाने का कार्य करती हैं।

रक्त का संचरण दो घेरों में होता है– (1) छोटा घेरा तथा (2) बड़ा घेरा। छोटा घेरा, हृदय, पल्मोनरी धमनी, फेफडों तथा पल्मोनरी के सिरे से मिलकर बनता है तथा बड़ा घेरा महाधमनी एवं शरीर भर की कोशिकाओं तथा ऊतकों से मिलकर तैयार हुआ है। ग्राहक कोष्ठों (Atrium) को 'अलिन्द' तथा क्षेपक कोष्ठों (Ventricle) को 'निलय' कहा जाता है

जब अशुद्ध रक्त उर्ध्व तथा अधःमहाशिरा द्वारा हृदय के दक्षिण अलिन्द में प्रविष्ट होता है तब वह धीरे–धीरे फैलना आरम्भ कर देता है तथा पूर्ण रूप से भर जाने पर सिकुड़ना शुरू करता है फलस्वरूप अलिन्द के भीतर के दबाव में वृद्धि होकर, महाशिरा का मुख बन्द हो जाता है तथा 'त्रिकपाट' खुलकर, रक्त दक्षिण निलय में प्रविष्ट हो जाता है। दक्षिण निलय भी भर जाने पर जब सिकुड़ना आरम्भ करता है तब द्विकपाट बन्द हो जाता है तथा पल्मोनरी धमनी कपाट (Pulmonary Valve) खुल जाता है। उस समय शुद्ध रक्त के दक्षिण निलय से निकल कर पल्मोनरी धमनी (Pulmonary Artery) द्वारा वाम अलिन्द में गिरता है। इस क्रिया को 'छोटे घेरे में रक्त संचरण' (Circulation of Blood through Pulmonary circuit) नाम दिया गया है।

पल्मोनरी धमनी द्वारा वाम अलिन्द में रक्त के भर जाने पर वह सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है और उसके भीतर दबाव बढ़ जाता है, फलस्वरूप द्विकपर्दी कपाट खुलकर रक्त वाम निलय में पहुँच जाता है। वाम निलय के भर जाने पर वह भी सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है, तब द्विकपर्दी कपाट बन्द हो जाता है तथा महाधमनी कपाट खुल जाता है, फलतः वह शुद्ध रक्त महाधमनी में पहुँच कर सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करने के लिए विभिन्न धमनियों तथा कोशिकाओं में जा पहुँचता है। इस प्रकार रक्त संपूर्ण शरीर में घूम कर शिराओं से होता हुआ अन्त में उर्ध्व महाशिरा तथा अधःमहाशिरा से होकर दक्षिण अलिन्द में पहुँच जाता है। रक्त भ्रमण की इस क्रिया को 'बड़े घेरे का रक्त –संचरण' (Circulation of Blood through Larger Circuit) कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग................है।

(ख) ....रक्त कणिकाओं को शरीर रक्षक भी कहा जाता है।

(ग) रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर–उधर ले जाने का कार्य...........द्वारा सम्पन्न होता है।

(घ) ....की उपस्थिति के कारण ही रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है।

(ड.) रक्त.स्राव होने पर रक्त को जमाने का कार्य............प्रोटीन करता है।

(च) सबसे बड़ी धमनी............तथा सबसे बड़ी शिरा.............है।

2. सत्य /असत्य बताइये

(क) पल्मोनरी धमनी तथा रक्त धमनी के अतिरिक्त. शेष सभी धमनियॉ 'शुद्ध रक्त ' का वहन करती है।

(ख) शिराओं की दीवारें मोटी एवं लचीली होती हैं।

(ग) रक्त में श्वेतकणों की संख्यां में वृद्धि को ल्यू.कोपीनींग तथा ह्रास को ल्याकोसाइटोसिस कहते हैं।

(घ) रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.055 होता है।

(ड.) प्लाज्मा में प्रोटीन 7% होता है।

(च.) हिपैरिन हीमोग्लोमबिन में पाया जाता है।

(छ.) प्लेटलेट्स को बिम्बाणु भी कहा जाता है।

(ज.) स्पिन्डोल सेल्स मनुष्य के शरीर में पायी जाती है।

4.7 सारांश

प्रस्तुंत इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ चुके होंगे। कि रक्त विश्लेषण में मिश्रित प्लाज्मा और रक्त कणिकायें शरीर को स्वरस्थ रखने में तथा शरीर की संक्रामक रोगों से रक्षा करने में अहम भूमिका निभाते है। लाल रक्त कण हीमोग्लोबिन की सहायता से फेफड़ों से ऑक्सीजन प्राप्त कर शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते हैं। श्वेत रक्तकण संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय विषैले जीवाणुओं से लड़ने में सहायता करते हैं। प्लेटलेट्स शरीर में किसी भी स्थान पर कटने या चोट लगने की स्थिति में उस जगह एकत्रित हो कर अतिरिक्त रक्त बहने से रोकने में सहायता करते हैं। हृदय रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग है। हृदय के संकुचन से उसके भीतर का रक्त महाधमनी तथा अन्य

धमनियों से होता हुआ शरीर के विभिन्न अंगों में वितरित होता है तथा अंग विशेष की कोशिकाओं को पुष्टि प्रदान करता है। इसके साथ ही विकारों को कोशिकाओं से लाकर उत्सर्जन तंत्र को सौंप देता है। इस प्रकार शरीर को विकार रहित रखने में हृदय हमारी सम्पूर्ण सहायता करता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रक्त परिसंचरण के विषय में सहज रूप से समझ गये होंगे।

4.8 शब्दावली

प्रोटोप्लाज्म – कोशिका का तरल भाग जिसमें कोशिनांग तैरते हैं । यही कोशिका जीवद्रव्य कहलाता है।

अनैच्छिक ऊतक – अपनी इच्छाश से जिन ऊतकों का नियन्त्रण नहीं होता, व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा इन ऊतकों को नियन्त्रित किया जाता है।

धमनी – शुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस

शिरा – अशुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस

हीम – लौह युक्त पदार्थ

ग्लोबीन – एक प्रोटीन

रक्तस्राव – रक्त का निकलना

बहुलता – अधिकता, ज्यादा

दूषित – खराब, गन्दा्, दोष युक्त

ब्लड प्रेशर – रक्तचाप, रक्त का दबाब

कपाट – दरवाजे, किवाड़

पल्मोनरी धमनी – एक ऐसी धमनी जिसमें अशुद्ध रक्त बहता है।

पल्मोनरी शिरा –एक ऐसी जिसमें शुद्ध रक्त बहता है।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) हृदय
(ख) श्वेत
(ग) प्लाज्मा
(घ) हीमोग्लोबिन
(ड.) फाइब्रोनोजिन
(च) एओटा, बेनाकावा

2. सत्य /असत्य बताइये

(क) सत्य
(ख) असत्य
(ग) असत्य
(घ) सत्य
(ड. सत्य
(च.) असत्य
(छ.) सत्य

(ज.) असत्य

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता , प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डामर, रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ0 (1998) टेक्ट्नका बुक ऑफ एनाटॉमी एण्डर फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली)।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा
8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्डा फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा
9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.परिवहन तंत्र का परिचय देते हुए रक्त विश्लेषण कीजिए।
2.रक्त संचरण के प्रमुख अवयवों की व्याख्या करते हुए रक्त के कार्य बताइये।
3.हृदय की रचना व कार्यो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

इकाई 5 - हृदय की रचना व क्रिया का वर्णन

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 हृदय की संरचना
5.3.1 पेरिकार्डियम
5.3.2 मायोकार्डियम
5.3.3 एण्डोकार्डियम
5.4 हृदय के कोष्टक
5.4.1 दायॉ आलिन्द
5.4.2 दायॉ निलय
5.4.3 बायॉ आलिन्द
5.4.3 बायॉ निलय
5.5 हृदय के कपाट
5.5.1 टाइकस्पिड वाल्व
5.5.2 माइटल वाल्व
5.5.3 पल्मोनरी वाल्व
5.4.4 एऑरटिक वाल्व
5.6 हृदय की गतिशीलता एवं हृदय स्पंदन
5.7 हृदय की रक्त आपूर्ति
5.8 हृदय के कार्य
5.9 हृदय के कार्यिकी
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
5.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5 .1 प्रस्तावना

जिज्ञासु पाठकों पिछली इकाई में आपने रक्त परिसंचरण संस्थान का अध्ययन किया। आपने रक्त के विविध के साथ -साथ धमनी -शिराओ तथा हृदय की सामान्य जानकारी प्राप्त की । वस्तुतः हृदय रक्त परिसंचरण तंत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिस प्रकार पानी को छत में मोटर द्वारा चढाया जाता है ठीक उसी प्रकार हृदय से भी रक्त को पूरे शरीर में भेजा जाता है। अर्थात हृदय एक मोटर की तरह कार्य करता है। प्रस्तुत इकाई मे हृदय की वाहय तथा आन्तरिक संरचना के साथ-साथ हृदय के कार्य प्रणाली का आपके अवलोकनार्थ विवेचन किया जा रहा है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- हृदय के विषय में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगें ।
- हृदय की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन करेंगें ।
- हृदय की वाह्य तथा आन्तरिक संरचना की विवेचना कर सकेंगें।
- हृदय भित्ति विविध विभागों की संरचना एवं कार्यो को जान सकेंगें।
- हृदय के कोष्टाको की संरचना एवं कार्यो का विश्लेषण कर सकेंगें।
- हृदय के कपाटों की संरचना को समझ सकेंगें।
- हृदय की गतिशीलता एवं हृदय स्पंदन का अध्ययन कर सकेंगें।
- महाधमनी तथ महाशिरा की कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगें।

5.3 हृदय की संरचना

हृदय गुलबी रंग का शंक्वाकार अन्दर से खोखला मांसल अंग होता है। यह शरीर के वक्ष भाग के वक्ष भाग में फेफडो के बीच स्थित होता है। हृदय ये ही रूधिर वाहिनियॉ रक्त को पूरे शरीर में ले जाती है। तथा फिर इसी से वापस लेकर आती है।

सामान्यतः मनुष्य शरीर में रक्त की मात्रा 5 –6 लीटर होती है। एक अन्य मत के अनुसार मनुष्य के शारीरिक भाग का 20वॉ भाग रक्त होता है। रक्त पूरे शरीर में दौडता रहता है। परिसंचरण तत्रं में मुख्य रूप से हृदय, फेफडे, धमनी व शिरा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमारा हृदय एक पम्पिंग मशीन की तरह कार्य करता है जो अनवरत अशुद्ध रक्त को फेफडो में शुद्ध करने तथा फिर शुद्ध रक्त को पूरे शरीर में भेजता है।

प्रिय पाठकों अब हम जाने की हृदय की संरचना किस प्रकार की है अर्थात् हृदय भित्ति का निर्माण किस प्रकार से होता है ?

निम्न तीन परतों से मिलकर बनी है।

(क) पेरिकार्डियम

(ख) मायोकार्डियम

(ग) एण्डोकार्डियम

5.3.1 पेरिकार्डियम – पेरिकार्डियम दो कोषो से मिलकर बना है। बाहरी कोष तन्तुमय ऊतकों से निर्मित होता है तथा आन्तरिक रूप से सीरमी कला की दोहरी परत की निरन्तरता में पाया जाता है। बाहरी तन्तुमय को ऊपर की ओर हृदय की बडी रक्त व लिशओं के टुनिका एड्वेन्टिशिया केद साथ निरन्तरता में होता है तथा नाचे की ओर

डायाक्राम में लगा हुआ होता है। सीरमी कला की बाहरी परत जिसे'' पार्शिवक पेरिफार्शियम कहा जाता है। यह तन्तुमय कोष को आस्तरित करने का कार्य करती है। अन्तरोगी पेरिकार्डिम या एपिकार्डियम (आन्तरिक पंख) हृदय पेशी से चिपटी हुयी होती है तथा पार्शिवक पेरिकार्डियम की निरन्तरता मे होती है।

5.3.2 मायोकार्डियम – मायोकार्डियम एक विशिष्ट प्रकार की हृदयपेशी से निर्मित होती है। यह पेशी केवल हृदय में ही पायी जाती है। इसमें दो तन्तु पाये जाते है। वे अनेच्छिक वर्ग के होते है। मायोकार्डियम की मोटाई सब जगह एक जैसी नही होती है। शिखर भाग (apure)पर यह सर्वाधिक मोटी तथा आधार की ओर पतली होती है जबकि बाये निलय में अपेक्षाकृत मोटी होती है क्योंकि बॅाये निलय का कार्यभार अधिक होता है। मायोकार्डियम आलिन्दों में बहुत ही पतली होती है।

5.3.3 एण्डोकार्डियम – हृदय भित्ति की सबसे भीतरी परत एण्डाकार्डियम इसका निर्माण चपटी कला कोशिकाओं से होता है। इस परत से हृदय के चारों कक्ष एवं कपाट आच्छदित रहते है।

5.4 हृदय के कोष्टक

प्रिय विद्यार्थियों हृदय की संरचना को जानने के बाद अब आप सोच रहे होंगे की हृदय के कोष्टक अथवा कक्ष (chambers) से आशय से है ? कितने है इत्यादि विभिन्न प्रश्न आपके मन में उठ रहे होंगे। तो आइए इन्ही प्रश्नो के सामाधान के लिए चर्चा हैं हृदय के कक्षो के बारें में।

हृदय वस्तुतः दायें एवं बायें भागों मे बॅटा हुआ होता है। यह विभाजनपरक पेशी पर (septum)के द्वारा होता है। ये दायें एवं बॉये भाग दोनों एक दूसरे से पूरी तरह अलग होते है। हृदय के दायें भाग का संबंध अशुद्ध से तथा बायें भाग का संमंध शुद्ध रक्त के लेन–देन से होता है दायॉ एवं बायॉ भाग फिर से अनुप्रस्थ पर से विभक्त होता है। जिससे एक ऊपर का एवं नीचे का भाग बनता है।

इस प्रकार हृदय का समस्त आन्तरिक भाग चार कक्षो में विभाजित हो जाता है।

(क) दायॉ आलिन्दय या राइट एट्रियम–दायी ओर ऊपरी, कक्ष
(ख) दायॉ निलय या राइट वेल्टिफल –दायी ओर का निचला कक्ष
(ग) बायॉ आलिन्द – लेफ्ट एट्रियम – बॉयी ओर का ऊपरी कक्ष।
(घ) बायॉ निलय या लेफ्ट वेन्टिकल – बॉयी ओर का नीचे कक्ष।

बायीं ओर के दोनो कक्ष अर्थात बायॉ आलिन्द एवं बायीं निलय एक छिद्र द्वारा आपस मे सम्बद्ध होते है। ठीक इसी प्रकार की व्यवस्था बॉयी तरफ होती है अर्थात् दायॉ आलिन्द एवं दायॉ निचल भी यह एक छिद्र द्वारा आपस मे सम्बद्ध रहते है। इन छिद्रो पर वाल्व पाये जाते है। ये वातव इस प्रकार से लगे हुये होते है कि रक्त मात्र आलिन्द मे से निलय में तो जा सकता है किन्तु वापस लौट कर नही आ सकता। रक्त को लाने एवं ले जाने वाली रक्त नलिकायें भी अपने से संबन्धित कोष्टक (कक्ष) में ही खुलती है।

5.4.1 दायॉ आलिन्द या दायॉ एट्रियम – हृदय के इय भाग मे सम्पूर्ण शरीर का ऑक्सीजन रहित अशुद्ध रक्त आकर इकट्ठा होता है। उर्ध्वमहाशिरा शरीर के ऊपरी हिस्से से तथा निम्न महाशिरा निचले हिस्से से अशुद्ध रक्त को दॉयें आलिन्द में पहॅुचाने का कार्य करती है।

इस कक्ष की शिलिया एवं पतली होती है क्योंकि इसे रक्त को पम्प करने का काम ज्यादा नही करना होता है। इस कक्ष का मुख्य कार्य केवल खून को गृहण करने का है।

5.4.2 दायॉ निलय या दायॉ वेन्ट्रिकल – हृदय का दूसरा कक्ष है – दायॉ निलय। दाये आलिन्द मे अशुद्ध रक्त के पहुॅचने बाद यह एट्रियॉ वेन्ट्रिकल छिद्र से होते हुए दायें वेन्ट्रिकल में आता है और वहॉ से फुफ्कुसीय धमनियों के द्वारा फेफड़ो में शुद्ध होने के लिए चला जाता है।

नोट – फुफ्कुसीय धमनी के अलावा अन्य सभी धमनियो मे शुद्ध रक्त ही प्रभावित होता है। दायें निलय की शिरियॉ दॉये एट्रियम की तुलना मे अधिक मोटी होती है क्योंकि इसे रक्त को पम्प करने का कार्य अपेक्षाकृत अधिक करना पडता है।

5.4.3 बायॉ आलिन्द या बायॉ एट्रियम – बायॉ आलिन्द , हृदय की बायें भाग का ऊपर वाला कक्ष है। आकार की दृष्टि से चर दायें एट्रियम से थोड़ा से छोटा होता है। दायें एट्रियम की तुलना में इसकी भित्तियॉ भी थोड़ी मोटी होती है। इयमे चार फुफ्कुसीय शिरायें खुलकर शुद्ध रक्त को बायें एट्रियम तक ले जाने का कार्य करती है।

5.4.4 बायॉ निलय या बायॉ वेन्ट्रिकल – हृदय का चौथा कक्ष बायॉ निलय है। यह भाग का निचला तथा हृदय का सभी कक्षो में सर्वाधिक बड़ा कक्ष है। इसकी भित्तियॉ शेष सभी कक्षो की अपेक्षा मोटी होती है। इसमें महाधमनी नामक एक छिद्र होता है, जिससे महाधमनी निकलकर शरीर के विविध भागों मे रक्तापूर्ति का कार्य करती है। जैसे की बायें एट्रियम मे संकुचन होता है शुद्ध रक्त बायें वेन्ट्रिकल में आ जाता है। बायें वेन्ट्रिकल के संकुचित होते ही शुद्ध रक्त महाधमनी के छिद्र को खोल देता है और उसी मे से होकर वह प्रभावित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बायॉ निलय शरीर के सभी भागो में शुद्ध रक्त पहुचाने मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

5.5 हृदय के कपाट

प्रिय विद्यार्थियो क्या आपने कभी विचार किया है कि हृदय मे कपाट एवं वाल्व क्यों होते है ? वस्तुतः हृदय मे रक्त प्रवाह गलत दिशा मे न हो सके इस हेतु ही कपाठ या वाल्व होते है। हृदय मे मुख्य रूप से चार वाल्व होते है। –

5.5.1 टाइकस्पिड वाल्व – दायें आलिन्द तथा बायें निलय के बीच में स्थित छेद , जिसमे ढॉचा एट्रियोवोन्ट्रिकुलर छिद्र कहा जाता है, उसके वाल्व को ट्राइकस्पिड या जिकपर्दी वाल्व कहते है। इस वाल्व मे तीन त्रिकोण के आकार वाले कास्पस पाये जाते है। वाल्व के इन अस्पस का एट्रियेवेन्द्रिकुलर छेद के ऊपर पूरी तरह से नियंत्रण होता है आलिन्द मे संकुचन के कारण खून कस्पस को धक्का देता है और वेन्ट्रिकल मे पहुॅचता हैं इस प्रकिया के ठीक बाद ही कस्पस बन्द हो जाते है और ठीक इसी क्षण क्षपिलरी केशियों में संकुचन हाने के करण ये कांर्डी टेन्डिनी पर खिंचाव डालती है, परिणामस्वरूप कस्पस आलिन्द में नही अकेले जाते है और खून वापस नहीं लौट पाता है।

5.5.2 माइटल वाल्व – बायें आलिन्द तथा दॉयें वेन्ट्रिकल के मध्य के बॉयें एट्रियोवेन्ट्रिकुलर छिद्र का कपाट द्विकपर्दी कपाट या माइट्रल वाल्व या बाइकस्पिटु वाल्व कहलाता है। इसमे दो कस्पस (cusps) होने के कारण ही इसे द्विकपर्दी कपाट करा जाता है। इसकी संरचना भी ट्राइकस्पिटु वाल्व के समान ही होती है। इसका कार्य है – बायें वेन्ट्रिकल के संकुचित होने पर रक्त को बायें एट्रियम मे वापस न जाने देना ।

5.5.3 पल्मोनरी वाल्व – दायें वेन्ट्रिकल एवं फुफ्कुसीय धमनी के बीच का वाल्व पल्मोनरी वाल्व या फुफ्कुसीय कपाट कहलाता है। इसे अर्द्धचन्द्राकार वाल्व के साथ जाना जाता है क्योंकि इसमें तीन अर्द्धचन्द्राकार कस्पस होते हैं।

5.5.4 एऑटिकल वाल्व – महाधमनी कपाट बायें वेन्ट्रिकल एवं महाधमनी के मध्य स्थित होता है। रचना तथा कार्य की दृष्टि से यह पल्योनवरी वाल्व के समान ही होता है।

5.6 हृदय की गतिशीलता एवं हृदय स्पंदन

प्रिय पाठकों , एक स्वस्थ मनुष्य का हृदय 72 से 75 बार मिनट धड़कता है। हृदय के स्पन्दन की यह गति कम भी हो सकती है और अधिक भी। हर एक सपन्दन के साथ सर्वप्रथम दोनों एट्रियम का और उसके बाद दोनों वेन्ट्रिकल्स संकुचन होता है। संकुचन के बाद दोनों एक साथ शिथिल होते है। हृदय में यह स्पन्दन आधीवन निरन्तर चलता ही रहता है। हृदय के कार्य करते समय जैसे ही दोनों वेन्ट्रिकल्स में संकुचन होता है, वैसे ही हृदय का एपेक्स छाती की दीवार से टकराता है। इससे इसकी ध्वनि उत्पन्न होती है। उसी से हम हृदय की धड़कन या स्पन्दन के रूप में सुनते तथा अनुभव करते है।

बड़ो की तुलना में बच्चों में हृदय के स्पन्दन की गति अधिक तीव्र होती है। हृदय के स्पन्दन की गति को अनेक कारक प्रभावित करते है। जैसे कि व्यक्ति की आय , उसकी शारिरिक एवं मानसिक स्थिती इत्यादि। जैसे–जैसे व्यक्ति की आयु बढ़ती है वैसे–वैसे उसके हृदय के स्पन्दन की गति क्रमशः कम होती जाती है। तीव्र संवेग जैसे क्रोध अत्यधिक खुशी इत्यादि में हृदय की धड़कन अत्यधिक तेज हो जाती है। हृदय की मॉशपेशियों के संकुचन की प्रक्रिया को सिस्टोल तथा इनके शिपिल होने को डायस्टोल कहते हैं। सिस्टोल तथा डायस्टोल दोनों ही 0.4 तथा 0.4 सेकण्ड का समय लेती है। इन दोनों के मिलने से 0.8 सेकण्ड मे एक हृदय चक्र पूरा होता है। सिस्टोल तथा डायस्टोल दोनों के मिलने से ही रक्तचाप की क्रिया होती है।

5.7 हृदय की रक्त आपूर्ति

जिज्ञासु पाठकों , हृदय की गतिशीलता एवं स्पन्दन के बारे में जानने के बाद अब हम चर्चा करते है – हृदय की रक्त आपूर्ति के विषय में।

हृदय की रक्तापूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की रक्त नलिकायें होती है। जो रक्त नलिकायें हृदय से शरीर के विभिन्न हिस्सों में रक्त को पहुॅचाने कार्य करती है उन्हें धमनियॉ कहते है तथा जो शरीर विभिन्न भागों से रक्त को हृदय में लाने का कार्य करती है , उन्हें शिरायें कहा जाता है।

मायोकर्डियम (हृदयपेशी) में खून की आपूर्ति दायॉ तथा बॉयी कोरानरी धमनियो के माध्यम से होती है। बॉयी कोरोनरी धमनीकी एन्टीरियर इन्टरवेन्ट्रिकुलर शाखा हृदय की एन्टीरियर सतह पर विद्यमान इन्टरवेन्ट्रिकुलर में जाकर दोनों निलयों को रक्त प्रदान करती है। बायें वेन्ट्रिकल में रक्त की आपूर्ति कोरोनरी धमनियों की अतिरिक्त शाखाओं के माध्यम से होती है। ये शाखायें हृदय के बॉये किनारे के साथ फैली हुई होती है। दॉयी कोरोनरी धमनी की मार्किनल शाखा दॉये वेन्ट्रिकल तक रक्त पहुॅचाने का कार्य करती है। ये हृदय के निचले किनारे के साथ फैली हुयी होती है। मध्य हृदीय शिरा पोस्टीरियर इन्टरवेन्ट्रिकुलर इसमें पहुॅचकर कोरोनरी साइनस के मध्य भाग में रक्त की आपूर्ति करती है। कोरोनरी साइनस से रक्त दायें आलिन्द में छोटी – छोटी शिराओं , कार्डियम शिरा तथा बॉये आलिन्द भी ऑब्लिक शिरा से आता है। इसके आलावा दॉये आलिन्द की एन्टीरियर सतह से एन्टीरियर

कार्डियल शिराएँ खून को सीधे ही दॉये आलिन्द में पहुँचा देती है। कोरोनरी के पिलरीज मे से जो कार्डिस मिनिमी निकलती है, वह सीधे ही हृदय के समस्त चैम्बर में पहुँचती है , जेकिन अधिकतर दॉये आलिन्द में ही पहुॅचती हैं।

यदि किसी कारण से हृदय की रक्त आपूर्ति में कोई समस्या उत्पन्न हो जाती है तो यह हृदय की क्रियाशीलता को प्रभावित करती है। यदि कोई नरी धमनी की किसी शाखा में पूर्ण अवरोध आता जाता है तो हृदय के उस भाग में माचोकार्डिलनल इन्फारवशन हो जाता है , जिसको वह रक्त पहुॅचाती है। तो पाठकों इस प्रकार आपने जाना कि किस प्रकार हृदय की रक्त आपूर्ति होती है।

पाठकों अब हम चर्चा करते हैं हृदय के कार्य के बारे में।

5.8 हृदय के कार्य

हृदय एक पम्प की तरह कार्य करता है जो खून को अन्दर खींचता है तथा धमनियों के द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुॅचता है।

हृदय शरीर के सभी हिस्सों से उर्ध्व महाशिरा तथा निन्म महाशिरा के द्वारा अशुद्ध खून की दॉए एट्रियम में इकट्ठा करता है। पूरी तरह से भर जाने पर दॉयें एट्रियम में यंकुचन होता है और रक्त दॉए वेन्ट्रिकल मे आ जाता है। इस प्रकिया के बाद ट्राइकस्पिड वालव बन्द हो जाता है। इसके बाद दायें वेन्ट्रिकल के संकुचित होने पर रक्त पल्मोनरी वाल्व से होकर फुफ्फसीय धमनी आगे जाकर उपशाखाओं में विभक्त हो जाती है , जिसे दॉयी एवं बॉयी फुफ्फसीय धमनी कहा जाता है। इन धमनियों का कार्य है अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने के लिए फुफ्फसो तक ले जाना। फेफड़ों से शुद्ध रक्त चार फुफ्फसीय शिराओं के माध्यम से हृदय के बॉयी एट्रियम में संकुचन की क्रिया होती है धक्के के साथ बॉयें एट्रियों वेन्ट्रिकुलर वाल्व से होते हुए बॉये वेन्ट्रिकल में आता है।

इसके बाद एट्रियों वेन्ट्रिकुलर वाल्व बन्द हो जाता है। इसके बाद बॉया वेन्ट्रिकल संकुचित होता है , जिसके कारण शुद्ध रक्त महाधमनी में पहुॅचता है। महाधमनी शुद्ध रक्त को सम्पूर्ण शरीर के अंगो तक पहुॅचाने का कार्य करता है।

जो जिज्ञासु पाठकों , आपने जाना है कि जिस प्रकार से हमारा हृदय निरन्तर एक पम्पिंग मशीन की तरह कार्य करता रहता है।

5.9 हृदय की कार्यिकी

हृदय रक्त संचरण किया का सबसे मुख्य अंग है यह नाशपती के आकार का मांशपेशियों की एक थैली जैसा होता है। हाथ की मुट्ठी बॉधने पर जितनी बड़ी होती है , इसका आकार उतना ही बड़ा होता है। इसका निर्माण धारीदार (Striped) एवं अनैच्छिक मांशपेशी (involuntar muscles) द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा बायें हटकर दोनों फेफड़ो के बीच इसकी स्थिती है। यह पाचवी, छठी, सातवी, तथ आठवीं पृष्ठ देशीय – केशरूका के पीछे रहता है इसका शिरोभाग बायें क्षेपक कोष्ठ से बनता है। निम्न भाग की अपेक्षा इसका ऊपरी भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। इस पर एक झिल्लीमय आवरण चढ़ा रहता है। जिसे हृदयावरण (Periaerdium) कहते हैं। इस झिल्ली से एक प्रकार का रस निकलता है ,जिसके कारण हृत्पिण्ड का ऊपरी भाग आर्द्र (तरल) बना रहता है।

हृत्पिण्ड का भीतरी भाग खोखला रहता है। यह भाग एक सूक्ष्म मांशपेशी की झिल्ली से ढ़का तथा चारो भागो में विभक्त रहता है। इस भाग मे क्रमशः ऊपर –नीचे तथा दॉये –बॉये 4 प्रकोष्ठ (Chambers) रहते हैं। ऊपर के दायें–बायें हृदकोषों को उर्ध्व हृदकोष्ठ अथवा ग्राहक–कोष्ठ (Auricle) कहा जाता है तथा नीचे के दायें–बायें दोनों हृदकोष्ठों को क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) कहते हैं। इस प्रकार हृत्पिण्ड दोनों ओर दायें तथा बायें ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठों को अलग करने वाली पेशी से बना हुआ है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में रक्त आने के लिए हर ओर एक–एक छेद रहता है तथा इन छेदो में एक–एक कपाट (Value) रहता है। ये कपाट एक ही ओर इस प्रकार से खुलते हैं कि ग्राहक कोष्ठ से रक्त क्षेपक कोष्ठ में ही आ सकता है , परन्तु इसमें लौटकर जा नही सकता, क्योंकि उस समय यह कपाट अपने आप बन्द हो जाता है। दायीं ओर के द्वार में तीन कपाट है। अतः इसे त्रिकपाट कहते हैं। बायीं ओर के द्वार में केवल दो ही कपाट होते है, अतः इसे द्विकपाट कहा जाता है।

इससे ग्राहक कोष्ठों का काम रक्त को ग्रहण करना तथा क्षेपक कोष्ठक का काम रक्त को निकालना है। दायीं ओर हमेशा अशुद्ध रक्त भरा रहता है। इन कोष्ठो का आपस में कोई संबंध नही होता हृदय के संकोच के कारण ही उसके भीतर भरा हुआ रक्त महाधमनी (Aorta) तथा अन्य धमनियों में होकर शरीर के अंग –प्रत्यंग तथा उनकी कोषाओं (Cells) में पहुॅचकर , उन्हें पुष्टि प्रदान करता है तथा उनके भीतर स्थित विकारों को अपने साथ लाकर , उत्सर्जन अंगों को सौंप देता है, ताकि वह शरीर से बाहर न निकल जायें। शरीर में रक्त संचरण धमनी शिराओं तथा कोशिकाओं द्वारा रहता है। ये सभी शुद्ध रक्त को हृदय स`ले जाकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुॅचाती है तथा वहॉ से विकार मिश्रित अशुद्ध रक्त को लाकर हृदय को देती रहती हैं। शुद्ध रक्त का रंग चमकदार लाल होता है तथा अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का होता है। हृदय ये निकलकर शुद्ध रक्त जिन नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाता है उन्हें क्रमशः (Artery) तथा कोशिकाएॅ (Capillaries) कहते है तथा अशुद्ध रक्त लौटता हुआ जिन नलिकाओं में होकर हृदय में पहुॅचता है, उन्हें शिरा (Veins) कहते हैं।

शिराओं द्वारा लाए गये अशुद्ध रक्त को हृदय शुद्ध होने के लिए फेफड़ो में भेज देता है। वहॉ पर अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का अपने विकारों (Carbon-di-Oxide) की फेफड़ो से बाहर जाने वाली हवा (निःश्वास) के साथ मिलकर , मुॅह अथवा नाक के मार्ग से बाह्य–वातावरण में भेज देता है तथा श्वास के साथ भीतर आयी हुई शुद्ध वायु से मिलकर पुनः हृदय मे लौट आता है और वहॉ से फिर सम्पूर्ण शरीर के चक्कर लगाने के लिए भेज दिया जाता है। इस क्रम की निरंतर पुनारावृत्ति होती रहती है इसी को रक्त परिभ्रमण क्रिया (Blood Circulation) कीा जाता है। फेफड़े परिसंचरण अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। फुफ्फुसो में रक्त शुद्ध होता है –

फुफ्फुसो को रक्त पहॅुचाने का कार्य फुफ्फसीय परिसंचरण तंत्र के द्वारा सम्पन्न होता है। वाहिकाएॅ शुद्ध रक्त को हृदय के फुफ्फुसो तक ले जाती है वहॉ रक्त शुद्ध होकर उसे पुनः हृदय में ले जाती है यहॉ ये आक्सीजन युक्त रक्त शेष शरीर में वितरित होता है। फुफ्फुसीय परिसंचरण मे 4 से 8 सेकण्ड का समय लगता है। हृदय के दाएँ निलय से फुफ्फुसीय धमनी के द्वारा फुफ फुफ्फुसीय रक्त का आरम्भ होता है। महाधमनी से अनेक

छोटी–छोटी शिराएँ निकलती है, जो निरंतर क्रमशः रक्त को ले जाने तथा लाने का कार्य काती है।

रक्त का संचरण दो घेरो में होता है– (1) छोटा घेरा तथा (2) बड़ा घेरा। छोटा घेरा, हृदय ,पल्मोनरी धमनी , फेफड़ो तथा पल्मोनरी के सिरे से मिलकर बना है तथा बड़ा घेरा महाधमनी एवं शरीर भर कोशिकाओं तथा ऊतको से मिलकर तैयार हुआ है। ग्राहक कोष्ठों (Atrium) को आलिन्द तथा क्षेपक कोष्ठों (Venticle) को निलय कहा जाता है।

जब अशुद्ध रक्त उर्ध्व तथा अधः महाशिरा द्वारा हृदय के दक्षिण आलिन्द में प्रविष्ट होता है तब वह धीरे–धीरे फैलना आरम्भ कर देता है तथा पूर्ण रूप से भर जाने पर सिकुड़ना शुरू करता है फलस्वरूप आलिन्द के भीतर के दबाव में वृद्धि होकर , महाशिरा का मुख बन्द हो जाता है तथा त्रिकपाट खुलकर रक्त दक्षिण निलय मे प्रविष्ट हो जाता है दक्षिण निलय भर जाने पर जब सिकुड़ना आरम्भ करता है तब द्विकपाट बन्द हो जाता है तथा पल्मोनरी धमनी कपाट (Pulmonary Valve) खुल जाता है। उस समय शुद्ध रक्त के दक्षिण निलय से निकल कर पल्मोनरी धमनी (Pulmonary Artery) द्वारा वाम आलिन्द में गिरता है। इस क्रिया को छोटे घेरे में

रक्त संचरण (Circulation of Blood through Pulmonary circuit) नाम दिया जाता है।

पल्मोनरी धमनी द्वारा वाम आलिन्द में रक्त के भर जाने पर वह सिकुड़ना प्रारम्भ कर देता है और उसके भीतर दबाव बढ जाता है। वाम निलय के भर जाने पर वह भी सिकुड़ना प्रारम्भ कर देता है, तब द्विकपर्दी कपाट बन्द हो जाता है तथा महाधमनी कपाट खुल जाता है, फलतः वह शुद्ध रक्त महाधमनी में पहॅुच कर सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करने के लिए विभिन्न धमनियों तथा काशिकाओं में जा पहॅुचता है। इस प्रकार रक्त सम्पूर्ण शरीर मे घूम कर शिराओं से होता हुआ अन्त में उर्ध्व महाशिरा तथा अधः महाशिरा से होकर दक्षिण आलिन्द में पहॅुच जाता है। रक्त भ्रमण की इस क्रिया को बड़े घेरे का रक्त – संचरण (Circulation of Blood through larger Circuit) कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

(क) रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग ....है।

(ख) ....के चार कपाट होते है।

(ग) रक्त कणिकाओं को बाहर इधर–उधर ले जाने का कार्य ....द्वारा सम्पन्न होता है।

(घ) ....की उपस्थिती के कारण ही रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है।

(ड़) रक्तस्त्राव होने पर रक्त को जमाने का कार्य ....प्रोटीन करता है।

(च) सबसे बड़ी धमनी ....तथा सबसे बड़ी शिरा ....है।

2. **सत्य/असत्य बताइये**

(क) पल्मोनरी धमनी तथा रक्त धमनी के अतिरिक्त शेष सभी धमनियॉ शुद्ध सभी रक्त का वहन करती है।

(ख) शिराओं की दीवारें मोटी एवं लचीली होती हैं।

5.10 सारांश

तो प्रिय विद्यार्थियों , उपर्युक्त अध्ययन से आप जान ही गये होगें की हमारे शरीर की कार्यप्रणाली में हृदय का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी संरचना एवं कार्यप्रणाली क्या है, कैसे इसमें सम्पन्दन होता है ? किस प्रकार से शरीर के विभिन्न भागों में रक्त पहुॅचाता है इत्यादि ।

हमारा हृदय बिना थके – थके लगातार एक पम्पिंग मशीन की तरह कार्य करता रहता है। जिस दिन किसी व्यक्ति का हृदय कार्य करना बन्द कर देता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार उसी समय उसे मृत घोषित कर दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि हृदय हमारे शरीर का एक अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंग है।

5.11 शब्दावली

प्रोटोप्लाज्म – कोशिका का तरल भाग जिसमें कोशिनांग तैरते है। यही कोशिका जीव द्रव्य कहलाता है।

अनैच्छिक ऊतक – अपनी इच्छा से जिन ऊतकों का नियत्रण होता है, व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा इन ऊतको को नियन्त्रित किया जाता है।

धमनी – शुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस

शिरा – अशुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी नस

हीम – लौह युक्त पदार्थ

ग्लोबीन – एक प्रोटीन

दूषित – खराब , गन्दा , दोष युक्त

ब्लड प्रेशर – रक्त चाप , रक्त का दबाव

कपाट – दरवाजे , किवाड़

पल्मोनरी धमनी – एक ऐसी धमनी जिसमें अशुद्ध रक्त बहता है।

पल्मोनरी शिरा – एक ऐसी जिसमें शुद्ध रक्त बहता है।

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.रिक्त स्थानो की पूर्ति किजिए

(क) हृदय
(ख) श्वेत
(ग) प्लाज्मा
(घ) हीमोग्लोबिन
(ड़) फाइब्रोनोजिन
(च) एओटा, बेनाकावा (Alota venacava)

2.सत्य /असत्य बताइये

(क) सत्य
(ख) असत्य
(ग) असत्य
(घ) सत्य
(ड़) सत्य
(च) असत्य

(छ) सत्य
(ज) असत्य

5.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन , आगरा।
2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान , नाथ पुस्तक भण्डार , रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश , ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियालॉजी , खेल साहित्य केन्द्र , नई दिल्ली।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान , नाथ पुस्तक भण्डार , रेलवे रोड , रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0 के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी , वाराणसी।
6. वर्मा मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास , दिल्ली
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान , भाषा भवन , मथुरा
8. सक्सेना , ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी , भाषा भवन मथुरा
9. अग्रवाल , जी0 सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान , एक्युप्रेशर शोध , प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान , इलाहाबाद
10. Chaurasia's BD (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi .

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. परिवहन तंत्र का परिचय देते हुए रक्त विश्लेषण किजिए।
2. रक्त संचरण के प्रमुख अवयवों की व्याख्या करते हुए रक्त के कार्य बताइयें।
3. हृदय के रचना व कार्यो का विस्तारपूर्वक वर्णन किजिये।

इकाई 6 – पाचन तंत्र की रचना व क्रिया का परिचय

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 पाचन तंत्र का परिचय
6.4 पाचन तंत्र के प्रमुख अंग
 6.4.1 मुह
 6.4.2 ग्रसनी
 6.4.3 ग्रासनली
 6.4.4 आमाशय
 6.4.5 छोटी ऑत
 6.4.6 बड़ी ऑत
 6.4.7 मलाशय
 6.4.8 गुदा
6.5 पाचन तंत्र के सहायक अंग
 6.5.1 दॉत
 6.5.2 जिह्वा
 6.5.3 गाल
 6.5.4 लार ग्रन्थयॉ
 6.5.5 अग्न्याशय
 6.5.6 यकृत
6.6 पाचन तंत्र की क्रिया विधि
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई मे आपने हृदय की रचना व कार्य विधि का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप पाचन तंत्र जो कि शरीर का एक अति महत्वपूर्ण तंत्र के बारे में अध्ययन करेगें। आप जानते है कि पाचन तंत्र की कार्यप्रणाली क्या है व शरीर को स्वस्थ रखने में तथा किसी भी कार्य करने में जिस ऊर्जा की हमें आवश्यकता होती है वह पाचन तंत्र द्वारा किस प्रकार सम्पादित होती है।

इसके अतिरिक्त आप पाचन तंत्र के विभिन्न अवयवो जैसे मुख , अन्न प्रणाली , पाकस्थली पक्वाशय , ऑते इत्यादि की कार्य प्रणाली व संरचना को समझेंगे। वास्तव में पाचन संस्थान जो समस्त खाद्य पदार्थो को पचाकर शरीर में खपने योग्य बनाती हैं फलस्वरूप पाचन संस्थान शरीर को ऊर्जा प्रदान कर सारे तंत्रो को पोषण देने का कार्य करता है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का में आप

- पाचन तंत्र के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पाचन तंत्र की रचना व क्रिया की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पाचन अंगो की कार्य विधि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मुख की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन करेगें।
- अन्य प्रणाली की संरचना एवं कार्य प्रणली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- आमाशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली को समझ सकेंगे।
- ग्रहणी की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- छोटी ऑत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन कर सकेंगे।
- बड़ी ऑत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- यकृत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।
- पित्ताशय की संरचना एवं इसकी कार्य प्रणाली को जान सकेंगे।
- अग्न्याश्य की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पाचन क्रिया की कार्य प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे।

6.3 पाचन तंत्र का परिचय

व्यक्ति साधारण रूप में जो भी भोजन हम ग्रहण करते हैं वह वास्तव में भी तभी हमारे लिए उपयोगी होता है जब हम इस लायक हो जाये कि शरीर के अन्तर्गत रक्त कोशिकाओ एवं अन्य कोशिकाओं तक पहुॅच कर शक्ति व ऊर्जा उत्पन्न कर सके। यह कार्य पाचन प्रणाली के विभिन्न अंग मिलकर करते हैं। पाचन का कार्य पेशियो की गतियों , रासायनिक स्राव के माध्यम से होता है। पाचन वह रासायनिक व यान्त्रिक क्रिया है , जिसमें ग्रहण किया गया भोजन अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर विभिन्न एन्जाइम्ज व पाचन रसों की क्रिया के फलस्वरूप परिवर्तित होकर , रक्त कणो द्वारा अवशोषित होने योग्य होकर कोशिकाओं के उपयोग मे आता है। पाचन की यह सम्पूर्ण क्रिया पाचन अंगो के द्वारा सम्पन्न होती है। वास्तव में पाचन की प्रक्रिया एक रासायनिक एवं यान्त्रिक प्रक्रिया है। जिसमें भोजन के दीर्घ अणु टूटकर विविध एन्जाइम्स की सहायता से सूक्ष्म अणुओं में विभक्त हो जाते है। सूक्ष्म अणुओं का अवशोषण ऑतो मे होकर वह शरीर में खपने योग्य बनता है तथा शरीर की कोशिकाओं को ऊर्जा प्रदासन करता है। हम भोजन को जिस

रूप में लेतें हैं वह उसी रूप में शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्रहण नही होता है वरन् भोजन में सम्मिलित तत्व जब अपने सरल रूप में आते हैं तभी वह ग्रहण हो पाता है। नीचे एक सारणी दी जा रही है जो कि भोजन के रूप में ग्रहण की गई वस्तु की है एवं वह जिस रूप में परिवर्तित होती है उसके प्रदर्शित है।

क्रम संख्या	भोज्य पदार्थो के नाम	परिवर्तित पदार्थ
1	कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)	ग्लूकोज, फ्रक्टोज, गैलेक्टोज, सुक्रोज आदि सरल शर्करा में।
2	प्रोटीन (Proteins)	पेप्टोन्स तथा अमीनो अम्ल में।
3	वसा (Fat)	वसीय अम्ल में तथा ग्लिसरॉल में।
4	ज्ल	अपनी वास्तविक स्थिति में अवशोषित हो जाते है।
5	खनिज लवण	अपनी वास्तविक स्थिति में अवशोषित हो जाते है।
6	विटामिन	टपनी वास्तविक स्थिती में अवशोषित हो जाते है।

6.4 पाचन तंत्र के प्रमुख अंग

पाचन संस्थान में निम्नलिखित अंग अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

6.4.1 मुख (Mouth) . मुॅह पाचन तन्त्र का प्रमुख अंग है। मुॅह को दो भागो में विभक्त किया जाता है पहला भाग मुख गुहा (Buccal Cavity) जो बाह्य रूप से होठ गाल तथा अन्दर से दॉत तथा मसूड़ो में विभक्त रहता है। दूसरा भाग दॉत व मसूड़ो से पीछे की ओर ग्रसनी में खुलता है। मुॅह का भीतरी भाग श्लेष्मिक झिल्लियों द्वारा निर्मित है। ये भी त्वचा जैसी होती है, तथा इसका रंग लाली लिए रहता है। इसमें रसस्त्रावी ग्रन्थियॉ (Secreting glands) होती हैं और इसमें पास आने वाले पदार्थ का शोषण करने की क्षमता भी रहती है। जीभ, तालुमूल, तालु तथा दॉत – ये सब मुख के भीतर ही रहने वाले अवयव हैं।

6.4.2 ग्रसनी (Pharynx) मुख गुहा पश्चभाग की ओर जहॉ खुलती है उस भाग को ग्रसनी कहते है। ग्रसनी से श्वास तथा पाचन संस्थान का मार्ग शुरू होता है। श्वास प्रणाली के मार्ग को (Trachea) तथा पाचन संस्थान के मार्ग को ग्रासनली (Oesophagus) कहते है। प्रिय पाठको ध्यान रहे हम जो भी भोजन को चबाते है वह ग्रसनी के द्वारा ही ग्रासनली मे पहुॅचता है। इसकी लम्बाई 4 से 6 इंच तक होती है। ग्रसनी के मुख्य रूप से जीन विभाग होते है।

S.No	Part Of Pharynx	Position

1	नासाग्रसनी (Nasopharynx)	नासिंका के पीछे वाला भाग जहॉ से रबर नेति को पकड़कर खीचा जाता है।
2	मुख ग्रसनी (Oropharynx)	जहॉ पर जीभ की मूल है। इसके पार्श्वीय भितियों में टॉन्सिल रहते है।
3	स्वरग्रसनी (Laryngopharynx)	यह वह भाग है जो आहार नाल में खुलता है।

ग्रसनी के बीच का अस्तर तन्तुमय ऊतक तथा वाह्य अस्तर पेशीय होता है जिसे संकुचन पेशियॉ कहते है।

6.4.3 ग्रासनली (Oesophagus) . जिन नली के द्वारा भोजन अमाशय में पहुॅचता है , उसे अन्न प्रणाली अथवा अन्न मार्ग (Alimentary canal) कहते हैं। ग्रासनली सर्वाइकल क्षेत्र के 6 वें कशेरूक से शुरू होती है और नीचे की ओर होती हुई थोरेसिक क्षेत्र के 10 वें कशेरूक तक होती है। ग्रासनली की भित्ति की निम्न परतें होती है।

– श्लेष्मिक कला (Mucosa)

– अवश्लेष्मिक परत (Submucosa)

– पेशीय परत (Muscularis Externa)

ग्रासनली गले (pharynx) से आरम्भ होती है। इसके नीचे की गलनली अथवा ग्रासनली (Gullet) है, जो लगभग 10–15 इंच तक लंबी होती है तथा भोजन को मुॅह से आमाशय तक पहुॅचाने का कार्य करती है। इसमें कोई हड्डी नही होती। यह मॉशपेशियॉ तथा झिल्लियों से बनी होती है।

6.4.4 आमाशय (Stomuch) यह नाशपती के आकार का एक खोखली थैली जैसा अवयव है जो बांई ओर के उदर – गह्नर के ऊपरी भाग में तथा उदर वक्ष (महाप्राचीरा) के ठीक नीचे की ओर स्थित है। हृत्पिण्ड इसी पर स्थित है। यह गलनली के द्वारा मुॅह से संबधित रहता है।

आमाशय पाचन संस्थान का सबसे चौड़ा भाग है इसका एक भाग ग्रासनली तथा एक भाग छोटी ऑत के पहले भाग ग्रहणी पर खुलता है। आमाशय को पाकस्थली भी की‍ा जाता है। पाकस्थली का भीतरी भाग श्लैष्मिक झिल्ली से भरा रहता है। जब पेट खाली होता है , तब इसकी श्लैष्मिक झिल्ली की तह जैसी बन जाती है। श्लैष्मिक झिल्ली का अधिकाश भाग पाकस्थली के भीतरी भाग को तर बनाये रखने के लिए श्लैष्मिक स्राव करता है, जिससे कितने ही भागो में रसस्रावी ग्रन्थियॉ भर जाती हैं। इन ग्रन्थियों से पेप्सिन तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड के स्राव होते हैं। इन ग्रन्थियों को पेप्सिन ग्रंथियॉ कहा जाता है। पानी तथा नमक पर आमाशयिक यस की कोई क्रिया नही पाती। पाकस्थली के जीन स्तर

होते है। इसका बाहरी तथा ऊपर वाला स्तर उदरक (Perotoneum or Serous Coat) कहा जाता है। इसे पाकस्थली का एक ढक्कन कहना अधिक उपयुक्त रहेगा। यह स्तर एक प्रकार की रस – स्त्रावी झिल्ली है जो उदर प्राचीर (Abdominal Wall) के भीतरी ओर रहती है। पाकस्थली का मध्यस्तर (Middle or Muscular portion) मॉसपेशी द्वारा निर्मित होता है। खाये हुए पदार्थ के मांशपेशी मे पहॅचते ही इसकी सब पेशियॉ एक–के–बाद–एक संकुचित होने लगती हैं, जिसके कारण लहरें भी उठकर पाकस्थली की एक छोर से दूसरी छोर तक हिलाती हैं। इस क्रिया के कारण खाया हुआ पदार्थ चूर–चूर होकर लेई जैसा रूप ग्रहण कर लेता है।

पाकस्थली का अन्तिम तीसरा स्तर (Mucous Coat) मधुमक्खी के छत्ते जैसा होता है। इसमें श्लैष्मिक झिल्ली के बहुत से छोटे– छोटे छिद्र रहते हैं। इस झिल्ली की ग्रन्थियॉ में उत्तेजना होते रस स्त्राव होने लगता है। ये ग्रन्थियॉ दानेदार सी होती हैं। इन्हें लसिका ग्रंथियॉ कहा जाता है।

आमाशय 24 घंटे में लगभग 5–6 लीटर रस निकालता है। इसमें भोजन प्रायः 4 घंटे तक रहता है तथा इसके लगभग 1.5 किलोग्राम भोजन समा सकता है। परन्तु कई लोगों में इसकी क्षमता बहुत अधिक पायी जाती है।

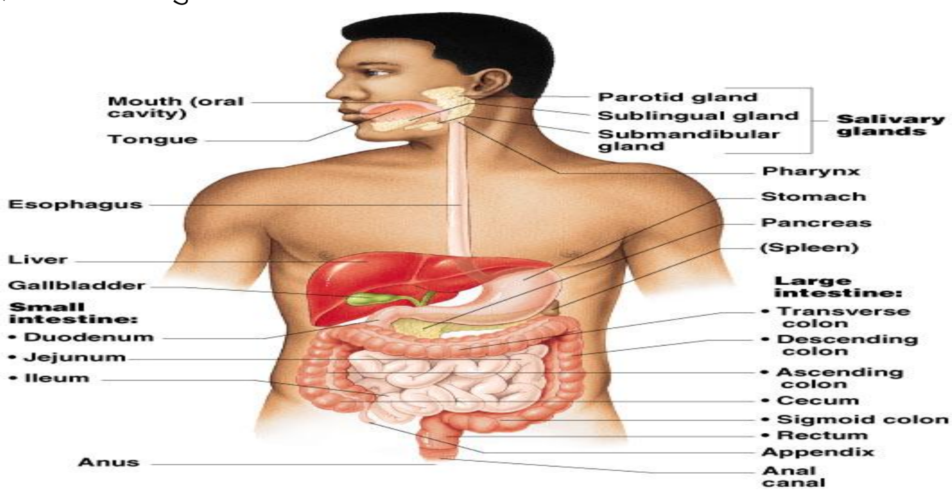

6.4.5 छोटी ऑत (**Small Intestine**). छोटी ऑत लगभग 6–7 मीटर लम्बी बड़ी ऑत से ढकी रहती है। छोटी ऑत के तीन विभाग होते है।

- ग्रहणी (Duodenum)
- मध्यान्त्र (Jejunum)
- शेषान्त्र (Illeum)

(A) ग्रहणी (**Duodenum**). आमाशय के पाइलोरिक छोर के आरम्भ होने वाले अंत के भाग को पक्वाशय कहते हैं। यह अर्द्ध–गोलाकार में मुड़ कर अग्नयाशय ग्रंथि के गोल सिर को तीन दिशाओं में लपेटे रहता हैं यह लगभग 19 इंच लम्बा तथा आकार में घोड़े की नाल अथवा अंग्रेजी के (C) अक्षर जैसा होता है। यह आमाशय के पाइलोरिक से आरंभ

होता है। इसका पहला भाग ऊपर दाईं ओर पित्ताशय के कण्ठ तक जाता है तथा वहॉ से दूसरा भाग नाचे की ओर बढ़ता है।

पक्वाशय के भीतर पित्त वाहिनी तथा अग्न्याशय के मुँह एक ही स्थान पर खुलते है जिनसे निकले स्राव एक ही छिद्र द्वारा पक्वाशय में गिरते हैं। पक्वाशय का ऊपरी भाग पैरीटोनियम से ढ़का रहता है तथा अन्तिम भाग जेजूनम (Jajunum) से मिला रहता है। पक्वाशय में आमाशय से जो आहार रस आता है, उसके ऊपर पित्त रस (Bill juice) तथा क्लोम रस (Pancreatic Juice) की क्रिया होती है। क्लोम रस पानी जैसा पतला, स्वच्छ, रंगहीन, स्वादरहित तथा क्षारीय – प्रतिक्रिया वाला होता है। इसका आपेक्षित गुरूत्व लगभग 1.007 होता है। इसमें चार विशेष पाचक तत्व –(1) ट्रिप्सीन (Trypsin) , (2) एमिलौप्सीन (Amylopsin) , (3) स्टीप्सीन (Steapsin) तथा (4) दुग्ध परिवर्तक पाये जाते हैं। ये आहार रस पर अपनी क्रिया करके प्रोटीनों को पेप्टोन्स में श्वेतसार को वसा को ग्लीसरीन तथा अम्ल एवं दूध को दही में परिवर्तित कर देते हैं।

(A) जेजुनम **(Jejunum)**. ग्रहणी को छोडकर यह छोटी ऑत का 2/5 भाग होता है लगभग 2.5 से 3 मीटर (लगभग 8–10 फीट) लम्बा होता है। इस भाग पर छोटे छोटे रसांकुर होते है जो भोजन का अवशोषण करते है।

(B) जेजुनम इलियम (**Illeum**).यह छोटी ऑत का सबसे अन्तिम भाग है जो बड़ी ऑत के प्रथम भाग (**Ascending Colon**)से चिपका रहता है। यह लगभग 3 मीटर लम्बा होता हैं जो भाग बड़ी ऑत के शुरूवाद सीकम पर जुड़ता है वहॉ पर इलियोसीकम वालवद होते है जो संकुचित होते हुए भोज्य पदार्थो वापस आने से रोकता है।

6.4.6 बड़ी ऑत (Large Intesine) . छोटी ऑत जहा समाप्त है, वहॉ से एक बड़ी ऑत आरंभ होती है। जिससे अन्न – पुट (Intestinal Caccum) मिली होती है, से निकलती है। यह छोटी ऑत से अधिक चौड़ी तथा लगभग 5–6 फुट लंबी होती है। इसका अन्तिम डेढ़ अथवा 2 इंच का भाग ही मलद्वार अथवा गुदा कहा जाता है। गुदा के ऊपर वाले 4 इंच लम्बे भाग को मलाशय कहते हैं। यह बड़ी ऑत , छोटी ऑत के चारों ओर घेरा डाले पड़ी रहती है। छोटी ऑत की तरह ही बड़ी ऑत में भी कृमिवत् आकुंचन होता रहता है। इस गति के कारण छोटी ऑत से आये हुए आहार रस (Chyme)के जल भाग का शोषण होता है। छोटी ऑत से बचा हुआ आहार रस जब बड़ी ऑत में आता है, तब उसमें 95 प्रतिशत जल रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ भाग प्रोटीन , कार्बोहाइड्रेट तथा वसा का भी होता है। बड़ी ऑत में इन सबका ऑक्सीकरण होता है तथा जल के बहुत बड़े भाग को सोख लिया जाता है। अनुमानतः 24 घण्टे में बड़ी ऑत में **400 c.c.** पानी का शोषण होता है। यहॉ से भोजन रस का जलीय भाग रक्त में चला जाता है तथा गाढ़ा भाग विजातीय द्रव्य के रूप में मलाशय में होता हुआ मलद्वार से बाहर निकल जाता है।

पाठकों वस्तुतः बड़ी ऑत के निम्न सात भाग होते है।

- सीकम (Cascum)
- आरोही कोलन (Ascending)
- अनुप्रस्थ कोलन (Transfer Colon)
- अवरोही कोलन (Decending Colon)

- सिग्मॉयड कोलन (Sigmoid)
- मलाशय (Rectum)
- गुदा द्वार (Anus)

6.4.7 मलाशय (Rectum). यह बड़ी ऑत के सबसे नीचे थोड़ा फैला हुआ लगभग 12 से 18 से0 मी0 लम्बा होता है। इसकी पेशीय परत मोटी होती है। मलाशय के म्यूकोशा में शिराओं का एक जाल होता है जब ये फुल जाती है तो इनमें से रक्त निकलने लगता है जिसे अर्श या बवासीर कहा जाता है

6.4.8 गुदा (Anus). गुदा पाचन संस्थान अन्तिम भाग है। इसी भाग से मल का निष्कासन होता है। गुदीय नली श्लैषिक परत एक प्रकार के शल्की उपकला की बनी होती है जो ऊपर की ओर मलाशय की म्यूकोसा में विलीन हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न –

(1) क. छोटी ऑत में कितने भाग होते है –

(अ) 2 (ब) 3 (स) 5 (द) 2

ख. पक्वाशय को अन्य किस नाम से जाना जाता है।

(अ) आमाशय
(ब) ग्रहणी
(स) ग्रासनली
(द) इनमें से कोई नहीं

ग. ग्रसनी के कितने भाग होते है–

(अ) 4 (ब) 2 (स) 6 (द) 3

घ. भोजन का पाचन कहॉ खत्म होता है।

(अ) आमाशय
(ब) ग्रहणी
(स) इलियम
(द) जेजुनम

6.5 पाचन तंत्र के सहायक अंग

6.5.1 दॉत – दॉत मुख गुहा में ऊपरी जबड़े एवं निचले जबड़े के अस्थिल पर्तों में स्थिर रहते है। एक व्यस्क व्यक्ति में इनकी संख्या 32 होती है। दॉतो की सहायता से भोजन को चबाया जाता है।

6.5.2 जिह्वा – जिह्वा हॉयड अस्थि से जुड़ी हुई मुख के तल में स्थित एक पेशीय रचना होती है। जिह्वा में छोटे – छोटे उभार होते है जिन्हे (**Papillae**) कहते है। **Papillae** में स्वाद कलिकाऍ (Taste buds) होती है। हम जब भोजन करते है तो हमें स्वाद का अनुभव होता है यह अनुभव हमें स्वाद कलिकाओं **(Taste buds)** के कारण ही होता है।

6.5.3 गाल –गाल हमारे दोनों ऑखो के नीचे स्थित होता है। गाल में **(Buccinator Muscles)** बक्सीनेटर नामक मॉसपेशीय पायी जाती है। गाल में अन्दर की ओर बहुत छोटी श्लेष्मा का स्त्रावण करने वाली ग्रन्थियॉ पायी जाती है जो श्लेष्मा का स्त्रावण कर पाचन में बहुत बड़ी मदद करती है।

6.5.4 लार ग्रन्थियॉ – मानव शरीर में तीन जोडी लार ग्रन्थियॉ पायी जाती है। जो इस प्रकार से है।

(A).Parotid Gland- कर्ण मूल ग्रन्थियॉ – कानों के भीतरी भाग में नीचे की ओर 1–1 ग्रन्थि स्थित होती है। इन लवण, जल एवं टायलिन का स्त्रावण होता है।

(B)**Submandibular Gland** – अब अधोहनुज ग्रन्थियॉ मुख के निचले जबड़े की ओर 1–1 ग्रन्थि स्थिर होती है। इन ग्रन्थियों से लवण , जल एवं म्यूसीन का स्त्रावण होता है

(C)**. Sublingual Gland** – अवजिह्वी ग्रन्थियॉ मुख के तल में जिह्वा के थोड़ी नीचे की ओर स्थित होती है। आकार में ये ग्रन्थियॉ छोटी होती है। इन ग्रन्थियॉ से भी लवण , जल एवं म्यूसीन का स्त्रावण होता है।

6.5.5 अग्न्याशय (**Pancreas**). यह भी एक बड़ी ग्रन्थि है , परन्तु आकार में यकृत से छोटी होती है। प्लीहा के पास रहती है। इसमें से क्लोम रस (pancreatic juice) निकल कर ऑतो में जाता है। क्लोम रस एक प्रकार का क्षारीय द्रव होता है क्लोम रस में तीन प्रकार के पाचक पदार्थ पाये जाते है–(1) प्रोटीन विश्लेषक, (2) कार्बोहाइड्रेट विश्लेषक तथा (3) वसा विश्लेषक। प्रोटीन विश्लेषक की सहायता से प्रोटीन का विश्लेषण होता है। श्वेतसार विश्लेषक की सहायता से श्वेतसार से शर्करा का निर्माण होता है तथा वसा विश्लेषक की सहायता से वसा (चर्बी) से ग्लिसरीन अम्ल तैयार होता है।
पित्त से मिलकर क्लोम रस की क्रिया अत्यन्त प्रबल हो जाती है। चर्बी वाले पदार्थों को पचाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। ऑतो में पित्त के रहने से सड़ने की क्रिया कम होती है तथा न रहने पर अधिक होती है अग्न्याशय के निम्न तीन भाग होते है।

(A)**. Head - शीर्ष – यह अग्न्याशय का सबसे चौड़ा भाग होता है।**

(B)**. Body** देह - यह अग्न्याशय का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है। इसका अन्तिम हिस्सा पुच्छ से जुड़ा रहता है।

(C)**. Tail** पुच्छ - यह अग्न्याशय का सबसे अन्तिम भाग है। जो बॉये किडनी के सामने से प्लीहा तक फैला रहता है।

6.6.6 यकृत (Liver) यह मनुष्य शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि (Gland) है। यह उदर में दायीं ओर वक्षोदरमध्यस्थ – पेशी (Diaphragm)के नीचे स्थित है। यकृत की लम्बाई लगभग 9 इंच , चौड़ाई 10.12 इंच तथा भार लगभग 50 औंस होता है। इसका भार मानव शरीर के सम्पूर्ण भाग का 1.40 प्रतिशत होता है। इसका आपेक्षिक गुरूत्व 1.005 से 1.006 होता है। इसका रंग कत्थई होता है। यह ऊपर से छूने में मुलायम तथा भीतर से ठोस होता है। यह 24 घण्टे में लगभग 550 ग्राम पित्त (Bile) तैयार करता है इसका स्वरूप त्रिभुजाकार होता है। यकृत में स्थित पित्ताशय (Gall Bladder) पाचन क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है पित्ताशय का आकार एक नाशपती के समान खोखली थैली जैसा होता है। यह थैली यकृत के की सतह के भीतर रहती है तथा इसका अन्तिम बड़ा शिरा कुछ – कुछ दिखाई देता है। इसके भीतरी भाग से पित्ताशयिक नली (Cystic Duct) बनती है, जो मध्यभाग के पीछे की ओर से होती हुई यकृत नली में जाकर मिल जाती है। इस प्रकार पित्त – प्रणाली (Bile Duct) का निर्माण होता है।

6.6 पाचन क्रिया

हम जो कुछ भी खाते हैं। वह सर्वप्रथम मुँह में पहुँचता है। वहाँ दातों द्वारा उसे छोटे – छोटे टुकड़ो में कर दिया जाता है। मुँह की गन्थियों से निकलने वाला लार नामक एक स्त्राव उस कुचले हुए भोजन को चिकना बना देता है ताकि वह गले द्वारा आमाशय से आसानी से फिसल कर पहुँच सके। इस लार में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ भी होते हैं। जो भोजन को पचाने में सहायता करते है इनमें से एक म्यूसिन है जो साग अथवा छिलकों पर अपनी क्रिया प्रकट करता है। दूसरा टाइलिन है जिसकी क्रिया कार्बोहाइड्रेट्स पर होती है। जब आहार आमशय में पहुँचने को होता है, उस समय आमाशय की ग्रन्थियो से एक गैस्ट्रिक स्त्राव (Gastric juice) निकलता है जो एक तेजाब की तरह होता है। यह आहार द्वारा आमाशय में पहुँचे हुए जीवाणु को नष्ट करता है तथा पाचन – क्रिया में सहायता पहुँचाता है। यह आहार को गला कर लेई के रूप में (Chyme) बदल देता है, जिसके कारण वह सुपाच्य हो जाता है। आमाशय का पेप्सीन नामक एन्जाइम अर्थात् पाचक रस प्रोटीन पर क्रिया करता है और उसे एक किस्म के रासायनिक योग पेप्टोन (Peptone) में बदल देता है। आमाशय में पहुँचा हुआ आहार एकदम लेई की भाँति घुट जाता है। वहाँ से वह पक्वाशय में पहुँचाता है यकृत से उत्पन्न होने वाला पित्त रस पक्वाश्य में पहुँचकर इस आहार में जा मिलता है साथ ही से अग्न्याशय का रस भी जा मिलता है। इन रसों के संयोग से भोजन घुलनशील वस्तु के रूप में परिणत हो जाता है। आहार के पचने का अधिकांश कार्य आमाशय तथा पक्वाशय में ही होता है। तत्पश्यात् वह छोटी आँत में होता हुआ बड़ी आँत में पहुँचता है। आँतों की मांसपेशियों क्रमशः फैलती तथा सिकुड़ती हुई भोजन को आगे की ओर बढाती रहती है। इस क्रिया को पेरीस्टालटिक गति (Peristaltic Moment) कहते हैं। बड़ी आँतो में जल के भाग का शोषण हो जाने के बाद भोजन का सार भाग द्रव के रूप में रक्त मिल जाता है तथा ठोस भाग मल के रूप में गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है।

भोजन के सार भाग का शोषण दो प्रकार से होता है – (1) रक्त नलिकाओं द्वारा तथा (2) लसिका नलिकाओं द्वारा । प्रोटीन , कार्बोहाइड्रेट तथा 40 प्रतिशत चर्बी का शोषण रक्त निलकाओं द्वारा होता है तथा शेष चर्बी लसिका नलिकाओ द्वारा शोषित कर ली जाती है। प्रोटीन का शोषण मांसपेशियों द्वारा होता है। ये अपनी आवश्यकतानुसार प्रोटीन ग्रहण कर शेष को छोड़ देती है तब वह शेष प्रोटीन रीनल धमनी द्वारा वृक्क में पहुँचता है और मूत्र के रूप में परिणत होकर मूत्र – नली द्वारा बाहर निकल जाता है।

कार्बोहाइड्रेट का अधिक भाग ग्लूकोज के रूप में रक्त द्वारा शोषित होकर सम्पूर्ण शरीर में फैलकर उसे शक्ति प्रदान करता है। पित्त की क्रिया द्वारा चर्बी (1) साबुन तथा (2) इमल्शन इन दोनों में बदल जाती है। साबुन वाला चर्म के निम्न भागों , गाल उदर की बाहरी दीवार तथा नितम्बों मे एकत्र होता है तथा इमल्शन वाला भाग लसिका नलियाँ द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुँचाने का कार्य करता है। नवजात शिशु का पाचन संस्थान भली – भाँति विकसित नही हो पाता और उसमें पाचक रस भी नही बनता है, इसी कारण वह माँ के दूध के अतिरिक्त को कुछ नही पचा पाता, परन्तु वह ज्यों ज्यों वह बड़ा होने लगता है, त्यों त्यों उसकी पाचन शक्ति भी बढ़ती चली जाती है। 50 वर्ष की आयु तक पाचन शक्ति भी बढ़ती रहती है, तत्पश्यात् वह घटने लगती है। पाचन शक्ति कमजोर हो जाने पर मनुष्य को ऐसा आहार लेने की आवश्यकता पड़ती है

जो आसानी से पच जाये। वृद्धावस्था में सादा तथा हल्का भोजन लेना ठीक रहता है। भारी भेजन लेने से खून का दबाव बढ़ जाया करता है।

अभ्यास प्रश्न

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति किजिए।

(क) छोटी ऑत के दो भाग होते जिन्हें ....और ....कहते हैं।

(ख) मुॅह में रहने वाला .... एन्जाइम भोजन में मिलकर कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायता करता है।

(ग) मनुष्य शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि .... है।

(घ) ऑतो में होने वाली ग्रन्थि को .... कहते है।

(ड़) भोजन के सार भाग का शोषण .... और .... नलिकाओ द्वारा होता है।

3. सत्य / असत्य बताइए।

(क) मनुष्य शरीर में सबसे बड़ी ग्रन्थि यकृत है।

(ख) चर्बी का इमल्शन वाला भाग लसिका नलियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुॅचाने का कार्य करता है।

(ग) मल के दुर्गन्ध का कारण बड़ी ऑत में उपस्थित इण्डोल व स्कैटोल पदार्थ हैं।

(घ) आमाशय की ग्रन्थियों से पित्त रस और क्लोम रस स्त्रावित होता है।

(ड) टायलिन का स्त्रावण लार से होता है।

6.7 सारांश

पाठकों पाचन तंत्र के सन्दर्भ में हमेशा निम्न बिन्दुओं को स्मरण रखियेगा।

प्रमुख अंग – मुॅह , ग्रसनी ग्रासनली , आमाशय , छोटी ऑत , बड़ी ऑत , मलाशय , गुदा

सहायक अंग – दॉत , जिह्वा , गाल , लार ग्रन्थियॉ , अग्न्याशय , यकृत

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप पाचन तंत्र प्रक्रिया को भलि – भॉति समझ चुके हैं। शरीर के आठ प्रमुख संस्थानों में पाचन तंत्र की अत्यधिक महत्व है। पाचन संस्थान मुख , अन्न प्रणाली , पाकस्थली , पक्वाशय , ऑतों , यकृत पित्ताशय और अग्न्याशय के माध्यम से पाचन क्रिया को सम्पादित करता है। हम जो भी खाते है वह सर्वप्रथम मुॅह में आता है और दांतों द्वारा छोटे टुकड़ो में बदल जाता है। मुॅह में स्थित लार भोजन को अन्नप्रणाली के माध्यम से आमाशय तक पहॅुचाती है। आमाशय की ग्रन्थियों से स्त्रावित गैस्टिक जूस पाचन क्रिया में सहायक होते है फिर भोजन पक्वाशय में पहॅुच पित्त रस में मिल जाता है। तत्पश्चात् ऑतो के माध्यम से यह शोषित होता है। भोजन का सार भाग शोषण के पश्यात् द्रव के रूप में रक्त से मिल जाता है तथा ठोस भाग गुदा द्वार से मल के रूप में बाहर निकल जाता है। इस प्रकार पाचन क्रिया विभिन्न अंगो के माध्यम से पूरी होती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सहज रूप से पाचक अंगो की संरचना व पाचन क्रिया को समझ गये होगें

6.8 शब्दावली

देह – शरीर , काया

म्यूसीन – लार में पाये जाने वाला एन्जाइम

लार – लार मुख में पाये जाने वाला पाचन रस है।

कायम – आमाशय , छोटी ऑत एवं बड़ी ऑत की गतियॉ के फलस्वरूप भोज्य पदार्थ का छोटे – छोटे कणों में विभक्त होकर लुगदी जैसा बनने को कायम कहा जाता है।

पेप्सीन – प्रोटीन पाचक एन्जाइम
टायलिन – लार में पाये जाने वाला एन्जाइम
क्लोम – अग्न्याशय
लिवर – यकृत

6.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1 – वहुविकल्पीय प्रश्न –
(क) ब **(ख)** अ **(ग)** द **(घ)** ब
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति किजिए।
(क) जेजूनम , इलियम
(ख) टाइलिन
(ग) यकृत
(घ) पेरीस्टालटिक
(ड़) रक्त लसिका ,
(च) साबुन , डमल्शन
2. सत्य /असत्य बताइए।
(क) सत्य
(ख) असत्य
(ग) सत्य
(घ) सत्य
(ड़) सत्य

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता , प्रो0 अनन्त प्रकाश , (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन आगरा।
2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान , नाथ पुस्तक भण्डार , रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी , खेल साहित्य केन्द्र नई दिल्ली।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान , नाथ पुस्तक भण्डार , रेलवे रोड रोहतक।
5. वर्मा , मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
6. सक्सेना , ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी , भाषा भवन, मथुरा
7. अग्रवाल , जी0 सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान , एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान , इलाहाबाद

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाचन क्या है ? पाचन संस्थान के मुख्य अंगो का विस्तारपूर्वक वर्णन किजिए।
2. पाचन क्रिया को विस्तारपूर्वक समझाइये।
3. पाचन संस्थान के सहायक अंगो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई 7– बाह्य श्वसन तंत्र की सरचना एवं कार्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 श्वसन तंत्र का अर्थ

7.4 श्वसन तंत्र की संरचना

7.4.1 नासिका की रचना एवं कार्य

7.4.2 ग्रसनी की रचना एवं कार्य

7.4.3 स्वर यन्त्र की रचना एवं कार्य

7.4.4 श्वासनली की रचना एवं कार्य

7.4.5 श्वसनी की रचना एवं कार्य

7.4.6 वायु कोष की रचना एवं कार्य

7.4.7 फेफड़े की रचना एवं कार्य

7.5 श्वसन तंत्र की क्रिया विधि

7.6 श्वसन दर

7.7 वायु की धारिता

7.8 सारांश

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों प्रत्येक प्राणी को विभिन्न बाह्य एवं आन्तरिक कार्यों को पूर्ण करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, इस ऊर्जा को प्राणी भोजन से प्राप्त करता है। शरीर के अन्दर भोजन पाचन के उपरान्त पोषक रस के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है, यह पोषक रस रक्त के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर की प्रत्येक कोशिका में भेज दिया जाता है किन्तु जब तक इस भोजन रस का दहन नहीं होता, तब तक इससे ऊर्जा मुक्त नहीं हो पाती, दहन की क्रिया में आक्सीजन का उपयोग होता है एवं कार्बनडाई आक्साइड नामक गैस उत्पन्न होती है। बाह्य वातावरण से आक्सीजन को ग्रहण करना एवं दहन की क्रिया में उत्पन्न कार्बनडाई आक्साइड को बाहर निकालना श्वसन क्रिया कहलाता है। यह श्वसन प्रत्येक प्राणी की एक ऐसी महत्वपूर्ण क्रिया है जिसे वह प्रतिक्षण जीवन पर्यत्न निर्बाध रूप से करता है। श्वसन क्रिया का सामान्य अर्थ श्वास–प्रश्वास से लिया जाता है जो जीवन की

उत्पत्ति के साथ प्रारम्भ होकर जीवन पर्यत्न चलती है एवं इस क्रिया का रूक जाना ही मृत्यु कहलाता है।

मानव शरीर में स्थित वह तंत्र जो बाह्य वातावरण मे स्थित वायु को शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुंचाता है तथा शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं मे स्थित कार्बनडाई आक्साइड को बाहर निकालने का कार्य करता है, श्वसन तंत्र कहलाता है। इस तंत्र की यह क्रिया श्वसन क्रिया कहलाती है।

मनुष्य में जन्म के साथ ही श्वसन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। बाल्यावस्था में विकास की दर तीव्र होने के कारण श्वसन दर तीव्र होती है। उम्र बढ़ने पर जैसे–जैसे विकास दर कम होती है। यह श्वसन दर भी स्थिर हो जाती है। संरचना एवं अध्ययन के दृष्टिकोण से मानव श्वसन तंत्र दो भागों में विभक्त किया जाता है।

1. बाह्य श्वसन तंत्र –

बाह्य श्वसन तंत्र के अन्तर्गत बाह्य वातावरण से वायु लेकर वायु के फेफड़ों तक पहुंचने की संरचना का वर्णन आता है। इसके अन्दर नासिका, ग्रसनी, स्वरयंत्र, श्वासनली, श्वसनी, वायुकोष एवं फेफड़ों की संरचना का वर्णन आता है।

2. अन्तःश्वसन –

अन्तःश्वसन के अन्तर्गत फेफड़ों में गैसों का आदान–प्रदान (गैसीय विनिमय), रक्त द्वारा आक्सीजन का परिवहन, कोशिका में आक्सीजन–कार्बनडाई आक्साइड का विनिमय, रक्त द्वारा कार्बनडाई आक्साइड का परिवहन तथा कार्बनडाई आक्साइड का फेफड़ों में विनिमय की क्रिया का वर्णन आता है। अन्तः श्वसन की समस्त क्रियाएं फेफड़ों से आगे की जाती है।

प्रस्तुत इकाई में हम मनुष्य के बाह्य श्वसन इस तंत्र की संरचना एवं कार्यो का सविस्तार वर्णन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- श्वसन तंत्र की संरचना एवं कार्यों की विवेचना कर सकेंगे।
- श्वसन तंत्र का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- श्वसन तंत्र के प्रमुख अवयवों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- श्वसन क्रिया की क्रिया विधि बता सकेंगे।
- फेफड़ों की संरचना को समझा सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

7.3 श्वसन तंत्र का अर्थ

श्वास–प्रश्वास मनुष्य के जीवन का लक्षण है। मनुष्य भोजन के अभाव में कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है, जल के अभाव में कुछ घंटे बीता सकता है किन्तु श्वास–प्रश्वास अथवा वायु के अभाव में कुछ क्षणों में ही जीवन लीला पर प्रश्न चिह्न स्थापित हो जाता है।शरीर विज्ञान के अनुसार यदि चार मिनट तक शरीर में श्वसन क्रिया नहीं होती तब शरीर की कोशिकाएं आक्सीजन के अभाव में मरने लगती है तथा सबसे पहले इसका प्रभाव मस्तिष्क एवं हृदय पर पड़ता है।

इसका कारण यह है कि श्वास के माध्यम से बाह्य वायुमण्डल की आक्सीजन शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुंचती है तथा इस क्रिया के अभाव में आन्तरिक कोशिकाओं को आक्सीजन प्राप्त नहीं हो पाती तथा आक्सीजन के अभाव में कोशिका मे ऊर्जा उत्पत्ति की क्रिया (ग्लूकोज का आक्सीक्रण) नही हो पाती, परिणामस्वरुप ऊर्जा के अभाव में ये कोशिकाऐं में मरने लगती है।

''शरीर में स्थित वह तंत्र जो वायुमण्डल की आक्सीजन को श्वास (Inspiration) के रूप में ग्रहण कर शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुंचाने का कार्य करता है तथा शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं में स्थित कार्बनडाईआक्साइड को बाह्य वायुमण्डल में छोड़ने (Expiration) का महत्वपूर्ण कार्य करता है, श्वसन तंत्र कहलता है''।

मानव श्वसन तंत्र की संरचना नासिका से प्रारम्भ होकर फेफड़ों एवं डायाफ्राम तक फैली होती है। जो श्वसन की महत्वपूर्ण क्रिया को सम्पादित करने का कार्य करती है। श्वसन उन भौतिक–रासायनिक क्रियाओं का सम्मिलित रूप में होता है जिसके अन्तर्गत बाह्य वायुमण्डल की ऑक्सीजन शरीर के अन्दर कोशिकाओं तक पहुंचती है और भोजन रस (ग्लूकोज) के सम्पर्क में आकर उसके ऑक्सीकरण द्वारा ऊर्जा मुक्त कराती है तथा उत्पन्न CO_2 को शरीर से बाहर निकालती है।

7.4 मनुष्य श्वसन तन्त्र की संरचना

मनुष्य में फेफड़ों द्वारा श्वसन होता है ऐसे श्वसन को फुफ्फुसीय श्वसन (Pulmonary Respiration) कहते हैं। जिस मार्ग से बाहर की वायु फेफड़ों में प्रवेश करती है तथा फेफड़ों से कार्बन–डाई–आक्साइड बाहर निकलती है उसे श्वसन मार्ग कहते हैं।

मनुष्यों में बाहरी वायु तथा फेफड़ों के बीच वायु के आवागमन हेतु कई अंग होते हैं। ये अंग श्वसन अंग कहलाते हैं। ये अंग परस्पर मिलकर श्वसन तंत्र का निर्माण करते हैं। इन अगों का वर्णन इस प्रकार है –

(क) नासिका एवं नासिका गुहा

(ख) ग्रसनी

(ग) स्वर यन्त्र

(घ) श्वास नली

(ड) श्वसनी एवं श्वसनिकाएं

(च) वायुकोष

(छ) फेफड़े

(झ) डायाफ्राम

ये सभी अंग मिलकर श्वसन तंत्र बनाते हैं। इस तंत्र में वायुमार्ग के अवरूद्ध होने पर श्वसन क्रिया रूक जाती है जिसके परिणामस्वरूप कुछ ही मिनटों में दम घुटने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

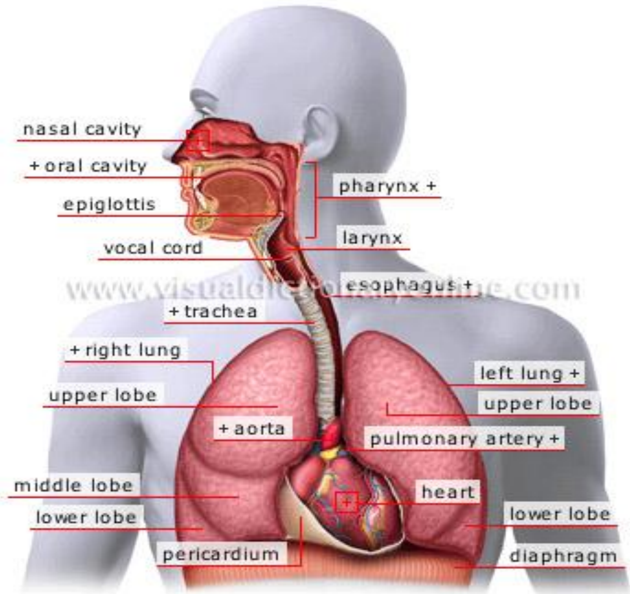

इन अंगों की संरचना और कार्यो का वर्णन इस प्रकार है –

7.4.1 नासिका एवं नासिका गुहा की रचना एवं कार्य (Nose and Respiratory Tract) -

मानव श्वसन तंत्र का प्रारम्भ नासिका से होता है। नासिका के छोर पर एक जोड़ी नासिका छिद्र (External nostrils) स्थित होते हैं। नासिका एक उपास्थिमय (Cartilageous) संरचना है। नासिका के अन्दर का भाग नासिका गुहा कहलाता है। इस नासिका गुहा में तीन वक्रीय पेशियां Superior Nosal Concha, Middle Nosal Concha और Inferior Nosal Concha पायी जाती है। क्रोध एवं उत्तेजनशीलता की अवस्था में ये पेशियां अधिक क्रियाशील होकर तेजी से श्वसन क्रिया में भाग लेती है।

इस नासिका गुहा में संवेदी नाड़िया पायी जाती हैं जो गन्ध का ज्ञान कराती है। इसी स्थान (नासा मार्ग) के अधर और पार्श्व सतहों पर श्लेष्मा ग्रन्थियां (Mucas Glands) होती हैं जिनसे श्लेष्मा की उत्पत्ति होती है। नासिका गुहा के अग्र भाग में रोम केशों का एक जाल पाया जाता है।

नासिका एवं नासिका गुहा के कार्य –

- नासिका गुहा में स्थित टरबाइनल अस्थियां नासामार्ग को चक्करदार बनती है जिससे इसका भीतर क्षेत्रफल काफी अधिक बढ़ जाता है, और अन्दर ली गयी वायु का ताप शरीर के ताप के बराबर आ जाता है।
- यहां पर स्थित श्लेष्मा ग्रन्थियां श्लेष्मा का स्रावण करती हैं यह श्लेष्मा नासिका मार्ग को नम रखती है तथा इससे गुजरकर फेफड़ों में पहुंचने वाली वायु नम हो जाती है।
- यहाँ पर संवेदी नाड़ियों की उपस्थित वायु की स्वच्छता का ज्ञान कराती है।

- यहां पर स्थित रोम केशों का जाल फिल्टर की तरह कार्य करता हुआ हानिकारक रोगाणुओं व धुएं–धूल आदि के कणों को रोक लेता है।

7.4.2 ग्रसनी (Pharynx) की रचना एवं कार्य

नासिका गुहा आगे चलकर मुख में खुलती है। यह स्थान मुखीय गुहा अथवा ग्रसनी कहलाता है। यह कीप की समान आकृति वाली अर्थात आगे से चौड़ी एवं पीछे से पतली रचना होता है। यह तीन भागों में बटी होती है–

(क) नासाग्रसनी (Nossopharynx)

(ख) मुखग्रसनी (Oropharynx)

(ग) स्वरयंत्र ग्रसनी (Larynigospharynx)

(क) नासाग्रसनी (Nossopharynx)

यह नासिका में पीछे और कोमल तालु के आगे वाला भाग है। इसमें नासिका से आकर नासाछिद्र खुलते हैं। इसी भाग में एक जोड़ी श्रावणीय नलिकाएं कर्णगुहा से आकर खुलती हैं, इन नलिकाओं का सम्बन्ध कानों से होता है।

(ख) मुखग्रसनी (Oropharynx)

यह कोमल तालू के नीचे का भाग है जो कंठच्छद तक होता है, यह भाग श्वास के साथ साथ भोजन के संवहन का कार्य भी करता है, अथार्त इस भाग से श्वास एवं भोजन दोनों गुजरते हैं।

(ग) स्वर यन्त्र ग्रसनी (Larynigopharynx)

यह कंठच्छद के पीछे वाला ग्रासनली से जुड़ा हुआ भाग है। इसमें दो छिद्र होते हैं पहला छिद्र भोजन नली का द्वार और दूसरा छिद्र श्वास नली का द्वार होता है। अर्थात यहां से आगे एक ओर भोजन तथा दूसरी ओर श्वास का मार्ग होता है।

ग्रसनी के कार्य –

ग्रसनी श्वसन तंत्र का प्रमुख अंग है। यह अंग वायु एवं भोजन के संवहन का कार्य करता है। श्वास के रुप में ली वायु इसी ग्रसनी से होकर श्वास नली में पहुंचती है।

7.4.3 स्वर यंत्र की रचना एवं कार्य (Larynx)

ग्रसनी के आगे का भाग स्वर यन्त्र (Larynx) कहलाता है। स्वर यन्त्र ऊपर मुख ग्रसनी से एवं नीचे की ओर श्वासनली से जुडा होता है। इसी स्थान पर थायराइड एवं पैराथायराइड नामक अन्तःस्रावी ग्रन्थियां उपस्थित होती हैं। यह गले का उभरा हुआ स्थान होता है अन्दर इसी स्थान में संयोजी उतक से निर्मित वाक रज्जु या स्वर रज्जू (Vocal Cords) पाये जाते हैं।

स्वर यन्त्र के कार्य

स्वर–यन्त्र ऐसा श्वसन अंग है जो वायु का संवहन करने के साथ साथ स्वर (वाणी) को उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। प्रिय पाठकों में वास्तव में स्वर की उत्पत्ति वायु के द्वारा ही होती है। श्वास के द्वारा ली गई वायु से यहां उपस्थित स्वर रज्जुओं में कम्पन्न उत्पन्न होते हैं और ध्वनि उत्पन्न होती है। इसी अंग की सहायता से हम विभिन्न प्रकार की आवाजें उत्पन्न करते हैं तथा बोलते हैं।

स्वर रज्जुओं की तानता तथा उनके मध्य अवकाश पर ध्वनि का स्वरूप निर्भर करता है अर्थात इसी कारण आवाज में मधुरता, कोमलता, कठोरता एवं कर्कशता आदि गुण

प्रकट होते हैं। उच्च स्तरीय स्वरवादक (गायक) अभ्यास के द्वारा इन्हीं स्वर रज्जुओं पर नियंत्रण स्थापित कर अपने स्वर को मधुरता प्रदान करते हैं।

7.4.4 श्वास नली की रचना एवं कार्य (Trachea)

यह स्वर यन्त्र से आरम्भ होकर फेफड़ों तक पहुंचने वाली नली होती है। यह लगभग 10 से 12 सेमी. लम्बी और गर्दन की पूरी लम्बी में स्थित होती है। इसका कुछ भाग वक्ष गुहा में स्थित होता है।

इस श्वासनली (Trachea) का निर्माण 16–20 अग्रेंजी भाषा के अक्षर 'C' के आकार की उपस्थियों के अपूर्ण छल्लों से होता है।इस श्वास नली की आन्तरिक सतह पर श्लेष्मा को उत्पन्न करने वाली श्लेष्मा ग्रन्थिया (Goblet cell) पायी जाती हैं। आगे चलकर यह श्वासनली क्रमशः दाहिनी और बायीं ओर दो भागों में बट जाती है, जिन्हें श्वसनी कहा जाता है।

श्वास नली के कार्य –

इस श्वास नली के माध्यम से श्वास फेफड़ों तक पहुंचता है। इस श्वास नली में उपस्थित गोबलेट सैल्स (goblet cell) श्लेष्मा का स्त्राव करती रहती है, यह श्लेष्मा श्वास नलिका को नम एवं चिकनी बनाने के साथ साथ अन्दर ग्रहण की गई वायु को भी नम बनाने का कार्य करती है, इसके साथ–साथ श्वास के साथ खींचकर आये हुए धूल के कण एवं सूक्ष्म जीवाणुओं भी श्वास इस श्लेष्मा में चिपक जाते हैं तथा अन्दर फेफड़ों में पहुचकर हानि नही पहुंचा पाते हैं।

7.4.5 श्वसनी एवं श्वसनिकाओं की रचना एवं कार्य (Bronchi and Bronchioles)

श्वासनली वक्ष गुहा में जाकर दो भागों में बंट जाती है। इन शाखाओं को श्वसनी (Bronchi) कहते हैं। श्वासनली मेरुदण्ड के पांचवे थरेसिक ब्रटिबरा (5^{th} thorasic vertebra) के स्तर पर दायें और बांये ओर दो भागों में विभाजित हो जाती है।

प्रत्येक श्वसनी अपनी ओर के फेफड़े में प्रवेश करके अनेक शाखाओं में बंट जाती है। इन शाखाओं को श्वसनिकाएं (bronchioles) कहते हैं। इन पर अधूरे उपास्थीय छल्ले होते हैं। इस प्रकार श्वसनी आगे चलकर विभिन्न छोटी–छोटी रचनाओं में बटती चली जाती है तथा इसकी सबसे छोटी रचना वायुकोष (Alveoli) कहलाती है।

कार्य – श्वासनली के द्वारा आया श्वास (वायु) श्वसनी एवं श्वसनिकाओं के माध्यम से फेफड़ों में प्रवेश करता है।

7.4.6 वायुकोष (Alveoli) -

आगे चलकर प्रत्येक श्वसनी 2 से 11 तक शाखाओं में बट जाती है। श्वसनी पुनः शाखाओं एवं उपशाखाओं में विभाजित होती है। श्वसनी की ये शाखाएं वायु कोषीय नलिकाएं (Alveolar ducts) कहलाती हैं। इन नलिकाओं का अन्तिम सिरा फूलकर थैली के समान रचना बनाता है। यह रचना अति सूक्ष्म वायु कोष (air sacs) कहा जाता है। इस प्रकार यहाँ पर अंगूर के गुच्छे के समान रचना बन जाती है।

ये रचना एक कोशीय दीवार की बनी होती है तथा यहां पर रूधिर वाहिनियों (Blood capillaries) का घना जाल पाया जाता है।

वायुकोषों के कार्य

ये वायुकोष एक कोशीय दीवारों के बने होते हैं तथा यहाँ पर रूधिर वाहिनियों का जाल पाया जाता है। इन वायुकोषों का कार्य आक्सीजन एवं कार्बनडाई आक्साइड का विनिमय करना होता है अर्थात गैसों के आदान–प्रदान की महत्वपूर्ण क्रिया का सम्पादन इसी स्थान पर होता है।

7.4.7 फेफड़ों की रचना एवं कार्य (Lungs)

मनुष्य में वक्षीय गुहा (Thorasic Cavity) में एक जोड़ी (संख्या में दो) फेफड़ों पाये जाते हैं। ये गुलाबी रंग के कोमल कोणाकार तथा स्पंजी अंग है। फेफड़े अत्यन्त कोमल व महत्वपूर्ण अंग हैं इसीलिए इनकी सुरक्षा के लिए इनके चारों ओर पसलियों का मजबूत आवरण पाया जाता है।

प्रत्येक फेफड़े के चारों ओर एक पतला आवरण पाया जाता है जिसे फुफ्फुसावरण (Pleura) कहा जाता है। यह दोहरी झिल्ली का बना होता है तथा इसमें गाढ़ा चिपचिपा द्रव फुफ्फस द्रव (Pleural fluid) भरा होता है। इस द्रव के कारण फेफड़ों के क्रियाशील होने पर भी फेफड़ों में रगड़ उत्पन्न नहीं होती है।

इन फेफड़ों में बांये फेफड़े की तुलना में दाहिना फेफड़ा अपेक्षाकृत बड़ा तथा अधिक फैला हुआ होता है। इसका कारण बांयी ओर हृदय की उपस्थिति होता है। फेफड़ों का निचला भाग डायाफ्राम नामक पेशीय रचना के साथ जुड़ा होता है। दाहिना फेफड़ा तीन पिण्डों (lobe) में तथा बांया फेफड़ा दो पिण्डों (lobe) में बटा होता है।

फेफड़ों के कार्य– मनुष्य के फेफड़ों में वायुकोषों का घना जाल होता है। इस प्रकार ये वायुकोष फेफड़ों में मधुमक्खी के छत्ते के समान रचना का निर्माण करते हैं। फेफड़ों का हृदय के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। हृदय से कार्बन डाई आक्साइड युक्त रक्त लेकर रक्त वाहिनी(पलमोनरी आॅटरी) फेफड़ो में आकर अनेकों शाखाओं में बट जाती है। इस प्रकार बाह्य वायु मण्डल की आक्सीजन एवं शरीर के अन्दर कोशिकाओं से रक्त द्वारा लायी गयी कार्बनडाई आक्साइड गैस मे विनिमय (आदान–प्रदान) का कार्य इन फेफड़ों में ही सम्पन्न होता है।

7.4.8 डायाफ्राम की रचना एवं कार्य (Diaphragm)

डायाफ्राम लचीली मांसपेशियों से निर्मित श्वसन अंग है। श्वसन मांसपेशियों में यह सबसे शक्तिशाली मांसपेशी होती है, जिसका सम्बन्ध दोनों फेफड़ों के साथ होता है। यह डायाफ्राम दोनों फेफड़ों को नीचे की ओर साधकर (Tone) रखता है।

डायाफ्राम के कार्य– यह डायाफ्राम वक्ष एवं उदर को विभजित करने का कार्य करता है। फेफड़ों का इस डायाफ्राम के साथ जुड़ने के कारण जब फेफड़ों में श्वाास भरता हैं तब इसका प्रभाव उदर (पेट) पर पड़ता है तथा डायाफ्राम का दबाव नाचे की ओर होने के कारण उदर का विस्तार होता है जबकि इसके विपरित फेफड़ों से श्वास बाहर निकलने पर जब फेफड़ें संकुचित होते हैं तब डायाफ्राम का खिचाव ऊपर की ओर होने के कारण उदर का संकुचन होता है। इस प्रकार श्वसन क्रिया का प्रभाव उदर प्रदेश पर पडता है।

7.5 श्वसन तंत्र की क्रियाविधि

जिस समय नासिका से श्वास लिया जाता है उस समय बाह्य वातावरण से वायु नासिका एवं नासिका गुहा में प्रवेश करती है। नासिका में गुहा में उपस्थित सूक्ष्म रोम केशों का

जाल धूल एवं धुंए के कणों को छान देता है। यहां पर उपस्थित संवेदी नाड़ियां वायु की गन्ध का ज्ञान मस्तिष्क को करती है। यहां से आगे यह वायु ग्रसनी में पहुंच जाती है। ग्रसनी में उपस्थित कण्ठच्छद (Epiglottis) अन्न नलिका के द्वार को बन्द कर देता है जिससे यह वायु स्वर यन्त्र से होती हुई श्वास नलिका में चली जाती है। श्वास नलिका में रोमिकाएं पायी जाती है तथा यहां पर श्लेष्मा ग्रन्थियां श्लेष्मा का स्रावण करती रहती है। इसके परिणामस्वरूप वायु के साथ आए धूल, धुंए, सूक्ष्म जीव आदि इस नलिका में चिपक जाते हैं।

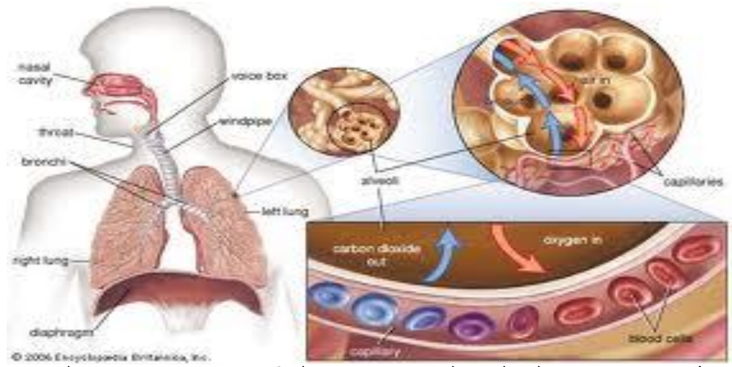

श्वास नलिका से वायु क्रमशः दाहिने एवं बाएं फेफड़ों में भर जाती है। श्वास नलिका से श्वसनी एवं श्वसनी से श्वसनिकाओं में होती हुई यह वायु आगे चलकर वायु कोषों में भर जाती है। वायु भरने के कारण ये वायुकोष फूल जाते हैं। ये वायुकोष एककोशीय दीवारों के बने होते हैं तथा इन वायुकोषों के मध्य रक्तवाहिनीयों का घना जाल उपस्थित होता है। इन रक्तवाहिनीयों में हृदय से आया कार्बन डाई आक्साइड की अधिकता युक्त अशुद्ध रक्त भरा होता है। इस प्रकार यहां वायुकोषों एवं रक्त वाहिनीयों के मध्य गैसों का आदान प्रदान होता है।

गैसों के आदान–प्रदान के परिणामस्वरूप बाह्य वायु मण्डल की आक्सीजन रक्तवाहिनीयों में चली जाती है एवं रक्त वाहिनीयों में उपस्थित कार्बन डाई आक्साइड वायु कोषों में भर जाती है। तत्पश्चात वुायकोषों से कार्बनडाई आक्साइड श्वसनिकाओं में, श्वसनिकाओं से श्वसनी में, श्वसनी से श्वासनलिका में, श्वासनलिका से स्वर यन्त्र, ग्रसनी से होती हुई नासिका के माध्यम से बाह्य वायुमण्डल में भेज दी जाती है, श्वसन की यह क्रिया निःश्वसन कहलाती है।

7.6 श्वसन दर–

एक मिनट में एक मनुष्य जितनी संख्या में श्वास–प्रश्वास की क्रिया करता है, श्वसन दर कहलाती है। बाल्यावस्था के प्रथम पांच वर्षो में शरीर का विकास तेज होने के कारण श्वसन दर त्रीव जो आगे चलकर (व्यस्क अवस्था) 16–18 श्वास प्रति मिनट स्थिर हो जाती है। एक नवजात शिशु की श्वसन दर प्रति मिनट 40 होती है, यह श्वसन दर उम्र बढने के साथ कम होती हुई 16–18 श्वास प्रति मिनट पर स्थिर हो जाती है। स्त्रियों में पुरूषों की तुलना में श्वसन दर कुछ अधिक होती है। इस श्वसन दर पर कार्य, परिस्थिति, स्थान आदि कारक सीधा प्रभाव रखते हैं। स्वच्छ वातावरण एवं शान्त अवस्था में श्वसन दर कम हो जाती है जबकि इसके विपरित प्रदूषित वातावरण, क्रोध एवं चिड़चिड़ाहट की स्थिति में श्वसन दर बढ़ जाती है।

प्रिय पाठकों मनुष्यों में श्वसन क्रिया स्वचलित रुप में चलती रहती है। इस क्रिया पर कुछ काल तक ऐच्छिक नियंत्रण सम्भव होता है, किन्तु शरीर की कोशिकाओं में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढने पर श्वास लेने के लिये बाèय होना पडता है। मनुष्य में श्वसन क्रिया का नियन्त्रण मस्तिष्क में स्थित मेड्यूला नामक स्थान से होता है। शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में यह केन्द्र श्वसन दर को कम एवं अधिक बनाता हैं। शरीर के अधिक क्रियाशील होने पर श्वसन दर बढ जाती है जबकि शरीर द्वारा कार्य नही करने की दशा में श्वसन दर कम हो जाती है। कठिन श्रम की अवस्था में भी श्वसन दर बढ़ जाती है।

बाह्य जीवाणु अथवा रोगाणु से संक्रमण की अवस्था में जब शरीर का तापक्रम बढ जाता है तब ऐसी अवस्था में श्वसन दर बढ जाती है। पहाड़ों में ऊँचे स्थानों पर जाने पर अथवा आक्सीजन की कमी वाले स्थानों पर जाने पर श्वसन दर बढ जाती है। क्रोध, भय एवं मानसिक तनाव आदि विपरित अवस्थओं में श्वसन दर त्रीव हो जाती है। इसके विपरित सहज एवं सकारात्मक परिस्थितियों में श्वसन दर कम एवं श्वास की गहराई बढ जाती है।

श्वसन दर त्रीव होने पर फेफड़े तेजी से कार्य करते हैं किन्तु इस अवस्था में फेफड़ों का कम भाग ही सक्रिय हो पाता है, जबकि लम्बी एवं गहरी श्वसन क्रिया में फेफडों का अधिकतम भाग सक्रिय होता है जिससे फेफड़ें स्वस्थ बनते हैं।

7.7 वायु की धारिता –

एक मनुष्य द्वारा प्रत्येक श्वास में जिस मात्रा में वायु ग्रहण की जाती है तथा प्रश्वास में जिस मात्रा में वायु छोड़ी जाती है इस मात्रा की नाप वायु धारिता कहलाती है। इसे नापने के लिए स्पाइरोमीटर (Spirometer) नामक यंत्र का प्रयोग किया जाता है। मनुष्य की वायु धारिता के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का वर्णन इस प्रकार है–

1. प्राण वायु (Tidal volume) –

वायु की वह मात्रा जो सामान्य श्वास में ली जाती है तथा सामान्य प्रश्वास में छोड़ी जाती है प्राण वायु कहलाती है। यह मात्रा 500ml होती है। यह मात्रा स्त्री और पुरुष दोनों में समान होती है

2. प्रश्वसित आरक्षित आयतन (Inspiratory Reserve Volume) –

सामान्य श्वास लेने के उपरान्त भी वायु की वह मात्रा जो अतिरिक्त रूप से ग्रहण की जा सकती है। प्रश्वसित आरक्षित आयतन कहलाती है। वायु की यह मात्रा 3300 ml होती है।

3. निश्वसित आरक्षित आयतन (Expiratory Reserve Volume) –

सामान्य प्रश्वास छोड़ने के उपरान्त भी वायु की वह मात्रा जो अतिरिक्त रूप से बाहर छोड़ी जा सकती है, निश्वसित आरक्षित आयतन कहलाती है। वायु की यह मात्रा 1000 ml होती है।

4. अवशिष्ट आयतन (Residual Volume) –

हम फेफड़ों को पूर्ण रूप से वायु से रिक्त नहीं कर सकते अपितु गहरे प्रश्वास के उपरान्त भी वायु की कुछ मात्रा फेफड़ों में शेष रह जाती है, वायु की यह मात्रा अवशिष्ट आयतन कहलाती है। वायु की इस मात्रा का आयतन 1200 ml होता है।

5. फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता (Vital Capcity) –

गहरे श्वास में ली गयी वायु तथा गहरे प्रश्वास में छोड़ी गयी वायु का आयतन फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता कहलाती है। वायु की यह मात्रा 4800 ml होती है।

6. फेफड़ों की कुल वायु धारिता (Total lung capacity) –

फेफड़ों द्वारा अधिकतम वायु ग्रहण करने की क्षमता फेफड़ों की कुल वायु धारिता कहलाती है। वायु की यह मात्रा 6000 ml होती है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य असत्य**

(क) बाल्यावस्था में विकास की दर तीव्र होने के कारण श्वसन दर धीमी होती है।

(ख) स्वर यन्त्र के आगे का भाग ग्रसनी कहलाता है।

(ग) स्वर रज्जुओं की तानता तथा उनके मध्य अवकाश पर ध्वनि का स्वरूप निर्भर करता है

(घ) मनुष्य में श्वसन क्रिया का नियन्त्रण मस्तिष्क में स्थित मेड्यूला नामक स्थान से होता है।

(ड) स्त्रियों की प्राण वायु पुरुषों से अधिक होती है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) भोजन रस (ग्लूकोज) को दहन की क्रिया में ……… गैस का उपयोग होता है।

(ख) श्वासनली वक्ष गुहा में जाकर ……… भागों में बट जाती है।

(ग) वायु कोष ……… दीवारों के बने होते है।

(घ) पहाड़ों में ऊँचे स्थानों पर जाने पर अथवा आक्सीजन की कमी वाले स्थानों पर जाने पर श्वसन दर ………जाती है।

(ड) बायें फेफड़े की तुलना में दाहिना फेफड़ा अधिक ……… हुआ होता है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) मनुष्य श्वसन क्रिया करता है–

(a) प्रतिदिन (b) प्रति घंटे

(c) प्रति मिनट (d) प्रतिक्षण

(ख) मनुष्य में फेफड़ों की कुल वायु धारिता होती है–

(a) 2000 ml (b) 5000 ml

(c) 6000 ml (d) इनमें से कोई नहीं

(ग) मनुष्य में कितने फेफड़े पाये जाते हैं–

(a) एक (b) दो

(c) आठ (d) असंख्य

(घ) फेफड़ों का निचला भाग किस रचना से जुड़ा होता है।

(a) यकृत (b) आंत

(c) डायाफ्राम (d) श्वसनी

(ड) एक स्वस्थ व्यस्क मनुष्य में श्वसन दर होती है–

(a) 16–18 प्रति मिनट (b) 10–20 प्रति मिनट

(c) 6–8 प्रति मिनट (d) 70–72 प्रति मिनट

7.8 सारांश

श्वसन तंत्र मानव शरीर की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है यह तंत्र प्रतिक्षण क्रियाशील रहता हुआ बाह्य वायु मण्डल से वायु (आक्सीजन) को शरीर फेफड़ों तक पहुँचाता है तथा फेफड़ों में स्थित कार्बन डाईआक्साइड को बाह्य वातावरण में छोड़ने का कार्य करता रहता है।

इस तंत्र का प्रारम्भ नासिका से होता है तत्पश्चात नासिका गुहा, ग्रसनी, स्वर यन्त्र, श्वासनली, श्वसनी एवं फेफड़ों की रचना आती है। इन सभी अंगों से होता हुआ श्वास फेफड़ों में भर जाता है तथा फेफड़ों में उपस्थित रक्त वाहिनियों के मध्य गैसों का आदान प्रदान होता है। इसके उपरान्त रक्त वाहिनीयों में उपस्थित रक्त को आक्सीजन प्रदान कर दी जाती है तथा रक्त से कार्बन डाई आक्साइड ग्रहण कर ली जाती है। इस कार्बन डाई आक्साइड को इन्हीं अंगों की सहायता से बाह्य वायु मण्डल में प्रश्वास के रूप में छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार श्वसन तंत्र क्रियाशील बना रहता है।

7.9 पारिभाषिक शब्दावली–

सम्पादित करना	पूर्ण करना
विघटन	टूटना
आवागमन	आना–जाना
अवरूद्ध	रूक जाना
पार्श्व	बगल

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. असत्य	क. आक्सीजन	क. d
ख. असत्य	ख. दो	ख. c
ग. सत्य	ग. बहुकोशीय	ग. b
घ. सत्य	घ. बढ	घ.c
ड. असत्य	ड. बडा एवं फैला	ड. a

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
3 मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन – मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

4. Essentials of Medical Physialogy – K. Sembulingam & Prema Sembulingam , Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

5. Textbook of Physialogy (Vol.1) - Prof. A.K. Jain, Avichal Publising Company, Sirmour (H.P.)

6.The Fundamentals of Human Physialogy (Vol.1) - Dr. G.C. Agarwala, Accupressure Research Centre, Allahabad.

7.12 निबंधात्मक प्रश्न–

1. श्वसन तंत्र की संरचना सचित्र समझाइये।
2. श्वसन क्रिया को सविस्तार समझाइये।
3. श्वसन तंत्र पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 8– आन्तरिक श्वसन तंत्र – संरचना एवं कार्य

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 आन्तरिक श्वसन के प्रकार
8.4 गैसों का विनिमय
8.5 प्रश्वसित एवं निश्वसित वायु की संरचना
8.6 श्वसन का नियंत्रण
8.7 आन्तरिक श्वसन का हृदय से सम्बन्ध
8.8 श्वसन क्रिया को प्रभावित करने वाले कारक
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों पूर्व की इकाई में आपने बाह्य श्वसन तंत्र की संरचना एवं कार्यो का ज्ञान प्राप्त किया। आपने जाना कि बाह्य श्वसन तंत्र के माध्यम से बाह्य वायुमण्डल से वायु (आक्सीजन) फेफड़ों की वायुकोषों में भर जाती है। यहां पर गैसों के आदान–प्रदान की क्रिया होती है। यही से आन्तरिक श्वसन तंत्र की संरचना का प्रारम्भ होता है। आन्तरिक श्वसन तंत्र को ऊतकीय श्वसन के नाम से भी जाना जाता है। यह श्वसन क्रिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है क्योंकि यहां से यह वायु रक्त के साथ मिल जाती है तथा रक्त के साथ परिभ्रमण करती हुई सम्पूर्ण शरीर की कोशिकाओं में फैल जाती है।

वास्तव में श्वसन हमारे शरीर की अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है। शरीर में जब तक यह क्रिया चलती रहती है तब तक जीवन रहता है तथा इस क्रिया का रूक जाना मृत्यु की ओर संकेत करता है। श्वसन की इस क्रिया का सम्बन्ध फेफड़ों, हृदय एवं मस्तिष्क जैसे महत्वपूर्ण अंगों के साथ होता है। बाह्य श्वसन के माध्यम से बाह्य वायुमण्डल से वायु शरीर में प्रवेश करती है जबकि आन्तरिक श्वसन के द्वारा इस वायु को सम्पूर्ण शरीर में वितरित किया जाता है। वितरण के उपरान्त यह वायु भोजन रस (ग्लूकोज) के दहन की क्रिया में उपभोग में ले ली जाती है तथा दहन (आक्सीकरण) की क्रिया में कार्बनडाई आक्साइड गैस की उत्पत्ति होती है इस कार्बनडाईआक्साइड गैस को कोशिकाओं एवं ऊतकों से रक्त के माध्यम पुनः फेफड़ों में लाया जाता है। फेफड़ों से आक्सीजन कोशिकाओं तक पहुंचाना एवं कोशिकाओं में स्थित कार्बनडाईआक्साइड गैस को फेफंड़ों में वापस लाने की क्रिया आन्तरिक श्वसन कहलाती है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आन्तरिक श्वसन की संरचना प्रकार एवं क्रियाविधि को समझ सकेंगे।
- श्वसन के नियंत्रण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- फेफडों में गैसों के विनिमय की क्रिया का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- प्रश्वसित वायु एवं निश्वसित वायु का विश्लेषण करने में सक्षम हो सकेंगे।
- श्वसन को नियंत्रित एवं प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

8.3 आन्तरिक श्वसन के प्रकार

आन्तरिक श्वसन का अर्थ भोजन से उत्पन्न रस (ग्लूकोज) के दहन एवं दहन की क्रिया में उत्पन्न ऊर्जा से होता है। आन्तरिक श्वसन के फलस्वरुप शरीर के अन्दर स्थित कोशिकाएं ऊर्जा प्राप्त करती हैं। इस क्रिया में भोजन से प्राप्त ग्लूकोज का दहन होता है। आन्तरिक श्वसन की इस क्रिया में ग्लूकोज का दहन दो प्रकार से होता है –

(क) आक्सी श्वसन (Aerobic Respiration)

जब कोशिका में आक्सीजन उपस्थित होती है तब आक्सीजन की उपस्थिति में ग्लूकोज का पूर्ण रूप से आक्सीकरण होता है तथा इस क्रिया में जल के साथ–साथ अधिकतम ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। ग्लूकोज के एक अणु के आक्सी श्वसन के परिणामस्वरूप 38 ए.टी.पी. की उत्पत्ति होती है। मनुष्य की अधिकांश कोशिकाओं में आक्सी श्वसन की क्रिया के परिणामस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है।

$$C_6H_{12}O_6 + 6\,O_2 \rightarrow 6\,CO_2 + 6\,H_2O + 38\,ATP$$

ग्लूकोज आक्सीजन का. डाई आक्साइड जल ऊर्जा

(ख) अनाक्सी श्वसन (Anarobic Respiration)

जब कोशिका में आक्सीजन की उपस्थिति नहीं होती किन्तु शरीर को तुरन्त ऊर्जा की अत्यधिक आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में कोशिका ग्लूकोज का दहन आक्सीजन की अनुपस्थिति में ही कर देती है। यह क्रिया अनाक्सी श्वसन कहलाती है। इस क्रिया में ग्लूकोज का आंशिक विघटन होता है तथा ग्लूकोज के एक अणु के दहन के परिणामस्वरूप बहुत कम ऊर्जा (2 ए.टी.पी.) की ही उत्पत्ति होती है। मनुष्य शरीर में अनाक्सी श्वसन कठिन श्रम की अवस्था, तेज भागने, कठिन व्यायाम की अवस्था में होता है।

$$C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2C_2H_5COCOOH + ATP$$

ग्लूकोज लैक्टिक अम्ल ऊर्जा

इस प्रकार अनाक्सी श्वसन के परिणामस्वरूप लैक्टिक एसिड की उत्पत्ति होती है इस लैक्टिक एसिड की अधिकता पेशियों में थकावट उत्पन्न करती है।

8.4 गैसों का विनियम

आन्तरिक श्वसन का प्रारम्भ फेफड़ों में गैसें के विनिमय से होता है।

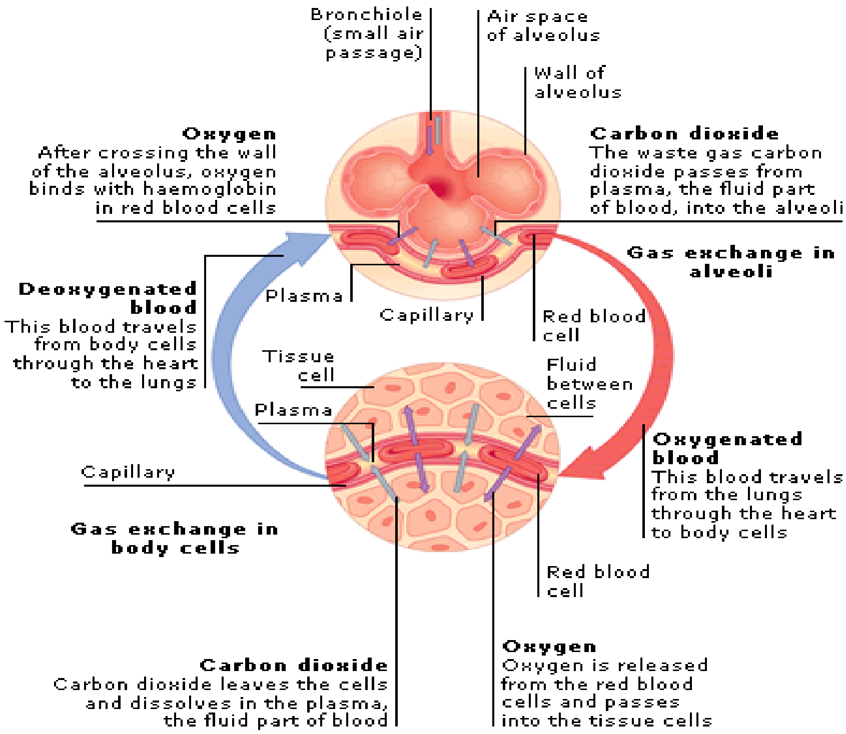

फेफड़ों के वायुकोष एककोशिय दीवारों के बने होते हैं तथा यहीं पर एक कोशिय दीवारों की घनी रक्त वाहिनीयों का जाल होता है। इन रक्त वाहिनीयों एवं वायुकोषों के मध्य गैसों के आदान–प्रदान की क्रिया होती है तथा यहाँ से आक्सीजन रक्त में स्थित लौह युक्त रंजक पदार्थ हिमोग्लोबिन के साथ जुड़कर आक्सी हिमोग्लोबिन नामक अस्थाई यौगिक का निर्माण करती है। यह यौगिक रक्त के माध्यम से शरीर की विभिन्न कोशिकाओं में पहुंचकर आक्सीजन को मुक्त कर देता है। इस मुक्त आक्सीजन का उपभोग कोशिका आक्सीश्वसन में करती है। आक्सीश्वसन के परिणामस्वरूप कार्बनडाई आक्साइड गैस की उत्पत्ति होती है। यहाँ हिमोग्लोबिन पुनः कार्बनडाईआक्साइड के साथ मिलकर अस्थाई यौगिक कार्बोक्सी हिमोग्लोबिन का निर्माण करता है। कार्बोक्सी हिमोग्लोबिन रक्त के साथ हृदय एवं फेफड़ों तक पहुंचता है। फेफड़ों में हिमोग्लोबिन कार्बनडाईआक्साइड को मुक्त कर देता है तथा यह कार्बनडाईआक्साइड प्रश्वास के रूप में बाह्य श्वसन तंत्र की सहायता से बाहर निकाल दी जाती है। इस क्रियाविधि को निम्न समीकरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है –

फेफड़ों में हिमोग्लोबिन का आक्सीजन के साथ जुड़ना

$$Hb + O_2 \rightarrow HbO_2$$

हिमोग्लोबिन + आक्सीजन → आक्सी हिमोग्लोबिन

कोशिका में हिमोग्लोबिन द्वारा आक्सीजन मुक्त करना

$$HbO_2 \rightarrow Hb + O_2$$

आक्सी हिमोग्लोबिन → हिमोग्लोबिन + आक्सीजन

कोशिका में हिमोग्लोबिन का कार्बनडाई आक्साइड के साथ जुड़ना

$Hb + CO_2 \rightarrow HbCO_2$

हिमोग्लोबिन + का0डा0आक्स0 → कार्बोक्सीहिमोग्लोबिन

फेफड़ों में हिमोग्लोबिन द्वारा कार्बन डाई आक्साइड मुक्त करना

$HbCO_2 \rightarrow Hb + CO_2$

कार्बोक्सीहिमोग्लोबिन → हिमोग्लोबिन + का0डा0आक्स0

प्रिय पाठकों आन्तरिक श्वसन की क्रिया में हिमोग्लोबिन अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करता है। हिमोग्लोबिन रक्त में उपस्थित एक ऐसा यौगिक होता है जो आक्सीजन को फेफडों से लेकर शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुँचाने का कार्य करता है, इयी प्रकार यह हिमोग्लोबिन आन्तरिक कोशिकाओं में स्थित कार्बन डाई गैस को फेफड़ों तक पहुँचाने का कार्य करता है। एक स्वस्थ मनुष्य के प्रति 100 एम.एल. रक्त में 12 से 16 मिली ग्राम हिमोग्लोबिन पाया जाता है। सुखी, सम्पन्न, प्रसन्नचित्त व्यक्तियों का रक्त प्राय हिमोग्लोबिन से परिपूर्ण पाया जाता है, ऐसे व्यक्तियों की कार्यक्षमता अधिक एवं इनके चेहरे पर तेज पाया जाता है। इसके विपरित जो दुखी, निराश, हताश, समस्याओं से घिरे हुए एवं हीनता से ग्रस्त रहते हैं उनके रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा कम हो जाती है ऐसे व्यक्तियों की कार्यक्षमता कम हो जाती है। रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा कम होने पर आक्सीजन तथा कार्बनडाईआक्साइड गैसों का परिवहन भलीभाँति नहीं हो पाता जिससे कोशिकाओं में आन्तरिक श्वसन की क्रिया बाधित होती है तथा कोशिकाओं में ऊर्जा उत्पत्ति की क्रिया धीमी पड जाती है। ऊर्जा उत्पत्ति की क्रिया धीमी पडने से उस व्यक्ति की कार्यक्षमता कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में भोजन में लौहयुक्त पदार्थो जैसे पालक, सेब, गाजर, चुकुन्दर आदि का अधिक सेवन करने से रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा बढ जाती है तथा व्यक्ति की कार्यक्षमता बढ़ जाती है।

8.5 प्रश्वसित एवं निश्वसित वायु की संरचना–

प्रिय विद्यार्थियों श्वसन के रूप में अन्दर ग्रहण की गयी वायु प्रश्वसित वायु कहलाती है। इस वायु में सबसे अधिक नाइट्रोजन गैसे की मात्रा होती है इसके बाद आक्सीजन गैस होती है तथा इसमें अल्प मात्रा में कार्बनडाइ आक्साइड की मात्रा भी रहती है। प्रश्वसित वायु की संरचना इस प्रकार है–

1. नाइट्रोजन 78 प्रतिशत
2. आक्सीजन 21 प्रतिशत
3. कार्बनडाईआक्साइड 0.03 प्रतिशत
4. अन्य गैसें 0.93 प्रतिशत

फेफड़ों में गैसों के विनिमय की क्रिया में ऑक्सीजन एवं कार्बनडाई आक्साइड का आदान–प्रदान होता है तथा वहां उपस्थित कार्बन डाई आक्साइड को प्रश्वास के रूप में बाहर निकाला जाता है। इस निश्वसित वायु की संरचना इस प्रकार है–

1. नाइट्रोजन 78 प्रतिशत
2. ऑक्सीजन 16 प्रतिशत
3. कार्बनडाई आक्साइड 4.5 प्रतिशत
4. अन्य गैसें 1.5 प्रतिशत

इस प्रकार अन्दर ग्रहण की गयी वायु में आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है जबकि बाहर निकाली वायु में आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है एवं कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ जाती है।

8.6 श्वसन का नियंत्रण–

श्वसन क्रिया अनैच्छिक रूप से प्रतिक्षण स्वतः ही होती रहती है। इस क्रिया का नियन्त्रण केन्द्र मस्तिष्क में स्थित होता है। इस क्रिया पर हमारी इच्छा का कुछ नियंन्त्रण अवश्य पाया जाता है किन्तु यह पूर्ण रूप से हमारी इच्छा के अधीन कार्य नहीं करती है। इस क्रिया के नियन्त्रण को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

क. तंत्रिका नियन्त्रण
ख. रासायनिक नियन्त्रण

क. तंन्त्रिका नियन्त्रण–

मस्तिष्क में स्थित सेरिबरल कोर्टेक्स इच्छित रूप से श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करने का कार्य करता है जबकि मस्तिष्क के मैडूयला नामक स्थान को श्वसन केन्द्र माना गया है। इस केन्द्र से स्वतः ही श्वसन क्रिया नियन्त्रित होती रहती है तथा आवश्यकतानुसार श्वसन दर बढ़ाई एवं घटाई जाती है।

चूंकि मस्तिष्क शरीर की समस्त क्रियाओं का नियंत्रण, नियामन एवं समन्वयन करता है। इसी समन्वयन क्रिया के अन्तर्गत मस्तिष्क श्वसन दर को घटाता एवं बढ़ाता रहता है। जब शरीर में अधिक ऊर्जा का प्रयोग होता है तब श्वसन दर अधिक हो जाती है एवं जब शरीर में कम ऊर्जा का प्रयोग होता है उस अवस्था में श्वसन दर कम हो जोती है, इसका नियंत्रण मस्तिष्क से होता है।

ख. रासायनिक नियन्त्रण–

रक्त में कुछ रासायनिक पदार्थो की मात्रा बढ़ने पर स्वतः ही श्वसन दर को बढ़ा देती है। शरीर में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ (हार्मोन्स) का स्रावण होने पर श्वसन दर बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए अधिवृक्क ग्रन्थियों से एड्रीनलीन नामक हार्मोन के स्रावण होने पर श्वसन दर बहुत तीव्रता से बढ़ती है जबकि पिनीयल ग्रन्थि से मेलाटानिन नामक हार्मोन के स्रावण होने पर श्वसन दर स्वतः ही कम हो जाती है। रक्त में आक्सीजन की सान्द्रता कम होने पर एवं कार्बन डाई आक्साइड की सान्द्रता बढ़ने पर श्वसन दर बढ़ जाती है।

श्वसन नियन्त्रण इस प्रकार समझा जा सकता है–

8.7 आन्तरिक श्वसन का हृदय से सम्बन्ध–

प्रिय पाठकों आन्तरिक श्वसन का हृदय के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। क्योंकि हृदय के द्वारा ही आक्सीजन युक्त रक्त सम्पूर्ण शरीर में भेजा जाता है तथा शरीर के विभिन्न भागों से कार्बन डाई आक्साइड युक्त रक्त एकत्र किया जाता है। श्वसन दर का हृदय दर के साथ एक ओर चार का अनुपात होता है अर्थात 18 श्वास प्रतिमिनट लेने पर हृदय 72 बार स्पंदन करता है। वहीं श्वसन दर कम होने पर हृदय की धड़कन भी कम हो जाती है तथा इसके विपरित श्वास गति बढ़ने पर हृदय स्पंदन की दर इसी अनुपात में बढ़ जाती है।

जब भी कठोर श्रम किया जाता है तब उसमें अधिक ऊर्जा की खपत होती है इस ऊर्जा की पूर्ति करने के लिए आन्तरिक श्वसन की दर बढ़ जाती है तथा इसी अनुपात में हृदय की स्पदन दर भी बढ़ जाती है जबकि गहन विश्राम की अवस्था में जब शरीर की

चयापचय दर न्यूनतम हो जाती है, इस अवस्था में श्वसन की दर कम हो जाती है तथा हृदय की स्पदन दर कम हो जाती है।

वातावरण में आक्सीजन की मात्रा कम होने पर जैसे अधिक ऊँचाई पर जाने पर श्वसन दर एवं हृदय की गति बढ़ जाती है। इसका कारण यह होता है कि प्रति मिनट अधिक श्वसन करने पर ही शरीर को कोशिकाओं को आवश्यक आक्सीजन प्राप्त हो पाती है।

8.8 श्वसन क्रिया को प्रभावित करने वाले कारक–

श्वसन एक अनैच्छिक क्रिया के रूप में प्रतिक्षण शरीर में चलने वाली क्रिया है। यह क्रिया विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है। इन कारकों के परिणामस्वरूप श्वसन क्रिया तीव्र अथवा मन्द हो जाती है ये कारक ही श्वसन तंत्र को स्वस्थ एवं बिमार भी बनाते है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारकों का वर्णन इस प्रकार है–

1.प्रदूषण एवं घुटन युक्त वातावरण– प्रदूषण एवं घुटन युक्त वातावरण के प्रभाव से शरीर की कोशिकाओं को प्रर्याप्त मात्रा में आक्सीजन प्राप्त नहीं हो पाती परिणाम स्वरूप पहले श्वसन क्रिया तीव्र होती है तथा यदि श्वसन क्रिया तीव्र होने पर भी आक्सीजन की पूर्ति नहीं होती तब सिर दर्द, उल्टी, चक्कर, बेचैनी तथा बेहोशी आदि लक्षण प्रकट होते है। लम्बे समय तक ऐसे वातावरण में रहने पर दमा, एलर्जी, श्वासनली सूजन तथा फेफड़ों के कैंसर आदि रोग जन्म लेते है।

वातावरण में कार्बन मोनो ऑक्साइड (CO) गैस की उपस्थिति होने पर जब श्वसन क्रिया के साथ यह गैस फेफड़ों में भरती है तब रक्त में स्थित हिमोग्लोबिन इसके साथ बहुत तेजी से जुडता है। हिमोग्लोबिन आक्सीजन की तुलना मे कार्बन मोनो ऑक्साइड के साथ 230 गुणा तेजी से जुडकर एक स्थाई यौगिक का निमार्ण करता है। यह स्थाई यौगिक कोशिका में पहुंच कर भी हिमोग्लोबिन को मुक्त नही करता, परिणाम स्वरुप पहले सिरदर्द, घुटन व बैचेनी आदि लक्षण प्रकट होते हैं तथा आगे चलकर आक्सीजन के अभाव में शरीर की कोशिकाएं मृत होने लगती हैं। इस अवस्था में दम घुटने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

2.आहार –आहार का श्वसन क्रिया एवं वृक्कों की क्रियाशीलता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। तेज नमक एवं मिर्च मसाले युक्त उत्तेजक आहार का वेन करने से श्वसन क्रिया एवं वृक्कों की क्रियाशीलता बढ़ती है। आहार में कृत्रिम एवं रासायनिक पदार्थों की अधिकता होने पर भी श्वसन दर बढ़ जाती है।

श्वसन क्रिया एवं वृक्कों पर दवाईयां उत्तेजक प्रभाव रखती है। दवाईयों का अधिक सेवन करने वाले मनुष्य की श्वसन दर एवं चयापचय दर प्रायः बढ़ी रहती है तथा ऐसे मनुष्यों के हाथों–पैरों में सूक्ष्म कम्पन होने लगता है।

3.श्रमहीन जीवन शैली–श्रम करने पर शरीर में ऊर्जा की अधिक मात्रा का उपयोग होता है इसकी पूर्ति के लिए श्वसन क्रिया तेज हो जाती है तथा फेफड़ों का अधिकांश भाग क्रियाशील होकर कोशिकाओं को आक्सीजन की पूर्ति करता है। इसके विपरित जीवन में श्रम का पूर्ण अभाव होने पर फेफड़ों की क्रियाशीलता कम होती चली जाती है तथा ऐसी अवस्था में फेफड़ों का केवल एक चौथाई भाग ही सक्रिय रहता है जबकि शेष तीन चौथाई भाग निष्क्रिय पडा रहता है। फेफड़ों के इस निष्क्रिय भाग में टी0 बी0 आदि के जीवाणु अपना आश्रय बना लेते है जो दमा, टी0 बी0, श्वास फूलना आदि रोग पैदा करते है। ऐसी मनुष्य की कार्यक्षमता लगातार कम होती चली जाती है।

4.प्रातःकालीन भ्रमण एवं योगाभ्यास—प्रातःकालीन भ्रमण का श्वसन क्रिया पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है चूकि प्रातःकाल में वातावरण में प्रदूषण का न्यूनतम स्तर होता है अतः इस समय घूमने एवं व्यायाम आदि करने से फेफड़ों की प्राण ऊर्जा बढ़ती है, फेफड़ों की वायु धारिता बढ़ती है तथा फेफड़ों का अधिक से अधिक भाग क्रियाशील होता है। योगाभ्यास श्वसन क्रिया को सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित बनता है। यौगिक क्रियाओं का जैसे षट्कर्म, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि अभ्यास श्वसन तंत्र को कफ, मेद एवं श्लेष्मा आदि दोषों से मुक्त रखता है। इन क्रियाओं का अभ्यासी व्यक्ति सर्दी जुकाम, खाँसी, न्यूमोनिया, ब्रोन्काइटिस, टी.बी. व दमा आदि श्वसन रोगों से मुक्त रहता है।

5.मानसिक आवेग—मानसिक आवेग जैसे क्रोध, ईष्या, भय, तनाव, अवसाद एवं हिंसक वृन्ति श्वसन क्रिया में बाधाएं उत्पन्न करती है। इन अवस्थाओं में श्वसन क्रिया अत्यधिक तीव्र हो जाती है, हृदय गति तीव्र एवं अनियंत्रित हो जाती है तथा रक्तचाप बढ़ जाता है। इसके विपरित मन में सकारात्मक विचार एवं विश्रान्ति की भावना श्वसन क्रिया को स्थिरता प्रदान करती है। ध्यान का अभ्यास करने पर श्वसन क्रिया धीमी एवं दीर्घ बनती है इससे श्वसन सम्बन्धी रोग दूर होते है एवं सम्पूर्ण श्वसन तंत्र को आराम मिलता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न—

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति किजिए—**

(क) ग्लूकोज के एक अणु के आक्सी श्वसन के परिणाम स्वरूप ....की उत्पत्ति होती है।

(ख) आक्सीजन रक्त में स्थित हिमोग्लोबिन के साथ मिलकर .... नामक अस्थाई यौगिक का निर्माण करती है।

(ग) प्रश्वासित वायु में सबसे अधिक .... गैस की मात्रा होती है।

(घ) मस्तिष्क के .... नामक स्थान को श्वसन केन्द्र माना गया है।

(ड) क्रोध, ईर्ष्या, भय आदि मानसिक आवेगों की अवस्था में श्वसन क्रिया .... हो जाती है।

2. **सत्य/असत्य बताइये—**

(क) आन्तरिक श्वसन में ग्लूकोज का दहन दो प्रकार से होता है।

(ख) मनुष्य की अधिकांश कोशिकाओं में अनाक्सी श्वसन की क्रिया के परिणाम स्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है।

(ग) रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा बढने से व्यक्ति की कार्यक्षमता घटती है।

(घ) अधिवृक्क ग्रन्थियों से एड्रीनलीन नामक हार्मोन के स्रावण होने पर श्वसन दर बहुत तीव्रता से बढ़ती है।

(ड) अधिक ऊँचाई पर जाने पर श्वसन दर व हृदय गति कम हो जाती है।

3. **बहुविकल्पीय प्रश्न—**

क. आक्सी श्वसन के परिणामस्वरूप क्या उत्पन्न होता है—

a. ऊर्जा b. जल

c. कार्बन डाई आक्साइड d. सभी

ख. एक स्वस्थ मनुष्य के रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा होती है—

a. 8-12 mg / 100 ml b. 12-16 mg / 100ml

c. 5-10 mg / 100ml d. 80-12 mg / 100ml

ग. प्रश्वसित वायु में आक्सीजन की मात्रा होती है–

a. 1 प्रतिशत b. 15 प्रतिशत

c. 21 प्रतिशत d. 78 प्रतिशत

घ. श्वसन दर का हृदय गति के साथ क्या अनुपात होता है–

a. 1:1 b. 1:2

c. 1:4 d. 1:8

ड़. श्वसन क्रिया पर कौन सा नियन्त्रण होता है–

a. तन्त्रिकीय नियन्त्रण b. रासायनिक नियन्त्रण

c. दोनों नियन्त्रण d. कोई नियन्त्रण नहीं

8.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ चुके है कि श्वसन क्रिया शरीर की अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है। इस क्रिया के अर्न्तगत बाह्य वायुमण्डल से वायु ग्रहण की जाती है यह वायु श्वसन अंगों के द्वारा फेफड़ों में भर जाती है। फेफड़ों से यह वायु रक्त में मिल जाती है। रक्त में स्थित हिमोग्लोबिन नामक पदार्थ इस वायु में उपस्थित आक्सीजन को अपने साथ जोड़कर एक अस्थाई यौगिक का निर्माण कर लेता है। तत्पश्चात यह रक्त सम्पूर्ण शरीर की कोशिकाओं में जाकर आक्सीजन मुक्त कर देता है तथा कोशिकाओं में उपस्थित कार्बन डाई आक्साइड को ग्रहण कर लेता है। यह रक्त हृदय से होता हुआ फेफड़ों में आता है तथा फेफड़ों में कार्बनडाई आक्साइड को मुक्त कर देता है। यह कार्बनडाई आक्साइड गैसे निश्वसन के रूप में शरीर से बाहर निकल जाती है।

एक स्वस्थ मनुष्य प्रति मिनट 16–18 बार श्वसन क्रिया करता है। इसे श्वसन दर कहा जाता है। इस श्वसन दर का नियन्त्रण तन्त्रिका तंत्र एवं रासायनिक पदार्थो के द्वारा होता है। यहाँ ध्यान देने योग्य एक विशेष तथ्य यह है कि जो श्वास अन्दर ग्रहण की जाती है उसमें सबसे अधिक मात्रा में नाइट्रोजन गैस तथा आक्सीजन गैस उपस्थित होती है जबकि छोड़ी गयी श्वास में भी यह नाइट्रोजन एवं आक्सीजन गैसे अधिक मात्रा में होने के साथ–साथ काफी मात्रा में कार्बन डाई आक्साइड गैस बाहर छोड़ी जाती है।

यद्यपि श्वसन शरीर में प्रतिक्षण होने वाली अनैच्छिक क्रिया है जिस पर वातावरण, जीवन शैली, दिनचर्या, मानसिक स्थिति एवं श्रम–विश्राम आदि कारक अपना प्रभाव रखते है। साफ स्वच्छ वातावरण, शुद्ध आहार सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं जीवन शैली तथा सकारात्मक सोच विचार श्वसन तंत्र को स्वस्थ, सक्रिय एवं निरोगी बनाते है। ऐसा व्यक्ति श्वसन तंत्र से सम्बन्धित रोगों से मुक्त जीवन व्यतीत करता है।

ये कारक बाह्य श्वसन तंत्र के साथ–साथ आन्तरिक श्वसन तंत्र को भी सक्रिय एवं स्वस्थ बनाते हैं। इसके परिणामस्वरूप रक्त शुद्ध स्वच्छ एवं हिमोग्लोबिन से परिपूर्ण रहता है तथा शरीर में गैसों का परिवहन भली भांति होता है।

8.10 शब्दावली

आक्सीकरण	आक्सीजन की उपस्थिति में दहन क्रिया
ए0टी0पी0	एडोनोसीन ट्राई फास्फेट (ऊर्जा युक्त अणु)
प्रश्वास	वातावरण की वायु अन्दर ग्रहण करना
निश्वास	फेफड़ों की वायु को बाहर वातावरण में छोड़ना
विनिमय	आदान–प्रदान
अनैच्छिक	इच्छा के नियन्त्रण से मुक्त
स्पंदन	धडकन

उपभोग	प्रयोग
आश्रय	शरण लेना
मेद	वसा
यौगिक	दो अथवा अधिक तत्वों के मिलने से उत्पन्न तत्व

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क)	38 ए.टी.पी.	क.	सत्य	क.	d
(ख)	आक्सी हिमोग्लोबिन	ख.	असत्य	ख	b
(ग)	नाइट्रोजन	ग.	असत्य	ग.	c
(घ)	मैडूयला	घ	सत्य	घ	c
(ड़)	तीव्र	ड़	असत्य	ड़	c

8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।

3 मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन – मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

4. Essentials of Medical Physialogy – K. Sembulingam & Prema Sembulingam , Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

4. Textbook of Physialogy (Vol.1) - Prof. A.K. Jain, Avichal Publising Company, Sirmour (H.P.)

5. The Fundamentals of Human Physialogy (Vol.1) - Dr. G.C. Agarwala, Accupressure Research Centre, Allahabad.

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आंन्तरिक श्वसन की संरचना, प्रकार एवं क्रिया विधि सविस्तार समझाइये।
2. श्वसन में प्रयुक्त प्रश्वसित एवं विश्वसित वायु की संरचना लिखिए।
3. श्वसन नियंत्रण को समझाते हुए श्वसन को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक लिखिए।

इकाई 9 वृक्क की संरचना एवं कार्य

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 वृक्कों का सामान्य परिचय
9.4 वृक्क की संरचना
 9.4.1 वृक्क की बाÞ; संरचना
 9.4.2 वृक्क की आन्तरिक संरचना
9.5 वृक्कों की क्रियाविधि
9.6 वृक्कों के कार्य
9.7 वृक्कों को प्रभावित करने वाले कारक
9.8 सारांश
9.9 पारिभाषिक शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों पूर्व की इकाई में आपने श्वसन तंत्र की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन किया एवं ज्ञान प्राप्त किया कि भोजन रस (ग्लूकोज) का वायु (आक्सीजन)की उपस्थिति में शरीर की कोशिकाओं में दहन (आक्सीकरण) होता है। इस दहन की क्रिया के परिणाम स्वरूप ऊर्जा की उत्पत्ति होती है, जिसका प्रयोग विभिन्न आन्तरिक एवं बाÞ; कार्यो dks djus में किया जाता है। शरीर में Åर्जा की उत्पत्ति की क्रिया चयापचय (Metabolism) कहलाती है। इस क्रिया में ऊर्जा के साथ–साथ कुछ ऐसे अनुपयोगी अविशिष्ट उत्सर्जी पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो शरीर के लिए अनुपयोगी होते है ऐसे पदार्थों का शरीर से निष्कासन अनिवार्य होता है, रक्त से इन उत्सर्जी पदार्थों को छानकर अलग करने एवं बाहर निकालने के लिए मानव शरीर में एक जोडी सेम के बीज के समान आकार वाली रचना उदरीय गुहा मे पायी जाती है, यह रचना वृक्क कहलाती है। इस इकाई में आप इन वृक्कों की संरचना एवं कार्यो का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

वृक्क हमारे शरीर के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है जो प्रतिक्षण रक्त छानने की क्रिया करते रहते हैं। इन वृक्कों की क्रियाशीलता रक्त को शुद्ध बनाए रखती है जबकि इन वृक्कों में विकार उत्पन्न होने पर रक्त भली–भॉति छन नहीं पाता जिससे अशुद्धिया रक्त में ही मिली रह जाती है एवं रक्त में यूरिक ऐसिड का बढना, यूरिया का बढना, बहुमूत्र, जोडों में सूजन–दर्द एवं गठिया आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इन वृक्कों के भली–भॉति कार्य नहीं करने की दशा में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में डायालिसिस नामक क्रिया कराई जाती है

जो अप्राकृतिक रूप से बाह्य उपकरणों की सहायता से की जाती है। वास्तव में प्राकृतिक डायालिसिस की क्रिया तो वृक्कों के अन्दर प्रतिक्षण चलती रहती है। इस प्रकार वृक्क मानव शरीर के अन्दर स्थित छोटी किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनायें हैं जो रक्त शोधन के महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करते हैं। प्रिय पाठकों अब आपके मन में इन अंगो की संरचना एवं कार्यो को जानने की जिज्ञासा अवश्य उत्पन हुई होगी।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- वृक्क की बाह्य एवं आन्तरिक संरचना का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वृक्क के कार्यो एवं क्रियाविधि का अध्ययन कर सकेंगे।
- शरीर में मूत्र निर्माण क्रिया विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगं।
- वृक्काणुओं की रचना एवं क्रियाविधि के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- इस इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों का उत्तर देने में सक्ष्म हो सकेंगे।

9.3 वृक्क का सामान्य परिचय

मानव शरीर की उदरीय गुहा के पश्च भाग में रीढ के दोनों ओर दो वृक्क स्थित होते हैं। ये बैगंनी रंग की रचनायें होती है जो आकार में बहुत बडी नहीं होती है। इन वृक्कों के Åपर टोपी के समान अधिवृक्क ग्रन्थियां नामक रचना पायी जाती हैं। ये वृक्क शरीर में रक्त को छानकर, रक्त की अशुद्वियों को मूत्र के रुप में शरीर से उत्सर्जित करने का कार्य करती हैं। प्रिय पाठकों, वृक्कों का कार्य मात्र रक्त को छानकर मूत्र निमार्ण ही नही होता अपितु इनका कार्य शरीर में जल, शर्करा तथा खनिज लवणों आदि शरीरोपयोगी तत्वों का शरीर में समअनुपात बनाये रखना होता है। वृक्क शरीर में स्थित अनावश्यक तत्वों को बाहर निकालकर शरीर में समस्थिति (Homeostsis) बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

वृक्क प्रतिक्षण क्रियाशील रहते हुए रक्त को छानने की क्रिया में लगे रहते हैं। ये वृक्क चयापचय क्रिया में उत्पन्न हुए उत्सर्जी पदार्थो को छानकर मूत्र का निमार्ण करते हैं। इसके साथ साथ वृक्क रक्त में उपस्थित अन्य हानिकारक पदार्थो को भी मूत्र के साथ शरीर से उत्सर्जित करते हैं। इन वृक्कों की कार्यकुशलता एवं कार्यक्षमता पर आहार विहार सीधा प्रभाव रखता है। आहार में उत्तेजक पदार्थ, मिर्च मसाले एवं मांसाहारी पदार्थो का प्रयोग करने से इन वृक्कों पर नकारात्मक प्रभाव पडता है। धूम्रपान, एल्कोहल तथा दवाईयों का अधिक सेवन के दुष्प्रभावों से शरीर को बचाने में वृक्काणुओं को अधिक कार्य करना पडता है इस कार्य में ये वृक्काणु नष्ट हो जाते हैं, जिससे वृक्कों की कार्य क्षमता कम हो जाती है। यदि इसके उपरान्त भी इन हानिकारक पदार्थो का प्रयोग बन्द नही किया जाता तब ये वृक्काणु अक्रियाशील होकर अपना कार्य बन्द कर देते हैं। यह अवस्था किडनी फैल(Renal failure) कहलाती है। जिसमें वृक्कों में रक्त निस्यन्दन की क्रिया बन्द हो जाती है। अब हम इन वृक्कों की संरचना एवं कार्यो का सविस्तार वर्णन करते हैं।

9.4 वृक्क की संरचना

अध्ययन में सुविधा के दृष्टिकोण से वृक्क की संरचना को हम दो भागों में बांट सकते है–

1– वृक्क की बाह्य संरचना

2– वृक्क की आन्तरिक संरचना

9.4.1 वृक्क की बाह्य संरचना

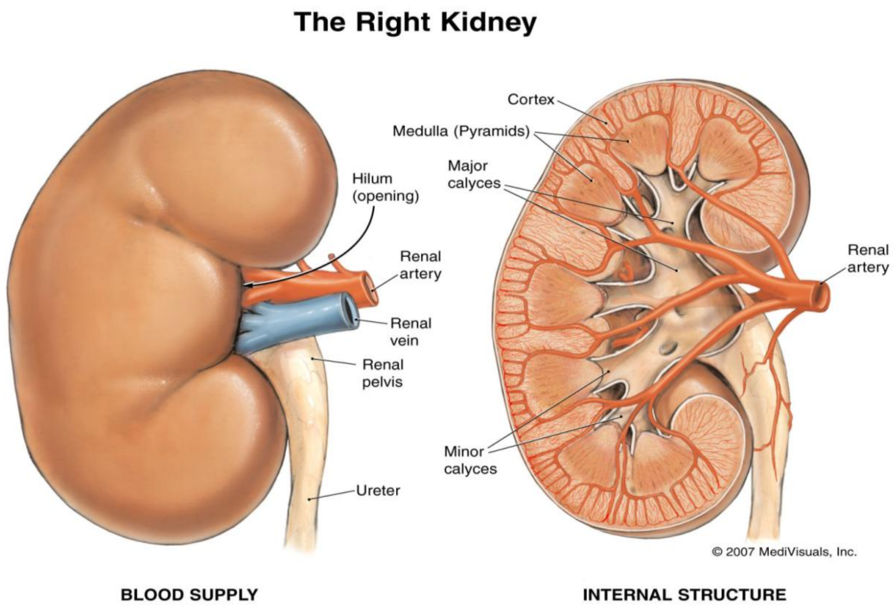

मानव शरीर में उदरीय गुहा के पश्च भाग में रीढ के दोनों ओर एक जोडी वृक्क जायी जाती हैं। एक वयस्क मनुष्य में वृक्क का भार 140 से 150 ग्राम के मध्य होता है। प्रत्येक वृक्क की लम्बाई 10 से 12 सेमी0 के मध्य एवं चौडाई 5 से 6 सेमी0 के मध्य होती है। ये वृक्क देखने में सेम के बीज के समान आकृति वाले होते हैं। इन दोनों वृक्कों में बाएं वृक्क की तुलना में दाहिना वृक्क अपेक्षाकृत आकार में छोटा एवं अधिक फैला हुआ अर्थात मोटा होता है। यह दाहिना वृक्क कुछ नीचे की ओर एवं बाया वृक्क Åपर की ओर फैला होता है। इन वृक्कों का भीतरी किनारा अवतल एवं बाहरी किनारा उत्तल होता है एवं इनका मध्य भाग गहरा होता है। वृक्कों का मध्य भाग हायलम कहलाता है, इस मध्य भाग से ही रक्त वाहिकाएं वृक्कों में प्रवेश करती है एवं मूत्रवाहिकाएं बाहर निकलती हैं। वृक्क का ऊपरी सिरा उर्ध्व ध्रुव एवं निचला सिरा निम्न ध्रुव कहलाता है। प्रत्येक वृक्क के ऊपरी ध्रुव पर एक&एक अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland) उपस्थित होती है। प्रत्येक वृक्क कैप्सूल के एक आवरण में लिपटा रहता है। यह कैप्सूल तन्तु उतक से बना होता है, जिसे वृक्कीय सम्पुट (Renal capsule) कहा जाता है इस कैप्सूल में वसा संचित रहती है जिससे यह गद्दी की तरह कार्य करता हुआ वृक्कों को बाह्य आधातों एवं चोटों से सुरक्षित रखने का कार्य करता है।

9.4.2 वृक्क की आन्तरिक संरचना

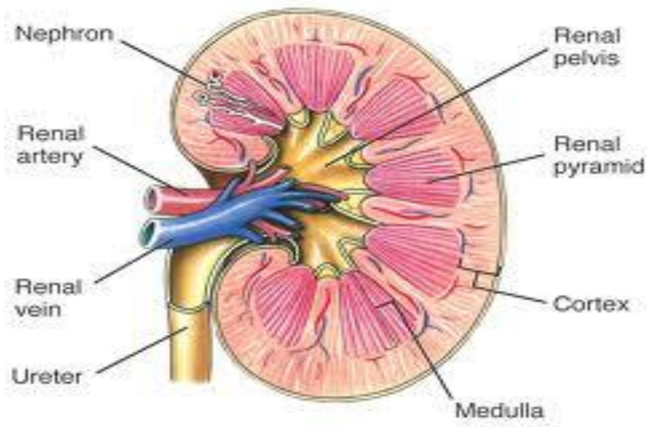

वृक्क की आन्तरिक संरचना तीन भागों मे बटी होती है –

1– वृक्कीय श्रोणि (Renal pelvis)

2–वृक्कीय अतस्था (Renal medulla)

3– वृक्कीय प्रान्तस्था (Renal cortex)

1 – वृक्कीय श्रोणि :– यह वृक्क का सबसे आन्तरिक भाग होता है यहीं से मूत्रनली बाहर की ओर निकलती है। इस स्थान पर संचायक स्थान (Collecting space) होता है।

2– वृक्कीय अन्तस्था :– यह वृक्क का मध्यभाग होता है जिसे 8 से 18 तक की संख्या में वृक्कीय पिरामिड्स पाये जाते हैं। ये पिरामिड्स शंकु के आकार के होते हैं तथा वृक्कीय श्रोणि में आकर खुलते हैं। इन पिरामिड्स में स्थित नलिकाएं मूत्र के पुनः अवशोषण की क्रिया में भाग लेती हैं।

3– वृक्कीय प्रान्तास्था :– यह वृक्क का सवसे बाहरी भाग होता है जो वृक्कीय सम्पुट के साथ जुडा होता है अर्थात यह भाग वृक्क के बाहरी आवरण (dSllwy) से जुडा होता है। वृक्क के इस भाग में नलिकाएं गुच्छों के रुप में अथवा जाल के रुप में फैली होती हैं।

वृक्क का निर्माण करने वाली कोशिकाएं वृक्काणु अथवा नेफ्रान (Nephrons) कहलाती है अर्थात वृक्काणु वृक्कों की मूल रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई होती है तथा प्रत्येक वृक्काणु स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाली इकाई होती है। वृक्काणुओं की रचना इतनी अधिक छोटी होती है कि इन्हें ऑखों से नहीं देखा जा सकता बल्कि इन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है, इसलिए इन्हें सूक्ष्मदर्शी इकाई (Microscopic unit) कहा जाता है। प्रत्येक वृक्क का निर्माण 10 से 13 लाख वृक्काणुओं के मिलने से होता है। वृक्क की कार्य क्षमता एवं कार्यकुशलता इन वृक्काणुओं की क्रियाशीलता पर निर्भर करती है तथा 45 से 50 वर्ष की आयु के उपरान्त इन वृक्काणुओं की संख्या लगभग एक प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से घटने लगती है इसका प्रभाव वृक्कों की कार्यक्षमता पर पडता है तथा इसके परिणाम स्वरूप रक्त छानने (Filtration) एवं मूत्र निर्माण (Urine formation) की क्रिया धीमी पडती है। यही कारण होता है कि 50 वर्ष से अधिक उम्र होने पर आहार एवं विहार में अधिक नियम सयंम की आवश्यक्ता पडती है। इस अवस्था में विकृत आहार लेने से रक्त में

विकृति उत्पन होने पर वृक्क रक्त को पुनः शुद्ध बनाने में सक्ष्म नही हो पाते तथा शरीर रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

प्रिय पाठकों अब आपके मन में इन वृक्काणुओं को जानने की जिज्ञासा निश्चित ही बढ गयी होगी। वृक्क में दो प्रकार के वृक्काणु उपस्थित होते हैं। वृक्क में वृक्काणुओं का वह वर्ग जो प्रतिक्षण क्रियाशील रहता है एवं संख्या में बहुत अधिक (वृक्क के लगभग दो तिहाई भाग में फैले) होता है कोर्टिकल नेफ्रान कहलाता है जबकि वृक्क में उपस्थित वृक्काणुओं का वह वर्ग जो केवल विशेष परिस्थिति अर्थात तनाव व दबाव मे ही क्रियाशील होता है, जक्स्टामेड्यूलरी नेफ्रान कहलाता है। इन जक्स्टामेड्यूलरी नेफ्रान की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।

प्रत्येक वृक्काणु की रचना को दो भागों में बांटा जाता है–

1– केशिका गुच्छीय (Glomerular)

2– वृक्कीय नलिका (Renal tubule)

1– केशिका गुच्छीय – इसे मालपीजी का पिण्ड (Malpighian body) भी कहा जाता है। यह वृक्काणु का आरम्भिक भाग है जो गुच्छे के रूप में होता है। यह कप (प्याले) के समान रचना बनाकर रक्त निस्यन्दन (Filteration) की क्रिया में भाग लेता है। वृक्काणुओं का यह भाग चाय की छलनी के समान एक जालनुमा रचना का निमार्ण करता है। इस छलनीनुमा रचना से जब रक्त छनता है तब रक्त में उपस्थित जल एवं घुलनशील लवण (ग्लूकोज, यूरिया, एमनो अम्ल आदि) तो इनमें से छन जाते हैं जबकि बडे प्रोटीन के अणु इनमें से नहीं गुजर पाते है यह क्रिया केशिका गुच्छीय निस्यन्दन (Glomerular Filtration) कहलाती है। यह रक्त छानने का प्रथम चरण है, जिसमे रक्त से उपयोगी शर्करा एवं लवण आदि छन जाते है। इन छने हुए पदार्थो का वृक्क में पुनः अवशोषण किया जाता है।

2 वृक्कीय नलिका – यह वृक्काणु का ऐंठा हुआ कुण्डलाकार भाग होता है। यह भाग अग्रेंजी भाषा के अक्षर यू के आकार की रचना बनाता है। इस रचना को हेनले का लूप (loop of Henle) कहा जाता है। यहां वृक्काणु की एक भुजा पहले नीचे की ओर आती है तथा फिर उपर की ओर जाती है। वृक्कीय नलिका के इस भाग में गुच्छीय निस्यन्दन से छनकर आये द्रव से पुनः अवशोषण की क्रिया होती है, इस क्रिया के अन्तर्गत जल, ग्लूकोज, अमीनो अम्ल एवं शरीर के लिये उपयोगी खनिज लवणों का पुनः अवशोषण कर लिया जाता है। पुनः अवशोषण के उपरान्त ये उपयोगी पदार्थ पुनः रक्त में मिला दिये जाते हैं जबकि निस्यन्दन के परिणामस्वरुप उत्पन्न अंश को वृक्कीय श्रोणि में भेज दिया जाता है। यहां से यह मूत्र की संज्ञा ग्रहण कर लेता है। यह मूत्र वृक्कीय श्रोणि से मूत्रनलिका में एवं मूत्रनलिका से मूत्राशय में चला जाता है।

9.5 वृक्कों की क्रियाविधि

प्रिय पाठकों वृक्कों में महाधमनी (Aorta) रक्त लेकर आती है तथा अनेकों शाखाओं मे विभाजित हो जाती है। ये शाखाएं पहले केशिका गुच्छीय के छलनीनुमा भाग से होकर गुजरती है। यहां पर रक्त को छानकर उससे अशुद्धिया अलग कर दी जाती है यह क्रिया गुच्छीय निस्यन्दन (Glomerular Filtration) कहलाती है। आगे पुनः वृक्क नलिका हेनले लूप से होकर निकलती है तथा यहां पर एक बार पुनः पूर्व में छने पदार्थो को छाना जाता है, यह क्रिया पुनः अवशोषण कहलाती है अर्थात वृक्कों में रक्त दो बार छनता है।

इस प्रकार दो बार छानने के उपरान्त रक्त में स्थित यूरिया, अमोनिया, क्रिएटीन, सल्फेट, फास्फेट तथा अतिरिक्त शर्करा आदि पदार्थ अलग कर दिये जाते हैं। ये पदार्थ जल के साथ घुले हुये अर्थात द्रव अवस्था में होते है एवं वृक्क के वृक्कीय श्रोणि नामक भाग में इकठ्ठा कर दिये जाते है। यहाँ से ये पदार्थ मूत्र के रुप में मूत्र नली के द्वारा वृक्कों से बाहर निकलते हैं एवं मूत्राश्य नामक अंग में जाकर भर जाते है। इस प्रकार ये वृक्क प्रतिक्षण रक्त को छानने के कार्य में लगे रहते हैं। सामान्य परिस्थितियों में एक स्वस्थ मनुष्य के वृक्क प्रतिमिनट 125 ml की दर से छानते रहते हैं। रक्त छानने की इस दर पर देश, काल एवं परिस्थितियां अपना प्रभाव रखती है तथा यह दर घटती एवं बढती रहती है।

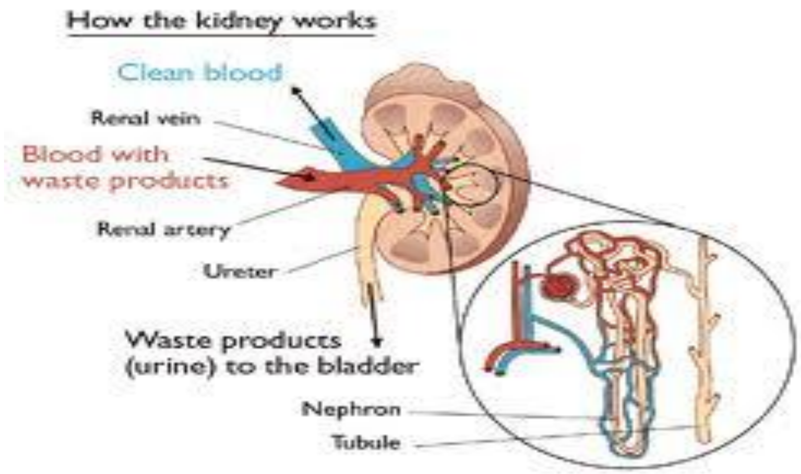

9.6 वृक्कों के कार्य

वृक्क मानव शरीर के विशिष्ट आन्तरिक अंग होते हैं जो निम्न लिखित महत्वपूर्ण कार्य करते है।

क–रक्त को छानकर मूत्र निमार्ण करना :– वृक्क का सबसे मुख्य कार्य रक्त को छानकर रक्त में उपस्थित उत्सर्जित पदार्थों को अलग करना होता है। वृक्क इन वर्ज्य पदार्थो को रक्त से छानकर जल में घोलकर मूत्र का निमार्ण करता है।मनुष्य के दोनों वृक्क प्रतिदिन (24 घन्टे) 150 से 180 लीटर रक्त को छानकर रक्त में उपस्थित शरीर के लिये अनुपयोगी पदार्थो को मूत्र के रुप में अलग करने का कार्य करते हैं।

इस प्रकार एक मनुष्य प्रतिदिन 1 से 1.8 लीटर स्वच्छ , पारदर्शी, हल्के पीले रंग के द्रव मूत्र का उत्सर्जन करता है। इस मूत्र का हल्का पीला रंग यूरेबिलिन नामक रंजक पदार्थ के कारण होता है। मूत्र में अपनी एक विशेष एरोमेटिक गन्ध होती है। मूत्र की पी0 एच0 5.0 से 8.0 के बीच होती है, यह पी0 एच0 ग्रहण किये आहार के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। शाकाहारी एवं सात्विक आहार लेने वाले मनुष्यों का मूत्र उदासीन अथवा हल्का क्षारीय प्रकृति का जबकि मांसाहारी एवं मिर्च मसाले युक्त अम्लीय प्रकृति का आहार लेने वाले व्यक्तियों में मूत्र अम्लीय प्रकृति का होता है।

मूत्र में सबसे अधिक मात्रा में जल होता है जबकि शेष पदार्थो में कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ होते हैं। मूत्र संगठन को आप इस प्रकार समझ सकते हैं –

मूत्र

ठोस भाग द्रव भाग

कार्बनिक पदार्थ	अकार्बनिक पदार्थ	जल
यूरिया	सोडियम	
यूरिक ऐसिड	पोटेशियम	
क्रिएटीनीन	कैल्सियम	
अमोनिया	क्लोराइड व फास्फेट	

मूत्र में उर्त्सजित होने वाले पदार्थों में सबसे प्रमुख घटक कार्बनिक पदार्थ यूरिया होता है। एक मनुष्य सामान्य अवस्था में प्रतिदिन शरीर से 300 से 400 मिग्राम यूरिया मूत्र के साथ उर्त्सजित करता है। शरीर से कम मात्रा में मूत्र का उत्सर्जन ओलाइगूरिया (Oliguria) कहलाता है जबकि शरीर से मूत्र का उत्सर्जन बिल्कुल बंद होना एनूरिया (Anuria)अथवा किडनी फैल(Renal Failure) कहलता है। शरीर में बहुत अधिक मात्रा में मूत्र का स्रावण पोलीयूरिया (Polyuria) कहलाता है।

शरीर से साफ स्वच्छ, दुर्गन्धहीन एवं यथोचित मात्रा में मूत्र का स्रावण शारीरिक स्वास्थ्य को दर्शाता है जबकि इसके विपरित मूत्र के साथ शरीरोपयोगी शर्करा, लवणों, धातुओं एवं रक्त आदि का आना शरीर में रोग की ओर सकेंत करता है। शरीर से उत्सर्जित मूत्र परिक्षण के आधार पर शरीर की विभिन्न अवस्थाओं एवं रोगों की पहचान की जा सकती है। इनमें से कुछ अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है –

1– मूत्र के साथ अधिक मात्रा में रक्त शर्करा (ग्लूकोज) का आना मधुमेह रोग का सूचक है।

2–मूत्र के साथ अधिक मात्रा में प्रोटीन का आना धातुक्षय अथवा एल्बूमिनेरिया रोग का सूचक है।

3– मूत्र के साथ अधिक मात्रा में पित्त का आना पीलिया रोग का सूचक है।

4– मूत्र में अधिक मात्रा में रक्त कणों (श्वेत रक्त कणों व लाल रक्त कणों) की उपस्थिति शरीर में संक्रमण रोग की सूचना देती है।

5– मूत्र में अधिक मात्रा में एसीटोन का आना अधिक समय तक भोजन नही करने का सूचक है।

6– मूत्र के साथ जीवाणुओं का आना शरीर में संक्रामक रोगों को दर्शाता है।

7– जब शरीर में स्थित जीवाणु वृक्कों को संक्रमित कर देते हैं तब वृक्कों में भयंकर वेदना एवं जलन होती है। वृक्कों की यह अवस्था वृक्क प्रदाह नामक रोग के नाम से जानी जाती है, इस अवस्था में वृक्कों में शोथ उत्पन्न हो जाता है।

8– जब वृक्क कैल्सियम के सल्फेट, क्लोराइड एवं फास्फेटों को रक्त से छानकर अलग तो कर देते हैं किन्तु उन्हे मूत्र के साथ उत्सर्जित नही कर पाते तब ये अकार्बनिक पर्दाथ वृक्क में ही इकट्ठा होकर एक पथरी के समान रचना बना लेते हैं, इसे वृक्क की पथरी कहा जाता है।

9– जब वृक्क भलि–भांति रक्त में उपस्थित यूरिया को उत्सर्जित नही कर पाते तब रक्त में यूरिक एसिड की मात्रा बढनें लगती है। यह यूरिक एसिड शरीर के जोडों में एकत्र होकर जोडों का दर्द एवं सूजन गठिया रोग कहलाता है।

10–अत्यधिक तनाव की अवस्था में वृक्कों का पूर्णतया निष्क्रिय हो जाना किडनी फैल कहलाता है।

ख-जल सन्तुलन करनाः वृक्कों का दूसरा प्रमुख कार्य शरीर में जल की मात्रा को सन्तुलित करना होता है। इसी कारण अधिक जल का सेवन करने पर मूत्र की मात्रा बढ जाती हैं एवं मूत्र का आयतन भी बढ जाता है। इसके विपरीत कम मात्रा में जल का सेवन करने पर अथवा पसीना अधिक निकलने पर मूत्र की मात्रा घट जाती है, तात्पर्य यह कि वृक्क शरीर में जल की मात्रा को सन्तुलित करने का कार्य करते हैं।

ग–अम्ल क्षार सन्तुलन बनाए रखना : वृक्क शरीर में अम्ल क्षार सन्तुलन बनाने का कार्य करते हैं। अधिक मात्रा में अम्लीय पदार्थो को ग्रहण करने पर अनावश्यक तत्वों को वृक्क मूत्र के रुप में शरीर से उत्सर्जित कर देते हैं जबकि क्षारीय शरीर तत्वों की अधिकता होने पर इन तत्वों को रक्त से छानकर वृक्क मूत्र के साथ उत्सर्जित कर देते हैं।

घ-रक्त शर्करा का नियन्त्रणः रक्त शर्करा (ग्लूकोज) का नियन्त्रण करने में वृक्क महत्वपूर्णता से भाग लेते हैं। रक्त में 80–120 मिलीग्राम प्रति 100ml रक्त शर्करा उपस्थित होती है। वृक्क से जब रक्त निस्यन्दन (filtration) की क्रिया होती है तब इस शर्करा को छानकर पुनः अवशोषित कर लिया जाता है तथा रक्त में यह मात्रा स्थिर रखी जाती है।

रक्त में शर्करा की यह मात्रा अधिक बढने पर वृक्क अतिरिक्त मात्रा की शर्करा को मूत्र के साथ उत्सर्जित करते हुए रक्त में शर्करा की मात्रा को नियन्त्रित करने का कार्य करते हैं।

ड .यूरिया का नियन्त्रणः एक स्वस्थ मनुष्य के 100ml रक्त में 20–40 मिलीग्राम यूरिया पाया जाता है। यूरिया की यह मात्रा वृक्कों द्वारा नियन्त्रित की जाती है। इसी कारण वृक्कों की क्रियाशीलता कम होने पर रक्त में यूरिया (यूरिक एसिड) की मात्रा बढ जाती है, इसके परिणाम स्वरुप जोडों में दर्द एवं सूजन आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

च–सोडियम एवं कैल्सियम का नियन्त्रणः वृक्क रक्त में सोडियम एवं कैल्सियम आदि शरीरोपयोगी खनिज लवणों के स्तर को नियन्त्रित करने का कार्य करते हैं। वृक्क इन लवणों की अतिरिक्त मात्रा को मूत्र के साथ उत्सर्जित करते हुए रक्त में इनकी मात्रा स्थिर रखते हैं।

छ–रक्त दाब नियन्त्रणः एक स्वस्थ मनुष्य का रक्त रक्तवाहिनियों में 80–120mm of Hg के दबाव से बहता है जिसे रक्त दाब कहा जाता है। इस रक्त दाब को नियन्त्रित करने में भी वृक्क भाग लेते हैं।

9•7 वृक्कों को प्रभावित करने वाले कारक

वृक्क प्रतिक्षण क्रियाशील बने रहते हुए मूत्र निमार्ण की क्रिया में लगे रहते है। इन वृक्कों की कार्य क्षमता एवं क्रियाशीलता पर कुछ निम्न लिखित कारक सीधा प्रभाव डालते हैं–

क जल की मात्रा – शरीर मे ग्रहण की गई जल की मात्रा वृक्कों में मूत्र निमार्ण की क्रिया को प्रभावित करती है। अधिक मात्रा में जल सेवन करने पर मूत्र निमार्ण की क्रिया बढ जाती है जबकि कम मात्रा में जल का सेवन करने पर मूत्र की मात्रा कम हो जाती है। इसी कारण शरीर में अशुद्वियों की मात्रा बढने पर अधिक मात्रा में जल का सेवन करना चाहियें। इससे वृक्क अधिक क्रियाशील होकर मूत्र के रुप में इन अशुद्वियों को बाहर निकाल देते हैं।

ख वातावरण – गर्मी के दिनों में अधिक मा़त्रा में पसीने के उत्पन होने के कारण ातारक्त में उपस्थित अशुद्विया पसीने के रुप में बाहर निकल जाती है तथा वृक्कों का कम हो जाता

है। इससे मूत्र की मात्रा कम हो जाती है जबकि सर्दी के दिनों में पसीने की मात्रा कम होने पर मूत्र की मात्रा बढ जाती है ।

ग -उत्तेजक पदार्थ – उत्तेजक पदार्थ जैसे चाय, काफी, एल्कोहल व दवाइयो के सेवन करने से वृक्क में स्थित वृक्काणु उत्तेजित हो जाते हैं जिससे मूत्र निमार्ण की किया त्रीव हो जाती है तथा अधिक मात्रा में मूत्र का उत्पादन एवं उर्त्सजन होता है ।

घ -शामक पदार्थ – निकोटिन युक्त पदार्थ जैसे तम्बाकू, गुटका ,धुम्रपान आदि का सेवन वृक्कों में स्थित वृक्काणुओं की किया शीलता को कम कर देता है जिससे मूत्र की कम मात्रा उत्सर्जित होती है ।

ड -अन्तःस्रावी हार्मोन्स – वृक्कों पर पिटयूटरी ग्रन्थि एवं अधिवृक्क ग्रथियों से उत्पन होने वाले हार्मोन्स का प्रभाव पडता है । अधिवृक्क ग्रन्थि से उत्पन्न रैनिन नामक हार्मोन वृक्कों की कियाशीलता को बढाकर मूत्र उत्पादन की किया को त्रीव करता है।

च -मनोस्थिति :मन की दशाओं जैसे कोध ,भय, तनाव एवं हिंसक वृत्ति आदि का प्रभाव वृक्कों की किया शीलता पर पडता है। इन अवस्थाओं में मूत्र निर्माण की किया त्रीव हो जाती है तथा अधिक मात्रा में मूत्र उत्सर्जित होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

1– **सत्य असत्य**

क –बाएं वृक्क की तुलना में दाहिना वृक्क अपेक्षाकृत छोटा एवं अधिक फैला होता है।

ख–प्रत्येक वृक्क के निम्न ध्रुव पर एक–एक अधिवृक्क ग्रंथि उपस्थित होती है।

ग–वृक्क में महाधमनी (aorta) रक्त लेकर आती है।

घ–मूत्र में उत्सर्जित होने वाला सबसे प्रमुख घटक कार्बनिक पदार्थ ग्लूकोज होता है।

ड–मूत्र के साथ रक्त कणों का आना पथरी का सूचक है।

च–भोजन में कम मात्रा में जल लेने पर मूत्र का आयतन बढ जाता है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क–वृक्कों की कियाशीलता ––––––––– को शुद्व बनाये रखती है।

ख–वृक्क –––––––के समान आकृति वाले होते हैं।

ग–प्रत्येक वृक्क का निमार्ण –––––––––वृक्काणुओं के मिलने से होता है।

घ–मूत्र का पीला रंग –––––––––नामक वर्णक की उपस्थिति के कारण होता हैं।

ड–मूत्र के साथ अधिक में रक्त शर्करा (ग्लूकोज) का आना ––––––– रोग का सूचक हैं।

च–निकोटिन युक्त पदार्थो का सेवन मूत्र की मात्रा ––––––– देता है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

क– मानव शरीर में कितने वृक्क होते हैं –

(a) एक (b) दो

(c) पांच (d) असंख्य

ख– वृक्क की मूल रचनात्मक एवं कियात्मक इकाई कहलाती है–

(a) नेफ्रान (b) न्यूरान

(c) नर्व (d)रक्त वाहिनी

ग– मालपीजी का पिण्ड किसे कहा जाता है–

(a) कोशिका गुच्छ (b) वृक्कीय नलिका

(c) हेनले का लूप (d) इनमे से कोई नही

घ– एक स्वस्थ मनुष्य द्वारा प्रतिदिन उत्सर्जित मूत्र की मात्रा है–

(a) 0.5 से 1.0 लीटर (b) 1.0 से 1.8लीटर

(c) 2.0 से 2.5 लीटर (d) 0.0 से 0.5 लीटर

ड– मूत्र में सबसे अधिक मात्रा किसकी होती है –

(a) यूरिया (b) ग्लूकोज

(c) रैनिन (d) जल

च– सामान्य परिस्थितियों में वृक्कों में रक्त किस दर से छनता है–

(a) 10 ml प्रति सेकण्ड (b) 10 ml प्रति मिनट

(c) 25 ml प्रति सेकण्ड (d) 25 ml प्रति मिनट

9.8 सारांश

प्रिय पाठकों उपरोक्त अध्ययन सिद्व करता है कि वृक्क मानव शरीर की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना होती है। जिनका निर्माण वृक्काणुओं नामक कोशिकाओं द्वारा होता है। प्रत्येक वृक्क का निमार्ण 10–13 लाख वृक्काणुओं के मिलने से होता है। कोशिका गुच्छ एवं वृक्कीय नलिका ये दोनों वृक्काणुओं के भाग होते है। वृक्काणुओं के ये भाग चाय को छानने की छलनी के समान जालनुमा रचना बनाते हैं। यहां ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि वृक्क में रक्त की बहुत त्रीव मात्रा में आपूर्ति की जाती है, वृक्कों में महाधमनी शुद्व रक्त लेकर आती है जिसे वृक्काणुओं द्वारा छाना जाता है। छाननें के उपरान्त इस रक्त से अशुद्विया (वर्ज्य पदार्थ) अलग कर दी जाती है। इन अशुद्वियों को जल के साथ मिलाकर मूत्र की उत्पत्ति की जाती है। इस मूत्र को मूत्रवाहिनी के द्वारा पहले मूत्राशय में एकत्र किया जाता है तथा बाद में मूत्र मार्ग के द्वारा शरीर से उत्सर्जित कर दिया जाता है।

वृक्क शरीर में रक्त को छाननें के साथ–साथ अम्ल क्षार सन्तुलन बनाने, रक्त शर्करा (ग्लूकोज),यूरिया,सोडियम आदि शरीरोपयोगी लवणों के सन्तुलन बनाने का कार्य करते हैं। शरीर में अम्ल क्षार एवं जल सन्तुलन बनाने में भी वृक्क अपनी भूमिका का वहन करते हैं। मनुष्य का आहार विहार इन वृक्कों की कार्य क्षमता एवं कार्यकुशलता पर सीधा प्रभाव रखता है ।शुद्व सात्विक आहार एवं सकारात्मक चिन्तन इसे स्वस्थ एवं सक्रिय बनाते है जबकि

इसके विपरीत विकृत आहार, नशीले पदार्थ, दवाईयो का सेवन, क्रोध, भय, ईष्या एवं तनाव जैसे मानसिक विकार वृक्काणुओं पर प्रतिकूल प्रभाव रखते है तथा इनसे वृक्क की कार्य क्षमता कम होती है अतः मनुष्य को इनके सेवन से बचते हुए वृक्क को इनके कुप्रभावों से बचाए रखना चाहिए।

9.9 पारिभाषिक शब्दावली–

निस्यन्दन	छानना
वेदना	पीडा, दर्द

शोथ	सूजन
परिचायक	प्रकट करना
प्रदाह	जलन
रंजक	रंग देने वाला
वर्ज्य	अनुपयोगी

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क.	रक्त	क.	b
ख.	असत्य	ख.	सेम के बीज	ख.	a
ग.	सत्य	ग.	10 से 13 लाख	ग.	a
घ.	असत्य	घ.	यूरेबिलिन	घ.	b
ड.	असत्य	ड.	मधुमेह	ड.	d
च.	असत्य	च.	कम	च.	d

9.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
3. मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन – मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. Essentials of Medical Physialogy – K. Sembulingam & Prema Sembulingam, Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.
5. Textbook of Physialogy (Vol.1) - Prof. A.K. Jain, Avichal Publising Company, Sirmour (H.P.).
6. The Fundamentals of Human Physialogy (Vol.1) - Dr. G.C. Agarwala, Accupressure Research Centre, Allahabad.

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1–वृक्कों की संरचना एवं कार्यो का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2–वृक्कों के कार्य समझाते हुए मूत्र निमार्ण क्रिया समझाइये।

इकाई–10 मस्तिष्क की संरचना एवं कार्य

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य

10.3 मस्तिष्क की संरचना तथा काय
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.8 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों , जैसा कि आप जानते हैं हमारा शरीर अनेक संस्थानों से मिलकर बना है तथा प्रत्येक संस्थान की क्रिया विधि दूसरे संस्थान पर निर्भर करती है अर्थात सभी तन्त्र एक दूसरे से सम्बद्ध है। एक संस्थान यदि ठीक प्रकार से कार्य न करे तो इससे शरीर के अन्य अंग भी प्रभावित होते है। वैसे तो सभी शारीरिक संस्थानों का अपना–अपना महत्व है किन्तु इनमें से भी तंत्रिका तन्त्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पूरे शरीर के संचालन का नियंत्रण इसी संस्थानों के हाथ में हाथ होता । तंत्रिका के अनेक विभाग है। जैसे कि केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र, स्वायप्त तंत्रिका तन्त्र, पेरीफेरल तन्त्र इत्यादि। इन तीनों में भी केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र सबसे प्रधान है। जिसमें मुख्या रूप से मस्तिष्कं तथा मेरूरज्जू आते है।
पाठकों, प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र तथा सबसे महत्वपूर्ण अंग मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यों का अध्ययन करना है। आपके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न होंगे। जैसे कि–

1. मस्तिष्क की संरचना कैसी होती है ?
2. इसमें सूचनायें किस प्रकार से जाती है ?
3. मस्तिष्क किस पद्धति से कार्य करता है ? इत्यादि ।

तो आइये, इन्हीं प्रश्नों के समाधान के लिए इस इकाई के उद्देश्य को जानते हुए सबसे पहले अध्ययन करते है मस्तिष्क की संरचना के बारे में।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्यमयन करने के उपरान्तं आप–

1. मस्तिष्क– की संरचना को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. मस्तिष्क की कार्यप्रणाली का अध्ययन कर सकेंगे।

10.3 मानवीय मस्तिष्क की संरचना एवं कार्य

पूर्णरूप से विकसित मानवीय मस्तिष्क शरीर के भार का लगभग 1/50 होता है और कपाल गुहा (Cranial cavity) में अवस्थित रहता है। विकास की आरम्भिक अवस्था में मस्तिष्क को तीन भागों में विभाजित किया जाता है, जिन्हें अग्रमस्तिष्क (Fore brain), मध्यमस्तिष्क (Mid brain) तथा पश्चमस्तिष्क (Hind brain) कहते हैं।

1) अग्रमस्तिष्क (Fore brain) - यह मस्तिष्क का आगे का भाग होता है सिमें निम्न रचनाएँ स्थित रहती हैं–

प्रमस्तिष्क या सेरीब्रम (Cerebrum)- यह केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र का प्रमुख तथा मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। गुम्बज की तरह और नीचे का भाग सुतल होता है। कपाल गुहा (Cranial cavity) का अधिक भाग प्रमस्तिष्क से भरा रहता है। प्रमस्तिष्क एक गहरी लम्बवृत दरार या विदर (Longitudinal cerebral fissure) के द्वारा दाहिने एवं बायें अर्द्ध गोलार्द्धों में विभाजित रहता है। यह पृथक्करण आगे एवं पीछे के भाग पर पूर्ण होता है लेकिन मध्य में ये अर्द्धगोलार्द्ध तन्त्रिका तन्तुओं की चौड़ी पट्टी के द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं, जिसे **कॉर्पस कैलोसम** (Corpus callosum) कहते हैं। प्रमस्तिष्क की बाहरी सतह को प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (Cerebral cortex) कहते हैं जो तन्त्रिका कोशिकाओं (Nerve cells) का बना होता है और भूरे रंग का होता है। इसे गे मैटर (Grey matter) कहते हैं।

Cerebral Cortex

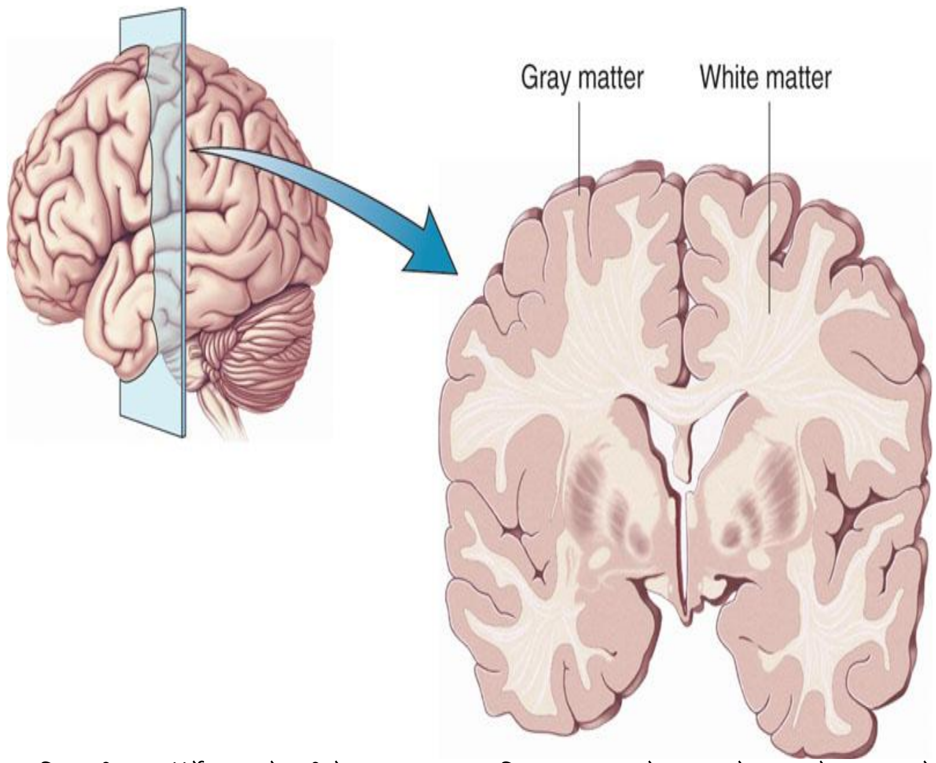

प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स से नीचे का भाग तन्त्रिका तन्तुओं (एक्सोन्स) से बना होता है और श्वेत रंग का होता है, जिसे व्हाइट मैटर (White matter) कहते हैं। प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स में बहुत से विभिन्न गहराइयों के खाँच बने होते हैं। खाँचों के उभार को कर्णक (Gyrus) कहते हैं और दबे हुए भाग को परिखा या विदर (Sulcus or fissure) कहते हैं, के द्वारा पृथक रहते हैं। इससे प्रमस्तिष्क का सतह खेत्र अधिक बढ़ जाता है। सभी मनुष्यों में उभारों (Gyrus) व दरारों (Sulcus) की सामान्य रूप रेखा समान होती है।

तीन मुख्य दरारें (Sulci) प्रत्येक अर्द्धगोलार्द्ध को चार खण्डों (Lobes) में विभिाजित करती हैं, जिनमें वे स्थित होते हैं। **मध्य दरार** (Central sulcus) अर्द्धगोलार्द्ध के ऊपरी भाग से नीचे एवं आगे की ओर पार्श्वीय दरार (Lateral sulcus) के ठीक ऊपर तक फैली रहती है; **पार्श्वीय दरार** मस्तिष्क के सामने के निचले भाग के पीछे की ओर फैली रहती है तथा पैराइटोऑक्सीपिटल दरार (Parietooccipital sulcus) अर्द्धगोलार्द्ध के ऊपरी पिछले भाग के कुछ दूर तक नीचे और आगे की ओर फैली रहती है।

अर्द्धगोलार्द्ध के खण्ड हैं– **फन्टल लोब** (Frontal lobe) जो मध्य दरार के सामने एवं पार्श्वीय दरार के ऊपर स्थित रहता है; **पैराइटल लोब** (Parietal lobe) यह मध्य दरार एवं पैराइटोऑक्सिपिटल दरार के बीच तथा पार्श्वीय दरार के ऊपर स्थित रहता है; **ऑक्सिपिटल लोब** (Occipital lobe), अर्द्धगोलार्द्ध का पिछला भाग बनाता है, तथा **टेम्पोरल लोब** (Temporal lobe) यह पार्श्वीय–दरार के नीचे स्थित होता है और पीछे ऑक्सिपिटल लोब तक फैला रहता है।

प्रमस्तिष्क के दाहिने अर्द्धगोलार्द्ध द्वारा शरीर के बायें भाग की तथा बायें अर्द्धगोलार्द्ध द्वारा शरीर के दाहिने भाग की समसत चेतन एवं अचेतन क्रियाएँ संचालित एवं नियन्त्रित होती हैं। प्रमस्तिष्क बुद्धि, इच्छा, आवेश, स्मरणशक्ति जैसी उन अधिक विकसित क्षमताओं का स्थल है, जो मनुष्य को विशिष्ट रूप से सम्पन्न किए हुए हैं। प्रमस्तिष्क का विशिष्ट

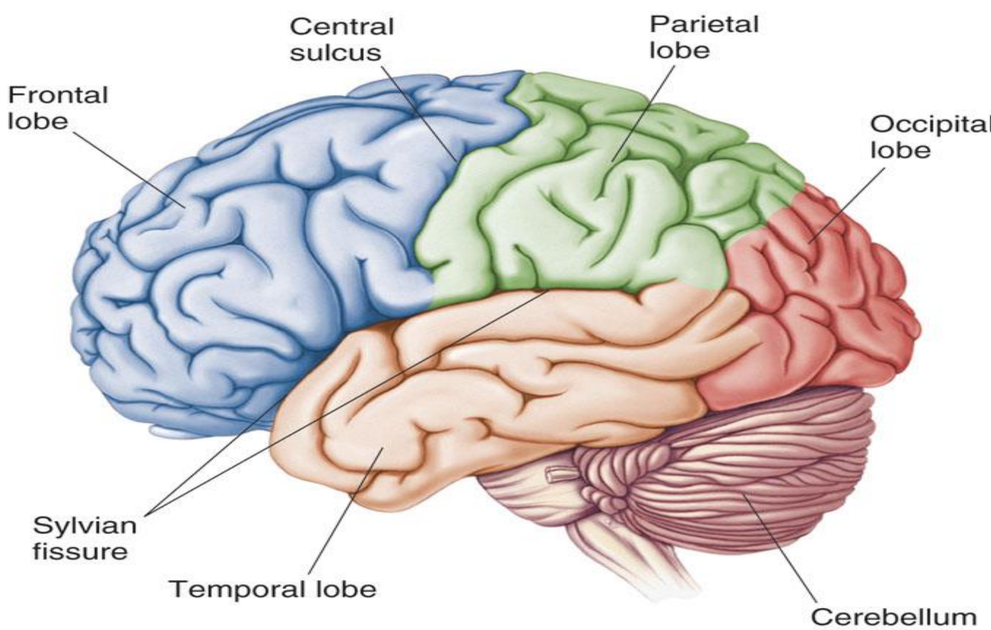

क्षेत्र विशेष प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है। ज्ञानात्मक क्रियाओं का नियन्त्रण एवं संपादन पैराइटल लोब, टैम्पोरल लोब एवं ऑक्सिपिटल लोब् द्वारा होता है। प्रेरक क्रियाओं का संचालन एवं नियन्त्रण मध्य दरार या सेन्ट्रल सल्कस के अग्रभाग से लगे हुए पिरामिड के आकार की कोशिकाओं द्वारा होता है। सोचना समझना, सीखना, चलना आदि का नियन्त्रण एएवं संचालन मस्तिष्क के कुछ विशेष क्षेत्र–संवेदीक्षेत्र (Sensory area),

प्रेरक या गतिवाही क्षेत्र (Motor area) एवं फ्रन्टल साहचर्य क्षेत्र (Frontal association) द्वारा होता है।

मध्य दरार (Central sulcus) के ठीक सामने स्थित क्षेत्र को प्रीसेन्ट्रल गाइरस (Central sulcus) कहते हैं, यह प्रेरक या गतिवाही क्षेत्र (Motor area) है, जहाँ से केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के कई प्रेरक तन्तु निकलते हैं। मध्य दरार के ठीक पीछे संवेदी क्षेत्र (Sensory area) स्थित होता है जिसे पोस्ट सेन्ट्रल गाइरस (Postcentral gyrus) कहते हैं, इसकी कोशिकाओं में कई प्रकार के संवेदनों का अर्थ समझा जाता है।

प्रमस्तिष्क के कार्यात्मक क्षेत्र (Functional areas of cerebrum)

संवेदी क्षेत्र (Sensory area)- यह मध्य दरार (Central sulcus) के ठीक पीछे पैराइटल लोब में स्थित क्षेत्र होता है यहाँ पर वेदना, शीत, तापा, दबाव एवं स्पर्श, पेशी तथा जोड़ों पर संवेदना की अनुभूति होती है।

प्रेरक क्षेत्र (Motor area)- यह मध्य दरार के ठीक सामने फ्रन्टल लोब में स्थित क्षेत्र होता है। यहाँ से ऐच्छिक पेशियों में संकुचन होना आरम्भ होता है तथा उनकी गतियों को नियन्त्रित करता है।

प्रेरक पूर्व क्षेत्र (Premotor area)- यह फ्रन्टल लोब में प्रेरक क्षेत्र के ठीक सामने स्थित क्षेत्र होता है, जो पेशियों की गति के बीच समन्वय स्थापित करने से सम्बद्ध होता है।

ब्रोकाज क्षेत्र (Broca's area)- यह लेटरल सल्कस के ठीक ऊपर तथा प्रेरक पूर्व क्षेत्र के नीचे स्थित क्षेत्र होता है। यह क्षेत्र बोलने से सम्बद्ध होता है।

वाणी क्षेत्र (Speech area)- यह लेटरल लोब के निचले भाग में स्थित क्षेत्र होता है। इसी क्षेत्र में बोले गए शब्दों को ग्रहण किया जाता है।

दृष्टि क्षेत्र (Visual area)- यह ऑक्सिपिटल लोब के निचले सिरे पर स्थित क्षेत्र होता है जिसमें वस्तुओं के चित्रों एवं अन्य दृष्टि सम्बन्धी संवेदों को ग्रहण किया जाता है तथा उनका विश्लेषण दिया जाता है।

श्रवणीय क्षेत्र (Auditory area)- यह लेटरल सल्कस के ठीक नीचे टेम्पोरल लोब में स्थित क्षेत्र होता है। यहाँ पर ध्वनि संवेद ग्रहण किए जाते हैं और उनका विश्लेषण होता है।

स्वाद क्षेत्र (Taste area)- यह लेटरल सल्कस या पार्श्वीय दरार के ठीक ऊपर संवेदी क्षेत्र की गहन परतों में स्थित क्षेत्र होता है जिसमें स्वाद संवेद ग्रहण किए जाते हैं और उनका विश्लेषण किया जाता है।

गन्ध या घ्राण क्षेत्र (Smell area)- यह टेम्पोरल लोब के अगले भाग में गहराई में स्थित क्षेत्र होता है, जिसमें गन्ध संवेद पहुँचते हैं और उनका विश्लेषण होता है।

बेसल गैंगलिया (Basal ganglia)- प्रत्येक प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध में कॉर्पस कैलोसम के नीचे श्वेत द्रव्य (तन्त्रिका तन्तु) में धँसे हुए भूरे द्रव्य (सेल बॉडीज) केकुछ छोटे–छोटे पिण्ड होते हैं, जिन्हें बेसल गैंगलिया कहा जाता है, ये हैं कॉडेट (Caudate), लेन्टिकुलर (Lenticular) एवं एमाइग्डैलॉइड न्यूक्लिाई (Amygdaloid nucli) तथा क्लॉस्ट्रम (Claustrum)। इनमें से कॉडेट एवं लेन्टिकुलर न्यूक्लिाई मिलकर कॉर्पस स्ट्रीएटम

(Carpus striatum) का निर्माण करते हैं। इनका मुख्य कार्य गति (Motion) का समन्वय और शरीर की समस्थिति (Homoeostasis) बनाए रखना है ंइनमें विकार उत्पन्न होने से हाथ–पैरों में झटकेदार गतियाँ और अस्थिरता पैदा हो जाती है।

थैलेमस (Thalamus)- प्रत्ये प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के भीतर कॉर्पस कैलोसम के ठीक नीचे तथा कॉडेट एवं लेन्टिकुलर न्यूक्लिाई के मध्यवर्ती और प्रत्येक तृतीय वेन्ट्रिक्ल के पार्श्व में तन्त्रिका कोशिकाओं एवं तन्तुओं (Nerve bodies) का एक अण्डाकार पिण्ड होता है, जिसे थैलेमस कहा जाता है। यह प्रमस्तिश्कीय कॉर्टेक्स एवं स्पाइनल कॉड (सुशुम्ना) के बीच एक महत्वपूर्ण पुनः प्रसारण केन्द्र (Relay station) के रूप में कार्य करता है। थैलेमस शरीर को प्राप्त होने वाले संवेदी आवेगों (Sensory impulses) का वर्गीकरण करने और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स तक उन्हें पहुँचाने का कार्य करता है।

हाइपोथैलेमस (Hypothalamus)- हाइपोथैलेमस, थैलेमस के नीचे और सामने तथा पिट्यूटरी गन्थि के ठीक ऊपर स्थित तन्त्रिका कोशिकाओं से बनी एक रचना है यह तृतीय वेन्ट्रिक्ल की पार्श्वीय भित्ति और तल (Floor) को बनाता है। हाइपोथैलेमस को दो भागों में विभक्त किया गया है– 1. पोस्टीरियर एवं लेटरल भाग 2. एन्टिरियर एवं सेन्ट्रल भाग। पोस्टीरियर एवं लेटरल भाग अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र (Sympathetic nervous system) के कार्यों को सम्पन्न करने में पूर्ण सहयोग देते हैं। एन्टीरियर एवं सेन्ट्रल भाग परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र (Parasympathetic nervous system) के कार्यों को सम्पन्न करते हें। इसके अतिरिक्त यह तन्त्रिका तन्तुओं को मेड्यूला आब्लांगेटा (Medulla oblogata) की ओर भेजकर श्वसन कार्य में सहायता करता है, शरीर के ताप को नियमित तथा नियन्त्रित करता है, वसा, कार्बोहाइड्रट तथा जल की पाचन क्रिया को नियमित रखता है एवं भावना (Emotions) को नियन्त्रित करने में भूमिका निभाता हैं पिट्यूटरी ग्रन्थि की सहायता से यह शरीर की समस्त अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के कार्य में सहायता करता है।

मस्तिष्क की गहराई मे ंथैलेमस एवं बेसल गैंगलिया के बीच स्थित उभरे हुए प्रेरक तन्तुओं (Motor fibres) से बना एक महत्वपूर्ण क्षेत्र होता है, जिसे **इन्टरनल कैप्सूल** कहा जाता हैं जिसके माध्यम से समस्त तन्त्रिका आवेगों (Nerve impulses) का संवहन होता है।

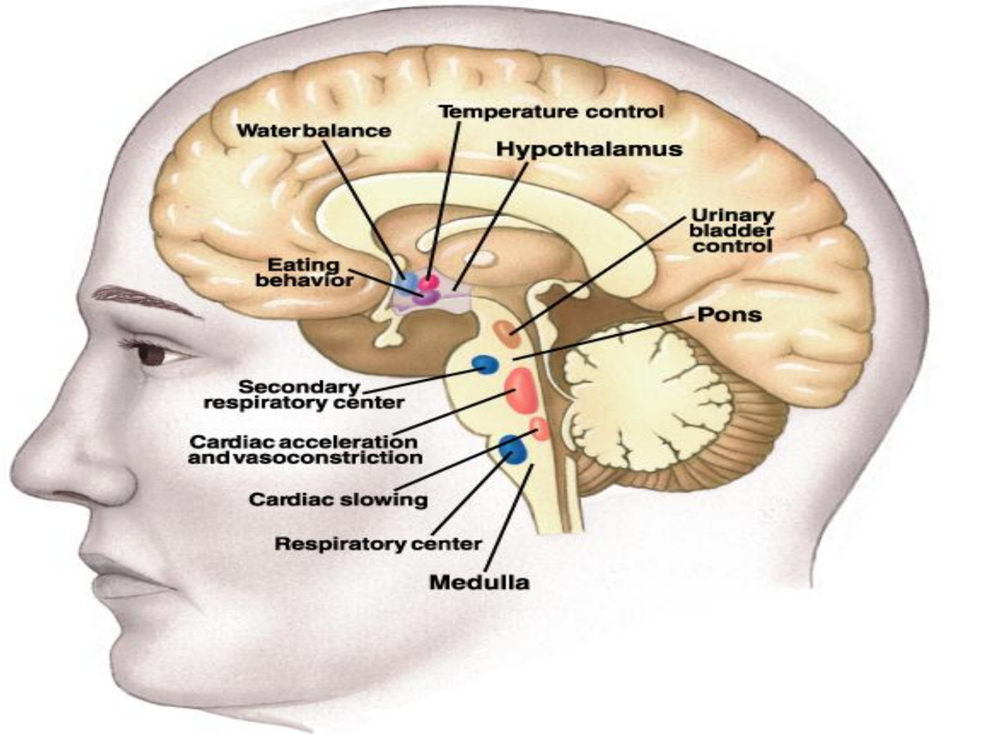

2) मध्यमस्तिष्क (Midbrain)

मध्यमस्तिष्क, अग्र–मस्तिष्क एवं पश्च–मस्तिष्क के बीच और मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) के ऊपर स्थित रहता है। इसमें सेरीब्रल पेडन्क्ल्स (Cerebral peduncles) एवं कॉपोंरा क्वाड्रिजेमिना (Corpora quadrigemina) का समावेश हाता है, जो प्रमस्तिष्कीय कुल्या (Cerebral aqueduct) को घेरे रहते हैं, जो कि तृतीय एवं चतुर्थे वेन्ट्रिकलों के बीच एक नलिका (Channel) होती है। सेरीब्रल पेडन्क्ल्स डंठलनुमा रचनाएँ होती हैं जो इसकी वेंट्रल सतह (Ventral surface) पर स्थित होती है। कॉपोंरा क्वाड्रिजेमिना डॉर्सल सतह पर चार गोलाकार उभार होते हैं जिन्हें दो जोड़े संवेदी केन्द्रों (Sensory centres) में विभक्त किया गया है। एक को सुपीरियर कोलीकुलि (Superior colliculi) तथा दूसरे को इन्फीरियर कोलीकुलि (Inferior colliculi) कहते हैं। सुपीरियर कोलीकुलि द्वारा किसी वस्तु को देखने की क्रिया सम्पन्न होती है तथा इन्फीरियर कोलीकुलि द्वारा सुनने की क्रिया सम्पन्न होती है।

सेरीब्रल पेडन्क्ल्स के समीप लाल केन्द्रक (Red nucleus) स्थित रहता है। सुपीरियर कोलीकुलि के बीच पिनीयल बॉडी (Pineal body) स्थित रहती है।

3) पश्च मस्तिष्क (Hind brain)

यह मस्तिष्क का सबसे पीछे का भाग होता है, जिसमें पोन्स (Pons), मेड्यूला ऑब्लांगेटा (Medulla oblongata) तथा अनुमस्तिष्क (Cerebellum) का समावेश रहता है।

पोन्स (Pons)- यह अनुमस्तिष्क (Cerebellum) के आगे मध्यमस्तिष्क के नीचे तथा मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर रहता है। यह मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) के बीच का भाग होता है। इसके आधारी भाग को मिडिल सेरीबेलर पेडन्क्ल (Middle cerebellar peduncle) कहते हैं। इस भाग से होकर संवेदी एवं प्रेरक तन्त्रिकाओं के तन्तु गुजरते हैं, जो अनुमस्तिष्क को मध्य मस्तिष्क एवं मेड्यूला ऑब्लांगेटा से जोड़ते हैं।

इसमें पाँचवीं, छठी और सातवीं कपालीय तन्त्रिकाओं के न्यूक्लिाई स्थित रहते हैं। यहीं से उनके कुछ तन्तु कोशिकाओं से निकल कर तन्त्रिका तन्त्र के विभिन्न भागों में चले जाते हैं।

मेड्यूला ऑब्लांगेटा (Medulla oblongata)- यह मस्तिष्क स्तम्भ का सबसे नीचे का भाग होता है, जो ऊपर की ओर पोन्स एवं नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड के बीच स्थित रहता है। इसका आकार बेलनाकार दण्ड की तरह होता है, जो औसतन 2.5 सेमी. लम्बा होता है। इसका ऊपरी भाग कुछ फूला रहता है। यह पोस्टीरियर क्रेनियल फोसा में स्थित होता है और ऑक्सिपिटल अस्थि के महा–रन्ध्र (Foramen magnum) के ठीक नीचे स्पाइनल कॉर्ड से जुड़ जाता है। इसका बाह्य भाग श्वेत द्रव्य तथा भीतरी भाग भूरे द्रव्य का बना होता है। इसमें हृदीय एवं श्वसनीय केन्द्र स्थित होते हैं, जो हृदय एवं श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करते हैं। इसमें निद्रा, निगरण एवं लालास्त्राव (Salivation) के भी केन्द्र होते हैं, जो महत्वपूर्ण कार्यों का नियमन करते हैं।

अनुमस्तिष्क या सेरीबेलम (Cerebellum)- यह प्रमस्तिष्क के आक्सिपिटल लोब के नीचे पीछे की ओर उभरा हुआ भाग होता है, जो मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर, पोन्स के पीछे कपालीय गुहा (Cranial cavity) में स्थित होता है तथा डॉर्सल सतह की ओर प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध से ढँका रहता है।

अनुमस्तिष्क दो अर्द्धगोलार्द्धों में विभक्त रहता है परन्तु बीच में एक मध्यस्थ पट्टी, जिसे वर्मिस (Vermis) कहते हैं, से जुड़ा रहता है। इसमें प्रमस्तिष्क (Cerebrum) के समान भूरा द्रव्य (Gray matter) बाहर की ओर और श्वेत द्रव्य (White matter) भीतर की ओर स्थित होता है। अनुमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (Cerebellar cortex) प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स की अपेक्षा अधिक पतला होता है। अनुमस्तिष्क का भार मस्तिष्क के कुल भार का दसवाँ भाग होता है।

अनुमस्तिष्कीय केन्द्रक (Cerebellar nuclei) श्वेत द्रव्य में गहराई में स्थित रहते हैं जो सुपीरियर सेरीबेलर पेडन्क्ल के द्वारा मध्य मस्तिष्क से, मिडिल सेरीबेलर पेडन्क्ल के द्वारा पोन्स से तथा इन्फीरियर सेरीबेलर पेडन्क्ल के द्वारा मेड्यूला ऑब्लांगेटा से जुड़े रहते हैं।

अनुमस्तिष्क ऐच्छिक पेशियों में समन्वय स्थापित करता है तथा शरीर की मुद्रा और उसके सन्तुलन को बनाए रखता है। यह पेशियों में तनाव की श्रेणी, सिन्धयों (Joints) की स्थिति और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स से आने वाली जानकारी से सम्बन्धित संवेदी आवेगों को निरन्तर प्राप्त करता रहता है।

<u>मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem)-</u>

मध्य मस्तिष्क, पोन्स एवं मेड्यूला ऑब्लांगेटा के एक साथ कई सामान्य कार्य हैं और इन्हें प्रायः संयुक्त रूप से मस्तिष्क स्तम्भ कहा जाता है। इस क्षेत्र में न्यूक्लिाइ (Nuclei) भी रहते हैं। जहाँ से कपालीय तन्त्रिकाएँ निकलती हैं।

मस्तिष्कावरण या मेनिन्जीज (Meninges)- मस्तिष्कावरण या मेनिन्जीज सुरक्षात्मक झिल्लियाँ (Membranes) हैं जो खोपड़ी एवं मस्तिष्क के बीच स्थित रहकर स्पाइनल कॉर्ड (सुषुम्ना) को पूर्णरूप से ढँके रहती हैं तथा इन्हें आघात से बचाती हैं मेनिन्जीज तीन प्रकार की होती हैं, जो बाहर से भीतर की ओर निम्न प्रकार व्यवस्थित होती हैं–

1. ड्यूरामैटर (duramater)
2. एराक्नॉइड मैटर (Arachnoid mater)
3. पाया मैटर (Piamater)

ड्यूरामैटर (Duramater)- ड्यूरामैटर सबसे ऊपरी आवरण (झिल्ली) होती है, जो कठोर सघन संयोजी ऊतकों की बनी होती है। इसमें दो परतें होती हैं, बाह्य परत खोपड़ी की अन्दरूनी सतह का अस्तर है और पेरिऑस्टिम (Periosteum) बनाती है। फोरामन मैग्नम के स्थान पर यह परत खोपड़ी की बाहरी सतह पर पेरिऑस्टियम के रूप में निरन्तर रहती है। इसकी आन्तरिक परत कुछ स्थानों पर अन्दर की ओर उभ्ज्ञरी होती है और दोहरी परत बनाती है, जो मस्तिष्क के भागों को अलग करती है एवं उन्हें स्थिति में बनाये रखने में सहायता करती है। इससे चार शिरीय साइनस (Venous sinuses) तथा चार वलय (Folds) बनते हैं। **फ्लैक्स सेरेब्राइ** (Flax cerebri) एक ऐसा वलय है, जो दो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के बीच स्थित रहता है। इसका ऊपरी सिरा सुपीरियर लोंगिट्यूडिनल या सैजाइटल शिरीय साइनस बनता है, जो मस्तिष्क से शिरीय रक्त (Venous blood) उपलब्ध करता है ंइसका निचला सिरा इन्फीरियर लोंगिट्यूडिनल शिरीय साइनस बनता है, जो फॉक्स सेरेब्राई से रक्त को खींच लेता है। **टेन्टोरियम सेरेबेलाइ** (Tentorium cerebelli) वलय प्रमस्तिष्क एवं अनुमस्तिष्क के बीच स्थित रहता है। इस वलय से तीन साइनस बनते हैं। **फॉक्स सेरेबेलाइ** (Flax cerebelli) वलय दोनों अनुमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के बीच में स्थित रहता हे। **डायाफ्रैग्मा सेली** (Diaphragma sellae) वलय स्फैनॉइड अस्थि में स्थित गड्ढ़े, सेला टर्शिका (Sella turcica) के ऊपर छत (Roof) बनाता है, जिसमें पिट्यूटरी ग्रन्थि स्थित रहती है, जो ऊपर हाइपोथैलेमस से जुड़ी होती है।

एराक्नॉइड मैटर (Arachnoid mater)- यह ड्यूरामैटर के ठीक नीचे स्थित पतला और कोमल आवरण होता है, जो तन्तु एवं लचीले ऊतकों का बना होता हैं यह एक संकरे (कैपिलरी) **सबड्यूरल अवकाश** (Subdural space) द्वारा ड्यूरामैटर से पृथक रहता है। एराक्नॉइड मैटर एवं पाया मैटर के बीच **सब–एराक्नॉइड अवकाश** (Sub-arachnoid space) रहता है। पायामैटर से जुड़ने के लिए राक्नॉइड से सब–एराक्नॉइड अवकाश से होते हुए बारीब ट्रैबीकुली (Trabeculae) निकलते हैं। सब–एराक्नॉइड अवकाश में सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (CSF) विद्यमान रहता है, जो मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड को आघातों से बचाता है।

पायामैटर (Piamater)- पायामैटर एराक्नॉइड के नीचे वाला आवरण है। यह संयोजी ऊतक की एक पतली झिल्ली होती है, जिसमें बहुत–सी रक्तवाहिनियाँ (Highly vascular) होती हैं। यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड की सतह के सम्पर्क में रहती है और मस्तिष्क के सभी मोड़ों (Convolutions) को ढँकती हुई प्रत्येक दरार (Fissure) में धँसी होती है।

मस्तिष्क के वेन्ट्रिक्ल्स (Ventricles of the brain)-

मस्तिष्क में स्थित आन्तरिक गुहाओं (Internal cavities) को वेन्ट्रिक्ल या निलय कहते हैं, जिनमें सेरिब्रो–स्पाइनल द्रव (CSF) भरा होता है। ये निम्नलिखित प्रकार होते हैं–

दो लेटरल वेन्ट्रिक्ल्स (Lateral ventricles)
तृतीय वेन्ट्रिक्ल (Third ventricle)
चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल (Fourth ventricle)

दोनों दाएँ बाएँ लेटरल वेन्ट्रिक्ल्स वृहदाकार होते हैं, जो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों (Cerebral hemispheres) में स्थित रहते हैं। लेटरल वेन्ट्रिक्ल का मुख्य भाग (Body) प्रत्येक अर्द्धगोलार्द्ध के पैराइटल लोब में स्थित रहता है और वहाँ से एन्टीरियर हॉर्न के रूप में फ्रन्टल लोब के अन्दर, पोस्टीरियर हॉर्न के रूप में आक्सिपिटल क्षेत्र के अन्दर तथा इन्फीरियर हॉर्न के रूप में टेम्पोरल लोब में उभरा रहता है। प्रत्येक लेटरल वेन्ट्रिक्ल इन्टरवेन्ट्रिकुलर फोरामन द्वारा नीचे थैलेमस के बीच में मध्य रेखा में स्थित तृतीय वेन्ट्रिक्ल से सम्बन्धित रहते हैं। **तृतीय वेन्ट्रिक्ल** दाएँ एवं बाएँ थेलेमस के बीच में लेटरल वेन्ट्रिक्ल के नीचे स्थित रहता है। यह एक नलिका जिसे प्रमस्तिष्कीय कुल्या (Cerebral aqueduct or aqueduct of sylvius) कहते हैं, द्वारा चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल से जुड़ता है। **चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल** तृतीय वेन्ट्रिकल के नीचे, पोन्स एवं मेड्यूला (आगे) तथा सेरीबेलम (पीछे) के बीच में स्थित चौरस पिरामिडी गुहा (Flattened pyramidal cavity) होती है। चतुर्थ वेनिट्रक्ल के पार्श्व में दो छिद्र होते हैं, जिन्हें फोरमिना ऑफ लुस्चका (Formina of Luschka) कहते हैं। मध्य रेखा में एक छिद्र होता है, जिसे फोरामेन ऑफ मैंगेण्डी (Foramen of Magendie) कहते हैं। इन तीनों छिद्रों के द्वार वेन्ट्रिक्ल्स एवं सब एराक्नॉइड अवकाश के बीच सम्बन्ध होता हैं मेड्यूला अब्लांगेटा के अन्स सिरे (Termination) पर चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल्स पर चतुर्थ वेन्ट्रिकल एकदम सँकरा हो जाता है और स्पाइनल कॉर्ड की केन्द्रीय नलिका (Central canal) के रूप में जारी रहता है। ये सभी वेन्ट्रिक्ल्स सेरिब्रो–स्पाइनल द्रव (CSF) से भरे रहते हैं।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (Cerebrospinal fluid-CSF)-

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव प्लाज्मा से मिलता–जुलता एक स्वच्छ, रंगहीन द्रव है, जो सबएराक्नॉइड अवकाश एवं मस्तिष्क के वेन्ट्रिक्ल्स में भरा रहता है। यह मस्तिष्क के वेन्ट्रिक्ल्स के ऊपरी भागों (Roofs) में स्थित कोशिकाओं की जालिका–कोरॉइड प्लेक्ससेस (Choroid Plexuses) द्वारा स्त्रावित होता है। औसतल व्यक्ति में यह 720 मिली. प्रतिदिन की दर से स्रावित होता रहता है। इसका दाब 60 से 140 मिली. जल तथा आपेक्षिक घनत्व 1005 होता है। दोनों लेटरल वेन्ट्रिक्ल्स से स्रावित होने के बाद यह द्रव

इन्टरवेन्ट्रिक्यूलर फोरामिन (छिद्र) से होकर तृतीय वेन्ट्रिकुल में जाता है और इसके बाद एक संकरी नली–एक्वीडक्ट और सिलवियस (Aqueduct of sylvius) के माध्यम से चतुर्थ वेन्ट्रिक्‍ल में जाता है। उसके बाद यह द्रव मैगेण्डी और लुस्चका के छिद्रों (Foramen of Magendie & Luschka) से होते हुए सबएराक्नॉइड अवकाश (Subarachnoid space) में चला जाता है जिससे यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड की सम्पूर्ण सतह पर परिसंचरित होता रहता है। अंततः यह द्रव एराक्नॉइड मैटर में स्थित छोटे–छोटे उभारों जिन्हें एराक्नॉइड विल्लाइ या ग्रैन्यूलेशन्स (Arachnoid villi or grqanulations) कहते हैं, के माध्यम से मस्तिष्कीय शिरीय विवरों (Cranial venous sinuses) में अवशोषित हो जाता है।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव की संरचना

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का संगठन निम्न प्रकार होता है–

प्रोटीन	–	20–30 मिग्रा. प्रतिशत
ग्लूकोज –	50–80	मिग्रा. प्रतिशत
यूरिया	–	10–30 मिग्रा. प्रतिशत
क्लोराइड	–	700–750 मिग्रा. प्रतिशत

इनके अतिरिक्त इसमे ंपोटैशियम, कैल्सियम, सोडियम, यूरिक अम्ल, सल्फेट, फॉस्फेट तथा क्रिएटिनिन भी मिले रहते हैं।

मस्तिष्कावरण शोध (Meningitis) आदि रोगों में इस द्रव की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे मस्तिष्क द्रव पर दाब पड़ता है और ज्वर अधिक हो जाता है। ऐसी स्थिति में लम्बर पंक्चर (Lumbar puncture) कर इस द्रव को स्पाइनल कॉर्ड से निकाल दिया जाता है।

कार्य (Functions)-

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का मुख्य कार्य नाजुक तन्त्रिका ऊतकों एवं अस्थिल गुहाओं की भित्तिओं के बीच पानी की गद्दीनुमा रचना बनाकर मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड की सुरक्षा करता है और आघात अव''ाो''ाक (Shock absorber) की भाँति कार्य करता है। यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड के चारों ओर दबाव को स्थिर बनाये रखता है और व्यर्थ एवं वि''ाक्त पदार्थों को बाहर ले जाता है। पोषक तत्व एवं ऑक्सीजन भी मस्तिष्क को इसी के द्वारा पहुँचाए जाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न – रिक्ता स्थांनों की पूर्ति कीजिए....

1.. पूर्णरूप से विकसित मानवीय मस्तिष्का शरीर के भार का लगभग 1 / 50 होता है और .... में अवस्थित रहता है।

पप. विकास की आरम्भिक अवस्थास में मस्तिष्कक को .... भागों में विभाजित किया जाता है।

पपप. .... केन्द्री य तंत्रिका तन्त्र का प्रमुख तथा मस्तिष्कत का सबसे बड़ा भाग है।

पअ. प्रमस्तिष्क. की बाहरी सहत .... कहलाती है।

अ. हाइपोथैलेमान .... के नीचे और सामने तथा ....ग्रन्थि के ठीक ऊपर स्थित तंत्रिका कोशिकाओं से बनी एक रचना है।

10.4 सारांश–

प्रिय पाठकों उपरोक्त. विवरण से आप जान चुके होंगे कि मस्तिष्क की संरचना तथा कार्यप्रणाली क्या है। मस्तिष्क की संरचना अखरोट के समान बतायी गयी है तथा इसका भार मानव शरीर के कुलभार का लगभग 1/50 होता है। इसके अग्रमस्तिष्क ,मध्यमस्तिष्क तथा प्रश्चमस्तिष्क के भेद से मुख्य रूप से तीन प्रकार है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि मस्तिष्क तंत्रिका तन्त्र का आधार है। यदि किसी व्यक्ति का मस्तिष्क ठीक ढ़ग से कार्य न करें तो उनके शरीर का अन्य कोई अंग भी सुचारू ढ़ग से अपना कार्य नहीं कर सकता। इसलिए शरीर के सभी अंग ठीक प्रकार से कार्य करते रहें, इसके लिये मस्तिष्क को सुदृढ़ एवं स्वस्थ्य होना अति आवश्यक है।

10.5 शब्दावली

अग्रमस्तिष्क – आगे वाला मस्तिष्क ।
पश्चतमस्तिष्क – पीछे वाला मस्तिष्क।
तंत्रिका कोशिका – तंत्रिका तन्त्र की सबसे छोटी इकाई, जिसे न्यूरॉन भी कहते है।

10.6 अभ्यांस प्रश्नों के उत्तर

1. कपाल गुहा
2. तीन
3. प्रमिस्तष्क या सेरीब्रम
4. प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स
5. थैलेमान, पिट्यूटरी

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
3 मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन – मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. Essentials of Medical Physialogy – K. Sembulingam & Prema Sembulingam, Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्नक 1 मस्तिष्क की संरचना का वर्णन कीजिए।

प्रश्नक 2 मस्तिष्क के कार्यों का विवेचन कीजिए ।

इकाई–11 मेरुरज्जु की संरचना एवं कार्य

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य्
11.3 तंत्रिका तन्त्र
11.4 तंत्रिका तन्त्र के विभाग
11.5 सुषुम्ना या मेरूरज्जु की संरचना तथा कार्य
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ् सूची
11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों इससे पूर्व इकाई में आपने मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यों का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुवे हम केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र के दूसरे महत्वपूर्ण मेरूरज्जु की संरचना तथा कार्यों का अध्ययन करेगें।
पाठकों मस्तिष्क की भाति ही मेरूरज्जु भी तंत्रिका तन्त्र का महत्वपूर्ण अंग है। मेरूरज्जु की किस प्रकार की संरचना होती है। यह किस प्रकार से कार्य करती है इत्यादि जिज्ञासाओं का समाधान इस इकाई में किया जायेगा।

12.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- मेरज्जू की संरचना को स्पष्ट– कर सकेंगे।
- मेरज्जू की कार्यप्रणाली का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 तन्त्रिका तन्त्र

तन्त्रिका तन्त्र शरीर का एक महत्वपूर्ण तन्त्र या संस्थान है, जो सम्पूर्ण शरीर की तथा उसके विभिन्न भागों एवं अंगों की समस्त क्रियाओं का नियन्त्रण, नियमन तथा समन्वयन करता है और समस्थिति (Homeostasis) बनाये रखता है। शरीर के सभी एवं अनैच्छिक कार्यों पर नियन्त्रण तथा समस्त संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाना इसी तन्त्र का कार्य है। यह शरीर के समस्त अंगों के आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण के परिवर्तनों के अनुसार द्रुत समंजन संभव बनाता है तथा तन्त्रिका आवेगों (Nerve impulses) का संवहन करता है।

तन्त्रिका तन्त्र शरीर की अंसख्य कोशिकाओं की क्रियाओं में एक प्रकार का सामंजस्य उत्पन्न करता है ताकि सम्पूर्ण शरीर एक इकाई के रूप में कार्य कर सके। संवेदी तन्त्रिकाओं (Sensory nerves) द्वारा शरीर के अन्दर एवं बार वातावरणगत

परिवर्तन या उद्दीपन (Stimuli) तन्त्रिका तन्त्र के सुषुम्ना या स्पाइनल कॉर्ड तथा मस्तिष्क में पहुँचते हैं। जहाँ पर उनका विश्लेषण होता है और अनुक्रिया (Response) में प्रेरक तन्त्रिकाओं (Motor nerves) द्वारा शरीर की विभिन्न क्रियायें संपादित होती है।

तन्त्रिका तन्त्र तन्त्रिका ऊतकों (Nervous tissues) से बना होता है, जिनमें तन्त्रिका कोशिकाओं या न्यूरॉन्स (Neurones) और इनसे सम्बन्धित तन्त्रिका तन्तुओं (Nerve fibres) तथा एक विशेष प्रकार के संयोजी ऊतक जिसे न्यूरोग्लिया (Neuroglia) कहते हैं, का समावेश होता है।

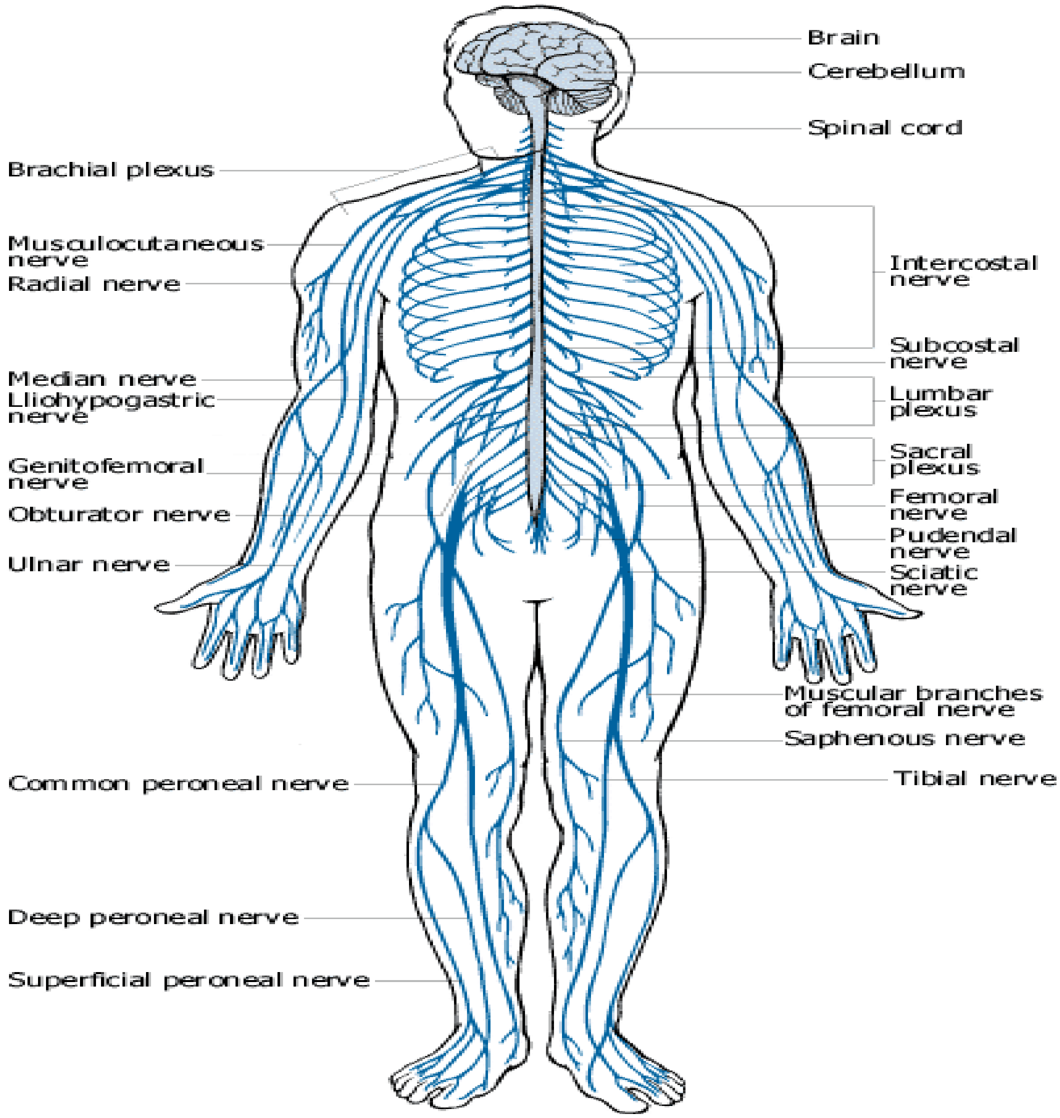

तन्त्रिका तन्त्र के विभाग

तन्त्रिका तन्त्र के निम्न तीन भाग होते हैं–

1. केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central nervous system)
2. परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र (Peripheral nervous system)

3. स्वायत्त तन्त्रिका तन्त (Autonomic nervous system)

केन्द्रिय तन्त्रिका तन्त्र (Central Nervous System)- इस भाग में मस्तिष्क एवं सुषुम्ना (Spinal cord) का समावेश होता है तथा यह मस्तिष्कावरणों (Meninges) से पूर्णतया ढँका रहता है।

12.2 सुषुम्ना या मेरुरज्जू

इसे मेरुरज्जु या रीढ़ भी कहते हैं। शरीर के पृष्ठ भाग में ऊपर से देखने पर एक लम्बी अस्थि करोटि से लेकर नितम्ब तक दिखाई देती है। यह केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र का एक भाग है , जो एक मोटी एवं दृढ़ रस्सी की भाँति लम्बर वर्टिब्रा तक वर्टिब्रल कॉलम में सुरक्षित रहती है। वयस्क में इसकी लम्बाई लगभग 45 से.मी. होती है। यह मेड्यूला ऑब्लांगेटा के निचले भाग से आरम्भ होकर आक्सिपिटल अस्थि के महारन्ध्र–फोरामेन मैग्नम से निकलकर वर्टिबल कॉलम से होती हुई पहले लम्बर वर्टिब्रा के स्तर पर समाप्त होती है। यह अपने निचले सिरे पर शंकु–आकार आकृति के रूप में सँकरी हो जाती है, तब इसे कोनस मेड्यूलेरिस (Conus medullaris) कहते हैं, इसके सिरे से फाइलम टर्मिनेली (Filum terminale) नीचे की ओर कॉक्सिक्स तक जाते हैं, जो तन्त्रिका–मूलों (Nerve roots) से घिरे रहते हैं, इन्हें कॉडा इक्विनी (Cauda equine) कहते हैं।

स्पाइनल कॉर्ड की सम्पूर्ण लम्बाई से स्पाइनल तन्त्रिकाओं के जोड़े निकलते हैं। यह मोटाई में कुछ भिन्नता लिए रहती है, सर्वाइकल एवं लम्बर क्षेत्रों में यह अन्य भागों की अपेक्षा अधिक मोटी होती है, जहाँ से यह हाथ–पैरों को अत्यधिक तन्त्रिका सम्पूर्ति करती है। स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (Spinal nerves) लम्बर फोरामेन एवं सैक्रल फोरामेन से होती हुई वर्टिब्रल कैनाल से बाहर निकलती हैं। स्पाइनल कॉर्ड में पीछे एवं सामने की ओर गहरी दरार (Fissure) रहती है, जिससे यह प्रमस्तिष्क की भाँति दाएँ एवं बाएँ भाग के रूप में पूर्णतः विभाजित रहती है।

मस्तिष्क के समान स्पाइनल कॉर्ड भी श्वेत एवं भूरे द्रव्य से बनी होती है। परन्तु इसमें श्वेत द्रव्य सतह पर तथा भूरा द्रव्य मध्य में रहता है। श्वेत द्रव्य (White matter) स्पाइनल कॉर्ड एवं मस्तिष्क के बीच फैले हुए तन्तुओं से बना होता है। इसमें प्रेरक एवं संवेदी तन्तु (Motor and sensory fibres) होते हैं। प्रेरक तन्तु प्रमस्तिष्क एवं अनुमस्तिष्क के प्रेरक केन्द्रों से नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड की प्रेरक कोशिकाओं तक फैले रहते हैं। संवेदी तन्तु स्पाइनल कॉर्ड की संवेदी कोशिकाओ से कॉर्ड के ऊपर की ओर मस्तिष्क के संवेदी केन्द्रों तक फैले रहते हैं। इन तन्तुओं के द्वारा शरीर विभिन्न अंगों से मस्तिष्क को संवेदना पहुँचाती है तथा मस्तिष्क से पेशियों को उत्तेजना पहुँचाती है।

अनुप्रस्थ काट में स्पाइनल कॉर्ड का भूरा द्रव्य (Gray metter) अंग्रेजी के 'H' अक्षर की आकृति में व्यवस्थित दिखाई देता है। भूरे द्रव्य के मध्य में ऊपर से नीचे तक एक छिद्र रहता है जिसे केन्द्रीय नलिका (Central canal) कहते हैं। यह नलिका मस्तिष्क के चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल से जुड़ी रहती है और इसमें सेरिब्रोस्पाइनल द्रव भरा रहता है।

इस भूरे द्रव्य के चार हॉर्नस (Horns) होते हैं– दो आगे और दो पीछे। आगे की ओर दोनों उभरे हुए भागों को एन्टिरियर हॉर्न्स (Anterior horns) तथा पीछे की ओर उभरे दोनों भागों को पोस्टीरियर हॉर्न्स (Posterior horns) कहते हैं। कॉर्टेक्स की भाँति स्पाइनल कॉर्ड के भरे द्रव्य में केवल तन्त्रिका कोशिकाएँ (Nerve cells) पायी जाती है।

एन्टीरियर हॉर्न्स से निकलने वाली तन्त्रिकाएँ धड़, पैर एवं बाहुओं की पेशियों में जाती हैं, जो प्रेरक तन्त्रिकाएँ (Motor nerves) कहलाती हैं। पोस्टीरियर हार्न्स से निकलने वाले तन्तु शरीर के विभिन्न भागों की त्वचा में जाते हैं, जिससे त्वचा को प्राप्त होने वाली संवेदनाएँ पोस्टीरियर हॉर्न्स में पहुँचाती हैं, इसलिए ये संवेदी तन्त्रिकाएँ (Sensory nerves) कहलाती है।

स्पाइनल कॉर्ड में संवेदी तन्त्रिका पथ (अभिवाही या आरोही)

[Sensory nerve tracts (afferent or ascending) in the spinal cord]-

स्पाइनल कॉर्ड के माध्यम से मस्तिष्क में संवेदन मुख्यतः दो स्रोतों– 1. त्वचा, 2. टेन्डन्स, पेशियों एवं सन्धियों से पहुँचते हैं। त्वचा में विद्यमान संवेदी रिसेप्टर्स या तन्त्रिका अन्त (Nerve endings) को कुटेनियस रिसेप्टर्स (Cutaneous receptors) कहा जाता है, जो दर्द, गमी, ठण्ड, स्पर्श एवं दबाव से उद्दीपित होते हैं। इनसे उत्पन्न तन्त्रिका आवेग (Nerve impulse) तीन न्यूरॉन्स द्वारा दूसरी ओर के प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध के संवेदी क्षेत्र में संचरित होते हैं। जहाँ इनके अनुभूति और स्थिति (Location) का पता चलता है।

टेन्डन्स, पेशियों एवं सन्धियों में विद्यमान संवेदी रिसेप्टर्स या तन्त्रिका अन्त (Nerve endings) को प्रोप्रियोसेप्टर्स (Proprioceptors) कहा जाता है, जो इनके फैलने (Stretch) से उद्दीप्त होते हैं। आँखों एवं कानों से आने वाले आवेगों (Impulses) के साथ इनका सम्बन्ध शरीर के सन्तुलन एवं उसकी मद्रा (Posture) को बनाए रखने से सम्बद्ध है। ये तन्त्रिका आवेग दो स्थानों पर पहुँचते हैंः–1.तीन न्यूरॉन तन्त्र द्वारा आवेग दूसरी ओर के प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध के संवेदी क्षेत्र में पहुँचते हैं तथा 2. दो न्यूरॉन तन्त्र द्वारा तन्त्रिका आवेग उसी ओर के अनुमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध में पहुँचते हैं।

स्पाइनल कॉर्ड में प्रेरक तन्त्रिका पथ (अपवाही या अवरोही)

[Motor nerve tracts (efferent or descending) in the spinal cord]

न्यूरॉन्स, जो तन्त्रिका आवेगों को मस्तिष्क से दूर संचारित करते हैं, प्रेरक न्यूरॉन्स (अपवाही या अवरोही) होते हैं। प्रेरक न्यूरॉन के उद्दीपित होने से कंकालीय (रेखित, ऐच्छिक) एवं चिकनी (अनैच्छिक) तथा हृदपेशी में संकुचन (Contraction) होता है तथा ग्रन्थियों के स्त्राव स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र की तन्त्रिकाओं द्वारा नियन्त्रित रहते हैं।

ऐच्छिक पेशी गति (Voluntary muscle movement)-

प्रेरक तन्त्रिका आवेग प्रमस्तिष्क से स्पाइनल कॉर्ड के तन्त्रिका तन्तुओं की पूलिकाओं (Bundles of nere fibres) से होकर शरीर की ऐच्छिक पेशियों (voluntary muscles) में संचारित होते हैं, जिनमें संकुचन होता है और सन्धियों में गति होती है। यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर होती है। यद्यपि, कुछ तन्त्रिका आवेग जिनके कंकालीय पेशियों में संकुचन होता है, वे मध्यमस्तिष्क, मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) तथा अनुमस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। इस तरह की अनैच्छिक किया पेशी कियाशीलता के

समन्वय के साथ सम्बद्ध होती है, जैसे जब अत्यन्त हल्की सी गति की आवश्यकता होती है तथा शरीर की मुद्रा एवं सन्तुलन को स्थिर बनाए रखने की आवश्यकता होती है, तो इन पर इच्छा का नियन्त्रण नहीं होता।

अपवाही (Efferent) तन्त्रिका आवेग मस्तिष्क से शरीर को स्पाइनल कार्ड में स्थित तन्त्रिका तन्तुओं की पूलिकाओं के या पथों के माध्यम से संचारित होते हैं। मस्तिष्क से पेशियों तक जाने वाले प्रेरक पथ (Motor pathways) दो प्रकार के न्यूरॉन्स से बने होते हैं। जो निम्नलिखित हैं–

1. पिरामिडल (Pyramidal)
2. एक्स्ट्रा पिरामिडल (Extra pyramidal)

प्रेरक तन्तु जो परिमिडल पथों का निर्माण करते हैं वे इन्टरनल कैप्सूल (Internal capsule) से गुजरते हैं तथा ऐच्छिक (कंकालीय) पेशियों के लिए आवेगों का मुख्य पथ होते हैं। जो प्रेरक तन्तु एक्स्ट्रा पिरामिडल पथों का निर्माण करते हैं वे इन्टरनल कैप्सूल से नहीं गुजरते हैं तथा मस्तिष्क के कई भागों में बेसल न्यूक्लाइ सहित एवं थैलेमस से जुड़े रहते हैं।

ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन (The upper motor neurone)-

इस प्रकार के न्यूरॉन अपनी कोशिका काय (Betz's cell) प्रमस्तिष्क के प्रीसेन्ट्रल सल्कस क्षेत्र में स्थित होती है। इसके अक्ष तन्तु (Axons) इन्टरन्ल कैप्सूल, पोन्स एवं मेड्यूला से होते हुए गुजरते हैं। नीचे स्पाइनल कॉर्ड में पहुँचकर ये श्वेत द्रव्य (White matter) के लेटरल कॉर्टिको– स्पाइनल पथ (Lateral corticospinal stracts) बनाते हैं तथा तन्तु भूरे द्रव्य के एन्टीरियर कॉलम में निचले प्रेरक न्यूरॉन्स (Lower motor neurons) की कोशिका कायों (Cell bodies) के साथ सम्बद्ध होकर अन्तर्ग्रथित (Terminate) हो जाते हैं। इन ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन्स के अक्ष तन्तु पिरामिडल पथ तथा मेड्यूला आम्ब्लांगेटा में पहुँचकर लम्बा सँकरा उभार हैं जिसे पिरामिड (Pyramid) कहते हैं।

निचला प्रेरक न्यूरॉन (The lower motor neurone)-

निचले प्रेरक न्यूरॉन की कोशिका काय स्पाइनल कॉर्ड के भूरे द्रव्य के एन्टीरियर हॉर्न में स्थित होती हे। इसका अक्ष तन्तु (Axon) एन्टीरियर रूट (Anterior root) के द्वारा स्पाइनल कॉर्ड से निकलता है तथा आने वाले संवेदी तन्तुओं से जुड़कर मिश्रित स्पाइनल तन्त्रिका (Mixed spinal nerve) बनाता है, जो इन्टर वर्टिब्रल फोरामेन से होकर गुजरती हैं पेशी में इसके अन्त (Termination) के समीप एक्सोन बहुत से सूक्ष्म तन्तुओं में विभाजित हो जाता है, जो प्रेरक अंत्य प्लेट्स (Motor end plates) बनाता है, इनमें से प्रत्येक अंत्य प्लेट किसी पेशीतन्तु की भित्ति के संवेदनशील क्षेत्र से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक तन्त्रिका की प्रेरक अंत्य प्लेट्स से तथा पेशी तन्तुओं से निकी वे पूर्ति (Supply) करती हैं, एक प्रेरक इकाई (Motor unit) बनती है। एसीटाइलोकोलीन (Acetylcholine) नामक न्यूरोट्रान्समीटर जो तन्त्रिका आवेग को तन्तु मिलन स्थान (Synapse) को पार करके पेशी तन्तु में पहुँचता है, जिससे पेशी तन्तु उद्दीप्त (Stimulate) होता है और उसमें संकुचन (Contraction) होता है। किसी पेशी की

सभी प्रेरक इकाईयाँ एक साथ संकुचित होती हैं ताि संकुचन की शक्ति एक ही समय में क्रियाशील होने वाली प्रेरक इकाईयों की संख्या पर निर्भर रहती है।

कंकालीय पेशियों को तन्त्रिका आवेग सामान्यतः निचले प्रेरक न्यूरॉन ही संचारित करते हैं। इन न्यूरॉन्स की कोशिका काय मस्तिष्क के विभिन्न भागों से उत्पन्न होने वाले ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन्स तथा कुछ न्यूरॉन्स जो स्पाइनल कॉर्ड में उत्पन्न एवं अन्त होते हैं, से प्रभावित रहती है। इनमें से कुंछ न्यूरॉन्स निचले प्रेरक न्यूरॉन की कोशिका कायों को उद्दीप्त करते हैं, जबकि कुछ अन्यों का अवरोधक प्रभाव होता है। कुल मिलकर ये पेशी गति में समन्वय बनाए रखते हैं।

अनैच्छिक पेशी गति (Involuntary muscle movement)-

ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन की मध्यमस्तिष्क, मस्तिष्क स्तम्भ, अनुमस्तिष्क अथवा स्पाइनल कॉर्ड में सिथत कोशिकाएँ शरीर की मुद्रा (Posture) एवं सन्तुलन को बनाये रखने से सम्बन्धित पेशी सक्रियता (Suscle) को प्रभावित करती हैं, पेशी गति में समन्वय बनाये रखती हैं तथा पेशी तान (Muscle tone) को नियन्त्रित करती हैं।

अभ्यास प्रश्न– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. तंत्रिका तन्त्र शरीर की असंख्य ....की क्रियाओं में एक प्रकार का सामंजस्य उत्पन्न करता है।

2. .... तंत्रिका ऊतकों से बना होता है।

3.एक वयस्क व्यक्ति में मेरूरज्जु की लम्बाई लगभग .... होती है।

4. मस्तिष्क के समान मेरूरज्जु भी .... द्रव्य से बनी होती है।

11.6 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार उपर्युक्त. विवेचन से असप तंत्रिका तन्त्रद क्या है। इसके कितने प्रकार है। मेकरज्जूक क्या् है और इस की कार्यप्रणाली क्या. है, इत्याि‍द तत्वोंन को भली भाति जान चुके है। पाठकों यदि संक्षेप में कहा जाये तो रीढ़ की हड्डी ही हमारे शरीर का मुख्यक आधार है। यदि इस आधार का थोड़ा सा भी नुकसान होता है। कहीं पर भी चोट आती है तो इससे हमारी समूची शारीरिक प्रणाली प्रभावित होती है। अतरू मस्तिष्कन के साथ–साथ मेकरज्जू का भी सुदृढ़ एवं स्वरस्थ्। होना अत्योधिक आवश्यनक एवं महत्वयपूर्ण है।

11.7 शब्दावली

अनैच्छिक कार्य– जो कार्य हमारी इच्छाजनुसार नहीं होते है।

संवेदी तंत्रिकायें – वे तंत्रिकायें जो मस्तिष्क में संवेदनाओं को लेकर जाती है।

प्रेरक तंत्रिकायें – वे तंत्रिकायें जो वापस मस्तिष्कु से संवेदनाओं एवं सूचनाओं को लेकर आती है।

न्यूरॉन – तंत्रिका तर्न्त्की सबसे छोटी ईकाई जिसे तंत्रिका कोशिका भी कहते है।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.कोशिकाओं ।

2.तंत्रिका तन्त्रभ ।

3.45 सेमी0 ।
4.श्वेत एवं भूरे ।

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
3 मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन – मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. Essentials of Medical Physialogy – K. Sembulingam & Prema Sembulingam, Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– मेरूरज्जु की संरचना तथा कार्यप्रणाली को स्पष्ट कीजिए।

इकाई–12 नेत्र, कर्ण एवं नासिका की संरचना एवं कार्य

12.1प्रस्तावना
12.2उद्देश्य
12.3ज्ञानेन्द्रियां
12.4नासिका की संरचना तथा कार्य
12.5कर्ण की संरचना तथा कार्य
12.6नेत्र की संरचना तथा कार्य
12.7सारांश
12.8शब्दावली
12.9अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.11निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठको, जैसा कि आप जानते है कि जिन साधनों के द्वारा हम बाहरी जगत का ज्ञान या सूचना प्रापत करते है। उन्हें ज्ञानेन्द्रियां कहा जाता है। ये ज्ञानेन्द्रियां पांच है– नेत्र, कर्ण, घ्राण, जिहवा तथा त्वक या त्वचा। इनमें से प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय के अपने–अपने विषय हैं, जैसे नेत्र का रूप या दृश्य, कर्ण का ध्वनि, घ्राण का सुगन्ध, जिहवा का सवाद तथा त्वचा का स्पर्श! यदि ये ज्ञानेन्द्रियां नहीं होती तो न ही हम किसी भी रूप को देख पाते, न किसी ध्वनि को सुन पाते, न किसी गन्ध के अनुभव कर पाते , न किसी पदार्थ का स्वाद ले पाते और न ही किसी के स्पर्श को महसूस कर पाते है। बाहय व्यक्ति, वस्तुओं ,घटनाओं, सूचनाओं का ज्ञान या बोध कराने के कारण ही इन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है। इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों का ही अपना–अपना महत्व है। कोई ीाी एके इन्द्रिया अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है।

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– घ्राण, कर्ण तथा नेत्र ज्ञानेन्द्रिय की संरचना तथा कार्यों का अध्ययन करना।

इन ज्ञानेन्द्रियों का अध्ययन करने से पहले यह जानना आवश्यक हैं कि ज्ञानेन्द्रिय क्या हैं ?

तो आइये चर्चा करते है, ज्ञानेन्द्रियों के बारे में।

12.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- ज्ञानेन्द्रियों के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ज्ञानेन्द्रिय कितने प्रकार की होती है, इसका वर्णन कर सकेंगे।
- नासिका की संरचना तथा कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- कान की संरचना तथा कार्यों का विवेचन कर सकेंगे।

- नेत्र की संरचना एवं कार्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- नेत्र, कर्ण एवं नासिक की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।

12.3 ज्ञानेन्द्रिया

बाह्य जगत के ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं (Sensations) के द्वारा ही संभव होती है। संवेदना का अनुभव तभी संभव है जब उससे संबन्धित संवेदी तन्त्रिकाओं (Sensory nerves) को उचित उद्दीपन (Stimulus) प्राप्त हो सके। उद्दीपनों के उत्पन्न हो जाने पर और उनके मस्तिष्क या स्पाइनल कॉर्ड में संचारित होने के बाद उनका विश्लेषण केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के द्वारा होता है और हम उस विशेष संवेदना का अनुभव मस्तिष्क के द्वारा अनुवादित होने पर ही करते हैं। शरीर ध्वनि, प्रकाश, गंध, दाब आदि के सांवेदनिक अंगों (Special sense organs) पर निर्भर करती है, जो शरीर के विभिन्न भागों में स्थित होते हैं।

विशिष्ट सांवेदनिक अंगों से तन्त्रिका तन्तुओं का सम्बन्ध रहता है। तन्त्रिका तन्तुओं का विशिष्ट सांवेदनिक अंगों में अन्त (Termination) होने से पहले ये अपने न्यूरोलीमा (Neurolemma) तथा मायलिन आवरण (Myelin sheath) का त्याग कर देते हैं। प्रत्येक संवेदी तन्त्रिका का अन्तिम भाग कुछ विशेष प्रकार का बना होता है, जिसे अन्तांग (End organ) कहते हैं और ये अन्तांग ही संवेदन (Sense) के विशेष अंग होते हैं। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्धित अनेक उपांग होते हैं, जो उद्दीपन को अन्तांग तक संचारित (Transmit) करते हैं। परन्तु, वास्तविक उद्ददीपन अन्तांग में ही होता है और वहाँ से यह मस्तिष्क में पहुँचता है, जहाँ इसका विश्लेषण होता है और विशिष्ट संज्ञा (Special sense) का ज्ञान होता है।

मानव शरीर में निम्न पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense organs) होती हैं, जिनके द्वारा बाह्य जगत का ज्ञान होता है। ये हैं–

1. **स्पर्शेनिद्रय या त्वचा (Skin)-** इससे स्पर्श, दाब, पीड़ा, वेदना, ताप (ceat) एवं शीत (cold) का ज्ञान होता है।
2. **स्वादेन्द्रिय या जीभ (Tongue)-** इससे किसी वस्तु को चखने से उसके स्वाद का ज्ञान होता है।
3. **घ्राणेन्द्रिय या नाक (Nose)-** यह किसी वस्तु की गंध का ज्ञान कराती है।
4. **श्रवणेन्द्रियाँ या कान (Ears)-** कान हमें विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का ज्ञान कराते हैं।
5. **द्रश्येन्द्रियाँ या आँख (Eyes)-** इनके द्वारा संसार की वस्तुओं को देखा जाता है।

12.4 नासिका की संरचना एवं कार्य

नासा गुहा (Nasal cavity) की श्लेष्मा, तीन छोटी अस्थियों (Nasal conchae) द्वारा कई कक्षों में बँट जाती है, जो नाक की बाहरी भित्ति से आरम्भ होते हैं। तीनों अस्थियों (Nasal conchae) के कारण इस स्थान पर तीन छोटे टीलों के समान उभार बन जाते हैं। सम्पूर्ण

क्षेत्र पर नेजल म्यूकस मेम्ब्रेन बिछी रहती है, जो कॉल्यूमनर सिलिएटेड एपीथीलियम से बनी हैं। इन कोशिकाओं के स्राव से नाक की म्यूकस मेम्ब्रेन तर, चिकनी तथा चिपचिपी–सी रहती है।

नेजल कोंचा से नासिका में ऊर्ध्व, मध्य तथा निम्न क्षैतिज खाँचें बन जाती हैं। अस्थि निर्मित तीनों खाँचें नासिका के प्रत्येक आधे भाग को अपूर्ण रूप से चार कक्षों में विभाजित के प्रत्येक आधे भाग को अपूर्ण रूप से चार कक्षों में विभाजित कर देती है, जो सामने से पीछे की ओर जाते हैं तथा एक के ऊपर एक स्थित रकते हैं। प्रष्वसिकत वायु, नीचे के तीन कक्षों से हाकर जाती है, परतु सबसे ऊपर वाले में सामान्य रूप से नहीं जाती है। घ्राण (Smell) के अंग, सबसे ऊपर वाले कक्ष की घ्राण श्लेष्मिक कला (Olfactory mucous membrane) में स्थित होते हैं। घ्राण कोशिकाओं के अन्तांत इसी मेम्ब्रेन में फैले रहते हैं। नासा गुहा का सबसे ऊपर वाला कक्ष एक अंधगुहा या पॉकेट के समान है, जिसका वही अंत हो जाता है। घ्राण उपकला (Olfactory epithelium) घ्राण (गंध) के लिए संवेदनशील होती है, जो नाक की छत के समीप होती है। इन ग्रन्थियों का स्राव समस्त सतह को तर रखता है तथा गंधयुक्त वाष्पों (Odorous vapours) को घोलने का कार्य करता हैं सहारा देने वाली कोशिकाओं का आधार (Base) ऊपर की ओर रहता है और एक सतही मेम्ब्रेन बनाता है, जिसके बीच के रिक्त स्थानों में से घ्राण कोशिकाओं (Olfactory cells) के बाल के समान प्रवर्ध (Cilia) बाहर की ओर निकले रहते हैं।

वस्तुतः द्विध्रुवीय तन्त्रिका कोशिकाएँ (Bipolar nerve cells) ही घ्राण की **रिसेप्टर कोशिकाएँ** (Receptor cells) होती हैं। मानव में ये 25 मिलियन से अधिक होती हैं तथा प्रत्यक सहारा देने वाली कोशिकाओं से घिरी रहती है। प्रत्येक रिसेप्टर कोशिका में एक गोल न्यूक्लियस तथा एक लम्बे धागे के रूप में प्रोटोप्लाज्म रहता है। ये कोशिकाएँ म्यूकस मेम्ब्रेन में घँसी रहती है। प्रत्येक कोषिका के दो प्रवर्ध (Processes) दोनों ध्रुवों पर से निकले रहते हैं। कोशिकाएँ लम्बे अक्ष में एक–दूसरी से सटी हुई, सतह से लम्बबद्ध दिशा में (Perpendicular) खड़ी–सी स्थित रहती हैं। इन कोशिकाओं के पार्श्वतन्तु (डेण्ड्राइट) छोटे आकार के अभिवाही प्रवर्ध रिक्त स्थानों से निकले रहते हैं। ऊपर ये थोड़े प्रसारित होकर ऑल्फेक्टरी रॉड्स बनाते हैं तथा विस्फारित घ्राण स्फोटिका (Bulbous olfactory vesicle) में समाप्त हो जो हैं। प्रत्येक स्फोटिका (Vesicle) से 6–20 लम्बे बाल के समान प्रवर्ध (Cilia) निकले रहते हैं, जो सतही एपीथीलियम (Surface epithelium) को आच्छादित किए रहते हैं। इन्हें **घ्राण–रोम–कोशिका** कहते हैं। स्फोटिका (Vesicle) एवं इसके प्रवर्ध (Cilia) ही घ्राण के अन्तांग (Olfactory end organs) होते हैं। रिसेप्टर कोशिकाओं के अर्क्षतन्तु (एक्सोन्स) जो **घ्राण तन्त्रिका** (Olfactory nerve) का निर्माण करते हैं, दूसरे सिर`से निकलकर ऊपर उठते हैं और इथमॉइड अस्थि की छिद्रित प्लेट (Cribriform plate) से होकर गुजरते हैं और घ्राण–बल्ब्स (Olfactory bulbs) में पहुँचते हैं। **घ्रण बल्ब्स** भूरे द्रव्य की विशेष संरचनाएँ हैं, जो मस्तिष्क के घ्राण–क्षेत्र (Olfactory region) के स्तम्भाकार विस्तार होते हैं। घ्राण–बल्ब के अन्दर रिसेप्टर कोशिकाओं के टर्मिनल एक्सॉन्स (अक्ष तन्तुओं के अन्तांग) गुच्छित कोशिकाओं (Tufted cells), ग्रैन्यूल कोशिकाओं (Granule cells) एवं माइट्रल कोशिकाओं

(Mitral cells) के डेण्ड्राइट्स (पार्श्वतन्तुओं) के साथ तन्तुमिलन (Synapse) होता है। जिससे एक विशिष्ट गोलकार अंग **घ्राण गुच्छिका या ऑल्फेक्टरी ग्लोमेरूलाई** (Olfactory glomeruli) बनता है। प्रत्येक ग्लोमेरूलस (Glomerulus) रिसेप्टर कोशिका के लगभग 26,000 एक्सॉन्स से आवेगों को प्राप्त करता है। माइट्रल एवं गच्छित (Tufted) कोशिकाओं के अक्षतन्तु (एक्सॉन्स) ही **घ्राण–पथ** (Olfactory tract) बनाते हैं, जो पीछे जाकर प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स के टेम्पोरल लोब में घ्राण केन्द्र (Olfactory of smell centre) में पहुँचता है, जहाँ पर आवेगों का विश्लेषण होता है, और हमें विशेष गन्ध का ज्ञान होता है।

12.5 कर्ण की संरचना एवं कार्य

कान या कर्ण शरीर का एक आवश्यक अंग है, जिसका कार्य सुनना (Hearing) एवं शरीर का सन्तुलन (Equilibrium) बनाये रखना है तथा इसी से ध्वनि (Sound) की संज्ञा का ज्ञान होता है।

कान की रचना अत्यन्त जटिल होती है, अतः अध्ययन की दृष्टि से इसे निम्नलिखित तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है–

1. **बाह्य कर्ण** (External ear)
2. **मध्य कर्ण** (Middle ear)
3. **अंतः कर्ण** (Internal ear)

1) बाह्य कर्ण या कान (External Ear)-

बाह्य कर्ण के बाहरी कान या कर्णपाली (Auricle or pinna) तथा बाह्य कर्ण कुहर (External auditory meatus), दो भाग होते हैं। **कर्णपाली** (Auricle or pinna) कान का सिर के पार्श्व से बाहर को निकला रहने वाला भाग होता है, जो लचीले फाइब्रोकार्टिलेज से निर्मित तथा त्वचा से ढँका रहता है। यह सिर के दोनों ओर स्थित रहता है। कर्णपाली का आकार टेढ़ा–मेढ़ा और अनियमित होता है, इसका बाहरी किनारा **हेलिक्स** (Anthelix) कहलाता है। हेलिक्स से अन्दर की ओर के अर्द्धवृत्ताकार उभार (Semicircular ridge) को **एन्टहेलिक्स** (Anthelix) कहा जाता है, ऊपर के भाग में स्थित उथले गर्त को **ट्रइएन्गूलर फोसा** (Triangular fossa) तथा बाह्य कर्ण कुहर से सटे हुए गहरे भाग को **कोन्चा** (Concha) कहते हैं एवं कुहर के प्रवेश स्थल के सामने स्थित छोटे से उत्सेघ (Projection) को **ट्रॅगस** (Tragus) कहते हैं। निचला लटका हुआ भाग (Ear lobule) कोमल होता है और वसा–संयोजक–ऊतक (Adipose connective tissue) से निर्मित होता है तथा इसमें रक्त वाहिनियों की आपूर्ति बहुत अधिक रहती हैं कर्णपाली कान की रक्षा करती है तथा ध्वनि से उत्पन्न तरंगों को एकत्रित करके आगे कान के अन्दर भेजने में सहायता करती है।

बाह्य कर्ण कुहर (External auditory meatus)- बाहर कर्णपाली से भीतर टिम्पेनिक मेम्ब्रेन या ईयर ड्रम (कान का पर्दा) तक जाने वाल अंग्रेजी के 'S' अक्षर के समान घुमावदार, लगभग 2.5 सेमी. (1") लम्बी–सँकरी नली होती है। टिम्पोनिक मेम्ब्रेन द्वारा यह मध्यकर्ण से अलग रहती है। इसका बाहरी एक तिहाई भाग कार्टिलेज का बना होता है तथा शेष भीतरी दो तिहाई भाग एक नली के रूप में टेम्पोरल अस्थि में चला जाता है, जो

अस्थि निर्मित होता है। समस्त बाह्य कर्णकुहर रोमिल त्वचा से अस्तरित होता है, जो कर्णपाली को आच्छादित करने वाली त्वचा के सातत्य में ही रहता है। कार्टिलेजिन भाग की त्वचा में बहुत सी सीबेसियस एवं सेर्‌यूमिनस ग्रन्थियाँ होती हैं जो क्रमशः सीबम (तैलीय स्राव) एवं सेर्‌यूमेन (कान का मैल या ईयर वैक्स) स्त्रावित करती हैं। ईयर वैक्स (Ear wax) से, बालों (रोम) से तथा कुहर के घुमावदार होने से बाहरी वस्तुएँ जैसे धूलकण, कीट–पंतगें आदि कान के भीतर नहीं जा पाते हैं।

कर्णपटह या कान का पर्दा या टिम्पेनिक मेम्ब्रेन (Tympanic membrane)-

इसे ईयर ड्रम (Ear drum) भी कहा जाता है। यह बाह्य कर्ण एवं मध्य कर्ण के बीच विभाजन (Partition) करने वाली चौरस कोन आकार की एक पतली फाइबर्स सीट होती है जो बाहर की ओर त्वचा के साथ तथा अन्दर की ओर मध्य कर्ण को आस्तरित करने वाल म्यूकस मेम्ब्रेन के सातत्य (Continuation) में रहती हैं। कर्णपटह मध्य कर्ण की ओर दबा सा रहता है। यह बिन्दु **अम्बो** (Umbo) कहलाता है। इसी स्थान पर मध्य कर्ण स्थित मैलीयस (Malleus) अस्थि कार्णपटह के भीतर की ओर से सटी रहती हैं। कर्णपटह के अधिकांश किनारे (Margin) टिम्पेनिक ग्रूव में जुटे (Embedded) रहते हैं। यह ग्रूव बाह्य कर्ण कुहर के अन्दरूनी सिरे (Inner end) की सतह पर स्थित होता है। बाहरी कान तथा बाह्य कर्णकुहर दोनों ही ध्वनि तरंगों को एकत्रित करके भितर भेजते हैं। जब ध्वनि तरंगें कर्णपटह से टकराती हैं तो उसमें प्रकम्पन (Vibration) उत्पन्न होता है, जिसे वह मध्यकर्ण की अस्थिकाओं (Ossicles) द्वारा अन्तःकर्ण में भेजता है।

2) मध्य कर्ण (Middle ear)-

मध्यकर्ण, कर्णपटह (टिम्पोनिक मेम्ब्रेन) एवं अन्तःकर्ण के बीच स्थित एक छोटा कक्ष (Chamber) है। इसमें कर्णपटही गुहा (Tympanic cavity) एवं श्रवणीय अस्थिकाओं (Auditory ossicles) का समावेश होता है।

कर्णपटही गुहा (Tympanic cavity)-

टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग (Petrous portion) में स्थित सँकरा, असमाकृति का वायु पूरित (Air filled) एक अवकाश या स्थान है। इसमें अग्र, पश्च, मध्यवर्ती एवं पार्श्वीय 4 भित्तियाँ तथा छत और फर्श होता है, जो सभी म्यूकस मेम्बेन से आस्तारित रहते हैं। टेम्पोरल अस्थि की पतली प्लेटें **छत** (Roof) एवं **फर्श** (Floor) बनाती हैं, जो टिम्पेनिक गुहा को ऊपर से मिडिल केनियल फोसा से तथा नीचे से ग्रीवा की वाहिकाओं (Vessels) से पृथक करती हैं। **पश्चभित्ति** (Posterior wall) में एक द्वारा (Aditus) होता है जो 'कर्णमूल वायु कोशिकाओं' (Mastoid air cells) में खुलता है, इसमे अस्थि का एक छोटा–सा कोन आकार का पिण्ड (Pyramid) भी होता है, जो स्टैपीडियस पेशी (Stapedius muscle) से घिरा रहता है इस पेशी का टेन्डन, द्वार (छिद्र) से गुजरकर पिरामिड (Pyramid) के शिखर पर स्टैपीज (Stapes) से जुड़ता है। **पार्श्वीय भित्ति** (Lateral wall) टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से बनती है। **मध्यवर्ती भित्ति** (Medial wall) टेम्पोरल अस्थि की एक पतली परत होती है। जिसमें दूसरी ओर अंतःकर्ण (Internal ear) होता है। इसमें दो छिद्र (Openings) होते हैं, जो मेम्ब्रेन से ढँके रहते

हैं। ऊपर वाला छिद्र अण्डकार होता है, जो अन्तःकर्ण के प्रघाण (Vestibule) में खुलता है तथा इसे **फेनेस्ट्रा ओवेलिस** (Fenestra ovalis) कहते हैं। दूसरा छिद्र गोलाकार होता है जिसे **फेनेस्ट्रा रोटनडम** (Fenestra rotundum) कहते हैं। यह गोलाकार छिद्र मध्य कर्ण की म्यूकस मेम्ब्रेन से बन्द रहता है तथा इसका सम्बन्ध अन्तःकर्ण की कॉक्लिया से रहता है। **अग्रभित्ति** (Anterior wall) टेम्पोरल अस्थि से बनी होती है। इसमे ंकर्णपटह (Tympanic membrane) के बिल्कुल समीप ही एक छिद्र होता है जो यूस्टेचियन नली (Eustachian tube) का मुखद्वार होता है।

यूस्टेचियन नली या श्रवणीय नली (Auditory tube) अथवा फेरिन्जोटिम्पेनिक नली (Pharyngotympanic tube)-

मध्यकर्ण की बुहा एवं नासाग्रसनी (Nasopharynx) के बीच सम्बन्ध बनाती है। मध्यकर्ण को आस्तारित करने वाली म्यूकस मेम्ब्रेन सातत्य में इस नली को भी आस्तारित करती है। मध्यकर्ण का सम्बन्ध कर्णमूल वायु कोशिकाओं (Mostoid air cells) से भी रहता है। गले के संक्रमण (Throat infections) प्रायः इसी नली के द्वारा मध्य कान में पहुँचते हैं तथा यहाँ से कर्णमूल कोशिकाओं में पहुँचकर विद्रधियाँ (Abscesses) उत्पन्न कर सकते हैं।

श्रवणीय अस्थिकाएँ (Auditory ossicles)-

छोटी–छोटी तीन अस्थियाँ (मैलीयस? इन्कस या एन्विल तथा स्टैपीज) हैं, जो श्रृंखलाबद्ध तरह से कर्णपटह (Tympanic membrane) से लेकर मध्यवर्ती पर स्थित अण्डाकार छिद्र (Fenestra ovalis) तक स्थित रहती हैं। प्रत्येक अस्थि (मैलीयस) का छोर दूसरी अस्थि के सिरे से संधिबद्ध रहता है। प्रथम अस्थि का सिरा टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से सम्बन्धित रहता है और अन्तिम अस्थि (स्टैपीज) का छोर फेनेस्ट्रा ओवेलिस में सटा रहता है। श्रृंखलाबद्ध होने के कारण ध्वनि–तंरगों से उत्पन्न प्रकम्पन (Vibration) टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से, इन तीनों अस्थिकाओं (Auditory ossicles) से होता हुआ इन्हीं के द्वारा अन्तःकर्ण तक पहुँच जाता है तथा बाह्यकर्ण का अन्तःकर्ण से सम्बन्ध स्थापित रहता है।

3) अन्तःकर्ण (Internal ear)-

यह टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग (Petrous portion) में स्थित श्रवणेन्द्रिय का प्रमुख अंग है। इसी में सुनने तथा सन्तुलन के अंग अवस्थित होते हैं। अन्तःकर्ण की बनावट टेढ़ी–मेढ़ी एवं जटिल है जो कुछ–कुछ घोंघे (Snail) के सदृश होती है। इसमें **अस्थिल लैबिरिन्थ** (Bony labyrinth) तथा **कलामय लैबिरिन्थ** (Membranous labyrinth) दो मुख्य रचनाएँ होती हैं, जो एक दूसरे के भीतर रहती हैं।

अस्थिल लैबिरिन्थ टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग में स्थित टेढ़ी–मेढ़ी अनियमित आकार की नलिकाओं की एक श्रृंखला (Series of channels) है, जो परिलसीका (Perilymph) नामक तरल से भरा होता है।

कलामय लैबिरिन्थ अस्थिल लैबिरिन्थ में स्थित रहता है। इसमें यूट्रिक्ल (Utricle), सैक्यूल (Saccule), अर्द्धवृत्ताकार वाहिकाएँ (Semicircular ducts) एवं कॉक्लियर वाहिका (Cochlear duct) का समावेश रहता है। इन समस्त रचनाओं में अन्तःकर्णोद (Endolymph)

तरल भरा रहता है तथा सुनने एवं सन्तुलन के समस्त संवेदी रिसेप्टर्स विद्यमान रहते हैं। अर्द्धवृत्ताकार वाहिकाएँ अर्द्धवृत्ताकार नलिकाओं के भीतर स्थित रहती हैं। अस्थिल नलिकाओं (Canals) एवं वाहिकाओं (Ducts) के बीच के स्थान में परिलसीका (Perilymph) भरा रहता है। चूँकि कलामय लैबिरिन्थ अस्थिल लैबिरिन्थ भीतर स्थित रहता है, इसीलिए इनकी आकृति समान रहती है। इनका वर्णन अस्थिल लैबिरिन्थ में ही किया गया है।

अस्थिल लैबिरिन्थ (Bony labyrinth) में निम्न तीन रचनाओं का समावेश रहता है–

1. प्रघाण या वेस्टिब्यूल (Vestibule)
2. तीन अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ (3 Semicircular canals)
3. कर्णावर्त या कॉक्लिया (Cochlea)

1. प्रघाण या वेस्टिब्यूल (Vestibule)-

यह लैबिरिन्थ का मध्य कक्ष है। इसके सामने कॉक्लिया और पीछे अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ रहती हैं। वेस्टिब्यूल की बाहरी भित्ति के अण्डाकार छिद्र (Fenestra ovalis) में मध्य कर्ण की स्टैपीज अस्थिका की प्लेट लगी रहती है। इसी के द्वारा वेस्टिब्यूल का सीधा सम्पर्क मध्यकर्ण से रहता है। मध्यकर्ण और वेस्टिब्यूल के मध्य में केवल इस खिड़की के समान छिद्र में लगा हुआ झिल्ली कका पर्दा रहता है। वेस्टिब्यूल के भीतर अन्तःकर्णोद (Endollymph) से भरी कलामय लैबिरिन्थ की दो थैली (Sacs) होती हैं। जिन्हें **यूट्रिक्ल** (Utricle) तथा **सैक्यूल** (Saccule) कहा जाता है। प्रत्येक थैली (Sac) में संवेदी पैच (Sensory patch) विद्यमान रहता है, जिस **मैक्यूल** (Macule) कहा जाता है।

2. तीन अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ

वेस्टिब्यूल के ऊपर (Superior), पीछे (Posterior) तथा पार्श्व में (Lateral), ये तीन अस्थिल अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ होती हैं, जो वेस्टिब्यूल से संलग्न रहती हें। ये तीनों नलियाँ एक–दूसरे के लम्बवत् (Perpendicular) होती हैं। इनके भ्डीतर कलामय वाहिकाएँ (Ducts) रहती हैं कलामय वाहिकाओं (Membranous semicircular) एवं अस्थिल नलिकाओं (Bony semicircular ducts) के मध्य परिलसीका तरल भरा रहता है तथा कलामय वाहिकाओं के भीतर अन्तःकर्णोद तरल रहता है। प्रत्येक वाहिका का छोर कुछ फूला हुआ (Expanded) होता है, जिसे **'एम्पूला'** (Ampulla) कहते हैं, इसमें संवेदी रिसेप्टर–क्रिस्टा एम्पूलैरिस (Crista ampullaris) रहता है। इसमें कुपोला (Cupola) नामक रोम कोशिकाएँ (Hair cells) भी रहती हैं। यहीं पर आठवीं कपालीय तन्त्रिका की शाखा वेस्टिब्यूलर तन्त्रिका (Vestibular nerve) आती है।

यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं अर्द्धवृत्ताकार वाहिकाओं, तीनों का सम्बन्ध शरीर की साम्य स्थिति (Equilibrium) को बनाए रखने से है न कि सुनने की क्रिया से।

3. कर्णावर्त या कॉक्लिया (Cochlea)-

कॉक्लिया अपने ही पर लिपटी हुई सर्पिल आकार की एक लनिका है, जो देखने में घोंघे के कवच के समान दिखाई देती है। यह मध्य में स्थित शंक्वाकार अस्थिल अक्ष स्तम्भ, जिसे मॉडियोलस कहते हैं, के चरों ओर दो और तीन चौथाई ($2\frac{3}{4}$) बार कुण्डलित होती है। नीचे का चक्र सबसे बड़ा होता है और ऊपर का सबसे छोटा। कॉक्लिया की नलिका

अण्डाकार छिद्र की खिड़की फेनेस्ट्रा रोटण्डा (Fenestra rotunda) तक फैली रहती है। अस्थिल कॉक्लिया के भीतर, ठीक इसी आकार की कलामय कॉक्लिया की वाहिका (Duct) होती है। इन दोनों नलिकाओं के बीच परिलसीका (Perilymph) तरल भरा रहता है।

कलामय कॉक्लिया वाहिका वेस्टिब्यूलर एवं बेसिलर नामक दो मेम्ब्रेन्स द्वारा लम्बवत् रूप में तीन प्रथक कुण्डलित (सर्पिल) वाहिकाओं में विभक्त हो जाती है। जो निम्नलिखित हैं–

1. स्कैला वेस्टिब्यूलाइ
2. स्कैला मीडिया (Scala media) कॉक्लियर डक्ट
3. स्कैला टिम्पेनाइ

स्कैला वेस्टिब्यूलाइ का वेस्टिब्यूल से सम्बन्ध रहता है और स्कैला टिम्पेनाइ का समापन (End) गोलाकार छिद्र वाली खिड़की पर होता है तथा स्कैला मीडिया अन्य दोनों वाहिकाओं के बीच रहती है तथा इसमें अंतःकर्णोद (Endolymph) तरल भरा रहता है। स्कैला वेस्टिब्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ में परिलसीका (Perilymph) भरा रहता है। ये तीनों वाहिकाएँ (Ducts) समानान्तर व्यवस्थित रहकर अस्थिल अक्ष स्तम्भ (Modiolus) के चारों ओर कुण्डलित होकर ऊपर की ओर चढ़ती हैं। स्कैला मीडिया जिसे कॉक्लियर डक्ट भी कहते हैं, में स्पाइरल अंग (Spiral organ) भी विद्यमान रहते हैं, जो **श्रवण अंग** (Organ of Corti) कहलाते हैं।

श्रवण अंग (Organ of Corti) सहरा देने वाली कोशिकाओं (Supporting cells) एवं रोम कोशिकाओं (Hair hearing) से मिलकर बना श्रवण अन्तांग (End organ of hearing) है। रोम कोशिकाएँ कुण्डली की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ–साथ पंक्तियों में व्यवस्थित रहती हैं। बाहरी रोम कोशिकाएँ तीन पक्तियों में तथा आन्तरिक रोम कोशिकाएँ बेसिलर मेम्ब्रेन के भीतरी किनारे के साथ–साथ एक पंक्ति में व्यवस्थित रहती हैं। मानव में लगभग 3500 आन्तरिक रोम कोशिकाएँ तथा 20,000 बाहरी रोम कोशिकाएँ होती हैं। इन दोनों आन्तरिक एवं बाहरी रोम कोशिकाओं में सूख्मबाल के समान **संवेदी रोम** (Sensory hair), या **स्टीरियो सिलिया** (Stereocilia) रहते हैं। प्रत्येक बाहरी रोम कोशिका में 80 से 100 संवेदी रोम (Sensory hairs) तथा आन्तरिक रोम कोशिका में, रोम पंक्तियों में व्यवस्थित रहते हैं, जो अंग्रेजी के अक्षर 'W' या 'U' बनाते हैं। रोमों (Hairs) के छोर (Tips) आपस में मिलकर एक छिद्र युक्त झिल्ली (Perforated membrance) बनाते हैं, जिसे 'टेक्टोरियल मेम्ब्रेन' (Tectorial membrane) कहते हैं, जो श्रवण अंग (Spiral organ) के ऊपरी जीम (Firmly bound) रहती है।

कान की तन्त्रिकाएँ (Nerves of the Ear)- कान में आठवीं (VIII) कपालीय तन्त्रिका (Vestibulocochlear nerve) की आपूर्ति होती है। यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। एक वेस्टिब्यूल (प्रघाण) में जाती है और दूसरी कॉक्लिया में। वेस्टिब्यूल में जाने वाली शाखा वेस्टिब्यूल तन्त्रिका (Vestibular nerve) कहलाती है। इसका सम्बन्ध शरीर की साम्य स्थिति (Equilibrium) बनाए रखने की क्रिया से है। उद्दीपन मिलने पर यह आवेगों को अनुमस्तिष्क (Cerebellum) में संचारित करती है।

दूसरी तन्त्रिका जो कॉक्लिया में जाती है, उसे कॉक्लियर तन्त्रिका (Cochlear nerve) कहते हैं। यह कॉक्लिया के मध्य में स्थित अस्थिल स्तम्भ (Modiolus) में प्रवेश करती है और श्रवण अंग (Organ of Corti) के समीप पहुँच कर इसकी अनेक शाखाएँ चारों ओर फैल जाती हैं। इस तन्त्रिका द्वारा ले जाए जाने वाले आवेग प्रमस्तिष्क (Cerebrum) के टेम्पोरल लोब में स्थित श्रवण केन्द्र (Hearing Centre) में पहुँचते हैं। जहाँ 'ध्वनि' (Sound) का विश्लेषण होता है और हमें विशष्ट ध्वनि की संवेदना का ज्ञान होता है।

श्रवण–क्रिया (Mechanism of Hearing)-

ध्वनि के कारण वायु में तरंगें अथवा प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं जो लगभग 332 मीटर प्रति सेकण्ड की गति से संचारित होते हैं। किसी स्वर का सुनना तभी संभव होता है जब कि उसमें वायु में तरंगें उत्पन्न करने की क्षमता हो और फिर वायु में उत्पन्न ये तरंगें कान से टकराएँ। ध्वनि का प्रकार, उसका तारत्व (Pitch), उसकी तीव्रता अथवा मन्दता (Intensity), उसकी मधुरता या रूक्षता आदि वायु तरंगों की आवृत्ति (Frequency), आकार (Size) तथा आकृति (Form) पर निर्भर करता है।

जैसा कि पूर्व में भी बताया जा चुका है कि बाह्यकर्ण की कर्णपाली (Auricle) ध्वनि तरंगों को संग्रहीत करती है और उन्हें बाह्य कर्ण कुहर (External auditory meatus) के द्वारा कान में प्रेषित करती है। तत्पश्चात् ध्वनि तरंगें कर्ण पटह (Tympanic membrane) से टकराकर उसी प्रकार का प्रकम्पन (Vibration) उत्पन्न करती है। कर्ण पटह के प्रकम्पन अस्थिकाओं (Ossicles) में गति होने से मध्यकर्ण से होकर संचारित हो जाते हैं। कर्णपटह का प्रकम्पन उसी से सटी मैलियस (Malleus) अस्थिका द्वारा क्रमशः इन्कस (Incus) एवं स्टैपीज (Stapes) अस्थिकाओं में होता हुआ अण्डाकार छिद्रवाली खिड़की (Fenestra ovalis) पर लगी मेम्ब्रेन में पहुँच जाता है। प्रकम्पन के यहाँ तक पहुँच जाने पर वेस्टिब्यूल (Vastibule) में स्थित परिलसीका (Perilymph) तरल में तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। स्कैला वेस्टिब्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ में स्थित परिलसिका वेस्टिब्यूल के परिलसिका से सम्बन्धित रहता है, फलतः वह भी तरंगित हो उठता है। स्कैला वेस्टिब्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ की तरंगें स्कैला मीडिया अथवा कॉक्लियर वाहिका (Cochlear duct) के एण्डोलिम्फ को भी तरंगित कर देती हैं, जिसके फलस्वरूप बेसिलर मेम्ब्रेन में प्रकम्पन उत्पन्न होता है तथा श्रवण अंग (Organ of Corti) की रोम कोशिकाओं (Hair cells) में के श्रवण रिसेप्टर्स (Auditory receptors) में उद्दीपन होता है। इससे उत्पन्न तन्त्रिका आवेग (Nerve impulses) आठवीं कापालीय तन्त्रिका (वेस्टिब्युलोकॉक्लियर तन्त्रिका) की कॉक्लियर शाखा के द्वारा प्रमस्तिष्क के टेम्पोरल लोब में स्थित श्रवण केन्द्र में पहुँचते हैं। यहाँ ध्वनि का विश्लेषण होता है और विशिष्ट ध्वनि का बोध होता है।

शरीर की साम्य स्थिति एवं सन्तुलन (Equilibrium and balance of the body)- शरीर को साम्य स्थिति एवं सन्तुलन में बनाए रखने का कार्य अन्तःकर्ण के वेस्टिब्यूलर उपकरण (Vestibular apparatus), यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं अर्द्धवृत्ताकार नलिकाओं द्वारा संपादित होता हे। सिर की स्थिति (Position) में कैसा भी परिवर्तन (हिलना) होता है, तो पेरिलिम्फ एवं एण्डोलिम्फ तरह हिल जाता है, जिससे रोम कोशिकाएँ (Hair cells) मुड़ (झुक) जाती हैं

तथा यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं एम्पूलाओं (Ampullae) में स्थित संवेदी तन्त्रिका अन्तांग उद्दीप्त हो उठते हैं। इससे उत्पन्न तन्त्रिका आवेगों को वेस्टिब्यूलर तन्त्रिका (आठवीं कपालीय तन्त्रिका की शाखा) के तन्तु मस्तिष्क के सेरीबेलम को संचारित कर देते हैं। मस्तिष्क के आदेश से उन सभी पेशियों में तदनुकूल गति और क्रिया होती है जिससे शरीर की साम्य स्थिति गनी रहती हैं।

12.6 नेत्र की संरचना एवं कार्य

आँखों या नेत्रों के द्वारा हमें वस्तु का 'दुष्टिज्ञान' होता है। दृष्टि वह संवेदन है, जिस पर मनुष्य सर्वाधिक निर्भर करता है। दृष्टि (Vision) एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें प्रकाश किरणों के प्रति संवेदिता, स्वरूप, दूरी, रंग आदि सभी का प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निहित है। आँखें अत्यन्त जटिल ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जो दायीं–बायीं दोनों ओर एक–एक नेत्रकोटरीय गुहा (Orbital cavity) में स्थित रहती हैं। ये लगभग गोलाकार होती हैं तथा इनाक व्यास लगभग एक इंच (2.5 सेमी.) होता है। इन्हें **नेत्रगोलक** (Eyeball) कहा जाता है। नेत्रकोटरीय गुहा शंक्वाकार (Cone-shaped) होती है। इसके सबसे गहरे भाग में (Apex) में एक गोल छिद्र (फोरामेन) होता है, जिसमें से होकर द्वितीय कपालीय तन्त्रिका (ऑप्टिक तन्त्रिका) का मार्ग बनता है। इस गुहा की छत फ्रन्टल अस्थि से, फर्श मैक्जिला से लेटरल भित्तियाँ कपोलास्थि तथा स्फीनॉइड अस्थि से बनती हैं और मीडियल भित्ति लैक्राइमल, मैक्जिला, इथमॉइड एवं स्फीनॉइड अस्थियाँ मिलकर बनाती हैं। इसी गुहा में नेत्रगोलक वसीय ऊतकों में अन्तःस्थापित एवं सुरक्षित रहता है।

आँख की संरचना (Structure of the eye)- नेत्र गोलक (Eyeball) की भित्ति का निर्माण ऊतकों की निम्न तीन परतों से मिलकर हुआ होता है–

1. **बाह्य तन्तुमयी परत** (Outer fibrous layer)
2. **अभिमध्य वाहिकामयी परत** (Middle vascular layer)
3. **आन्तरिक तन्त्रिकामयी परत** (Inner nervous layer)

बाह्य तन्तुमयी परत (Outer fibrous layer)- नेत्रगोलक में यह सबसे बाहर की सहारा देने वाली परत (Supporting layer) है, जो मुख्यतः दृढ़, तन्तुमय संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) की मोटी मेम्ब्रेन से निर्मित होती है। इसमें श्वेत पटल या स्क्लेरा (Sclera) एवं स्वच्छमण्डल या कॉर्निया (Cornea) का समावेश रहता है।

श्वेत पटल (स्क्लेरा) नेत्रगोलक के पिछले भाग (Posterior segment) की अपारदर्शी, दृढ़ तन्तु ऊतकों की श्वेत परत होती हैं। इससे नेत्रगोलक का 5/6 पिछला भाग ही ढँका रहता है। इसकी बाह्य सतह सफेद (White) रहती है और आँख का सफेद भाग बनाती है, जिस पर आँख को घुमाने वाली सभी पेशियाँ जुड़ी रहती हैं। यह नेत्रगोलक की आन्तरिक कोमल परतों की रक्षा करती है तथा उसकी आकृति (Shape) को स्थिर बनाए रखती है।

स्वच्छमण्डल (कॉर्निया) बाह्य तन्तुमयी परत का अग्र (Anterior) पारदर्शी भाग होता है, जो नेत्रगोलक के अग्र भाग उभरे भाग पर स्थित रहता है। कॉर्निया नेत्रगोलक का सामने वाला 1/6 भाग बनाता है। इसमें रक्तवाहिकाओं का पूर्णतया अभाव रहता है। प्रकाश किरणें कॉर्निया से होकर रेटिना पर पहुँचती हैं।

स्क्लेरा एवं कॉर्निया निरन्तरता में रहते हैं। बाह्य तन्तुमयी परत नेत्रगोलक को, पिछले भाग को छोड़कर जहाँ स्क्लेरा में एक छोटा–सा छिद्र होता है जिसमें से होकर ऑप्टिक तन्त्रिका के तन्तु नेत्रगोलक से मस्तिष्क में पहुँचते हैं, पूर्णतया ढँके रहती है।

अभिमध्य वाहिकायी परत (Middle vascular layer)- यह नेत्रगोलक की बीच (Middle) की परत होती है, जिसमें अनेकों रक्त वाहिकाएँ (Blood vessels) रहती हैं। इसमें रंजितपटल या कोरॉइड (Choioroid), रोमक पिण्ड या सिलियरी बॉडी तथा उपतारा या आइरिस (Iris) का समावेश होता है।

इस परत का रंग पिगमेन्टों के कारण गहरे रंग (Dark colour) का होता है जो आँख के भीतरी कक्ष को जिसमें प्रकाश की किरणें रेटिना पर प्रतिबिम्ब बनाती हैं, पूर्णताः अन्धकारमय (Light proof) बनाने में सहायक होती हैं। वाहिकामयी परत का पिछला (Posterior) 2/3 भाग एक पतली मेम्ब्रेन का बना होता है, जिसे **रंजितपटल या कोरॉइड** कहते हैं, स्क्लेरा एवं रेटिना के बीच रक्त वाहिकाओं एवं संयोजी ऊतक (Connective tissue) की एक परत होती है। यह (कोरॉइड) गहरे–भूरे रंग का होता है तथा रेटिना की रक्त पूर्ति करती है।

वाहिकामय परत आगे की ओर के भाग (Anterior portion) में मोटी होकर **सिलियरी बॉडी** (Ciliary body) बनाती है, जिसमें पेशीय एवं ग्रन्थिल ऊतक रहते हैं। **सिलियरी पेशियाँ** लेन्स की आकृति नियन्त्रित करती हैं तथा आवश्यकतानुसार दूर या समीप की प्रकाश की किरणों को केन्द्रित करने में सहायता करती हैं। इन्हें समायोजन (Accommodation) की पेशियाँ कहते हैं। सिलियरी ग्रन्थियाँ पानी जैसा द्रव स्त्रावित करती हैं जिसे **'नेत्रोद'** या **एक्वीयस ह्यूमर** (Aqueous humour) कहते हैं, यह आँख में लेन्स तथा कॉर्निया के बीच के स्थान में भरा रहता है तथा आइरिस एवं कार्निया के बीच के कोण में स्थित छोटे–छोटे छिद्रों के माध्यम से शिराओं में जाता है।

कोरॉइड का अग्र प्रसारण (Anterior extension) एक पतली पेशीय परत के रूप में होता है जिसे **उपतारा** या **आइरिस** (Iris) कहते हैं। यह नेत्रगोलक का रंगीन भाग है, जिसे कॉर्निया से होकर देखा जा सकता है। यह कॉर्निया और लेन्स के मध्य स्थित रहता है तथा इस स्थान को एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर चैम्बर्स में विभाजित करता है। कॉर्निया एवं आइरिस बे बीच का स्थान एन्टीरियर चेम्बर (अग्रज कक्ष) तथा आइरिस एवं लन्स के बीच का स्थान पोस्टीरियर चैम्बर (पश्चज कक्ष) होता है। आइरिस में वृत्ताकार (Circular) एवं विकीर्ण (Radiating) तन्तुओं के रूप में पेशीय ऊतक रहते हैं, वृत्ताकार तन्तु पुतली को संकुचित करते हैं और विकीर्ण तन्तु इसे विस्फारित (फैलाते) करते हैं।

आइरिस के मध्य में एक गोलाकार छिद्र रहता है। जिसे **पुतली** या **प्यूपिल** (Pupil) कहा जाता है, इसमें आप आने परावर्तित प्रतिबिम्ब (Reflected) को एक छोटी–सी डॉल (Doll) के समान देखते हैं। पुतली का परिमाण (Size) प्रकाश की तीव्रता के अनुसार घटता–बढ़ता रहता है। तेज रोशनी को आँख में प्रविष्ट होने से रोकने के लिए तीव्र प्रकाश के प्रभाव से यह संकुचित हो जाती है तथा कम (मन्द) प्रकाश में विस्फारित यानि फैल जाती है ताकि अधिक से अधिक प्रकाश (रोशनी) रेटिना तक पहुँच सके।

आन्तरिक तन्त्रिकामयी परत (Inner nervous layer)-

नेत्रगोलक के सबसे भीतर की परत की **दृष्टिपटल** या **रेटिना** (Retina) कहा जाता है, जो तन्त्रिका कोशिकाओं (Nervous) एवं तन्त्रिका तन्तुओं की अनेकों परतों से बना होता है और नेत्र के पोस्टीरियर चैम्बर में अवस्थित होता है। इसके एक ओर कोरॉइड (Choroid) है और यह उससे सटा हुआ–सा रहता है। दूसरी ओर नेत्रकाचाभ द्रव (Vitrous humour) भरार रहता है। सिलियरी बॉडी के ठीक पीछे इसका अन्त हो जाता है। यह अण्डाकार होता है। रेटिना में एक मोटी एवं एक पतली परत होती है। मोटी परत तन्त्रिका ऊतक (Nervous tissue) की होती है जिसे **न्यूरोरेटिना** (Neuroretina) कहा जाता है, यह आप्टिक तन्त्रिका (Optic nerve) से जोड़ती है। इसके पीछे वर्णक युक्त उपकला (Pigmented epithelium) की एक पतली परत होती है, जो कोरॉइड से संलग्न करती है और रेटिना के पीछे से रिफ्लेक्शन को रोकती है। न्यूरोरेटिना में लम्बी छड़ के आकार की कोशिकाएँ–**रॉड्स** (Rods) एवं शंकु के आकार की कोशिकाएँ–**कोन्स** (Cones) रहती हैं जो अपने भीतर विद्यमान प्रकाश सुग्राही पिगमेन्टों के कारण प्रकाश के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। इनके अतिरिक्त न्यूरोरेटिना में बहुत सी अन्य तन्त्रिकाकोशिकाएँ (न्यूरॉन्स) भी रहते हैं। प्रत्येक आँख में लगभग 125 मिलियन रॉड्स एवं 7 मिलियन कोन्स होती हैं, जिनके कार्य अलग–अलग होते हैं। अधिकांश कोन्स रेटिना के मध्य में लेन्स के ठीक पीछे के क्षेत्र, जिसे **पीत बिन्दु** या **मैक्यूला ल्यूटिया** (Yellow spot or macula lutea) कहते हैं, में अवस्थित रहते हैं। मैक्यूला ल्यूटिया के केन्द्र में एक छोटा–सा गड्ढ़ा रहता है, इसे **गर्तिका** (Fovea) अथवा **केन्द्रीय गर्तिका** या **फोबिया सेन्ट्रलिस** (Fovea centralis) कहते हैं, रेटिना के शेष भाग जिसे परिसरीय रेटिना (Peripheral ratina) कहते हैं में रॉड्स एवं कुछ कोन्स अवस्थित रहते हैं। **मैक्यूला ल्यूटिया रेटिना का वह स्थान है जहाँ पर सर्वाधिक स्पष्ट विम्ब बनता है।** कोन्स रंग–बोध (Colour perception) कराते हैं। जबकि रॉड्स काली–सफेद छायाओं का बोध कराते है, इनके ही माध्यम से हम क्षीण प्रकाश में भी वस्तुओं को देख पाते हैं।

मैक्यूला ल्यूटिया के नाक वाले भाग की ओर लगभग 3 मिली. की दूरी पर से ऑप्टिक तन्त्रिका (Optic nerve) नेत्र गोलक से बाहर निकलती है, वह छोटा–सा स्थान **दृष्टि–चक्रिका या ऑप्टिक डिस्क** (Optic disc) कहलाता है और चूँकि यह प्रकाश के प्रति असंवेदनशील होता है इसलिए इसे **अन्ध बिन्दु** (Blind spot) भी कहते हैं। अन्ध बिन्दु पर बिम्ब न बनने का कारण यह है कि इस स्थान पर रॉड्स एवं कोन्स का पूर्णतः अभाव रहता है।

रॉड्स एवं कोन्स दृष्टि के वास्तविक संग्राहक अंग (Receptors) होते हैं तथा पकाश जो उन पर पहुँचता है, आवेग (Impulses) उत्पन्न करता है, जिनका संचारण ऑप्टिक तन्त्रिका के द्वारा मस्तिष्क के दृष्टि केन्द्र में होता है, जहाँ दृष्टि–प्रभाव (Visual impression) उत्पन्न होते हैं।

नेत्रगोलक की गुहाएँ (Cavities of the eyeball)-

नेत्रगोलक को तीन गुहाओं में विभक्त किया गया है। कॉर्निया एवं आइरिस के बीच के क्षेत्र को **अग्र कक्ष** या **पन्टीरियर चैम्बर** (Anterior chamber) तथा आइरिस एवं लेन्स के

बीच के क्षेत्र को **पश्च कक्ष या पोस्टीरियर चैम्बर** (Posterior chamber) कहा जाता है। दोनों कक्षों में पारदर्शी, पतला, जलीय तरल भरा रहता है जिसे **नेत्रोद** या **एक्वीयस ह्यूमर** (Aqueous humour) कहते हैं नेत्रगोलक के भीतर का दाब (Intraocular pressure) एक–सा चानि स्थिर बनाए रखना इसी के ऊपर निर्भर करता है। यह लेन्स तथा कॉर्निया को आवश्यक पोषक जैसे ऑक्सीजन, ग्लूकोज एवं अमीनो–एसिड्स की आपूर्ति करता है, जिनमें पोषण के लिए रक्त वाहिकाएँ नहीं होती हैं। नेत्रोद का उत्पादन सिलियरी बॉडी की केशिकाओं (Capillaires) द्वारा होता है। यह पोस्टीरियर चैम्बर से होकर गुजरता हुआ एन्टीयिर चैम्बर में पहुँचता है और कॉर्निया के आधार पर स्थित स्क्लेरल वीनस साइनस, जिसे श्लेमन की नलिका (Canal of Schlemn) भी कहते है में फैल जाता है।

नेत्रगोलक की तीसरी और सबसे बड़ी गुहा को **नेत्रकाचाभ या विट्रीयस चैम्बर** (Vitreous Chamber) कहा जाता है, जो नेत्रगोलक के लगभग 80 प्रतिशत भाग में होती है। यह लेन्स के पीछे के सम्पूर्ण स्थान (Space) को भरती है। इस चैम्बर में रंगहीन पारदर्शी जैली के समान पदार्थ भर होता है जिसे **नेत्रकाचाभ द्रव** या **विट्रीयस ह्यूमर** (Vitreous humour) कहते हैं, जो वास्तव में संयोजी ऊतक का रूपान्तरण होता है। इसका कार्य बाह्य दबाव के कारण नेत्रगोलक को बाहर निकलने से रोकना होता है। इसमें कोलेजन एवं हायलूरोनिक एसिड के अतिरिक्त अन्य संघटक नेत्रोद के समान ही होते हैं। नेत्रकाचाभ द्रव का उत्पादन सिलियरी बॉडी द्वारा होता है। यह लेन्स एवं रेटिना के लिए पोषण की आपूर्ति करता है।

लेन्स (Lens)- लेन्स नेत्रगोलक में आइरिस के एकदम पीछे स्थित रहता है। यह पारदर्शी, दृढ़ किन्तु लचीली, वृत्ताकार द्विउत्तल (Biconvex) रचना है, जिसमें रक्त वाहिकाएँ होती हैं। यह एक पारदर्शक, लचीले कैप्सूल में बन्द रहता है तथा सस्पेन्सरी लिगामेन्ट्स (Suspensory ligaments) द्वारा सिलियरी बॉडी से जुड़ा होता है। ये ससपेन्सरी लिगामेन्ट्स लेन्स को स्थिति में बनाये रखते हैं और इन्हीं के माध्यम से सिलियरी पेशियाँ लेन्स पर खिंचवा डालती हैं और दूर या समीप की वस्तुओं के देखने के लिये लेन्स की आकृति को परिवर्तित करती है। ससमेन्सरी लिगामेन्ट्स के शिथिलन (Relaxation) से लेन्स दोनों ओर को उठ जाता है अर्थात् लेन्स की उत्तलता (Convexity) बढ़ जाती है तथा इनके तनाव से लेन्स की उत्तलता कम हो जाती है और वह चपटा–सा हो जाता है। ऐसी क्रिया विभिन्न दूरियों की दृश्य वस्तुओं के अनुसार स्वतः होती है, जिसे 'नेत्रों का समायोजन' (Accomodation of eyes) कहते हैं।

आँख की सहायक संरचनाएँ (Accessory Structures of the Eye)-

आँखें अत्यन्त नाजुक अंग हैं जो सहायक संरचनाओं के द्वारा सुरक्षित रहती है, ये रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

नेत्रगुहा (Orbit or orbital cavity)- इसका वर्णन पूर्व में दिया जा चुका है।

भौंहे (Eyebrows)

पलकें (Eyelids)

बरौनी (Eyelashes)

नेत्रश्लेष्मला या कॅन्जंक्टाइवा (Conjunctiva)

अश्रुप्रवाही उपकरण (Lacrimal apparatus)

नेत्र पेशियाँ (Muscles of the eye)

भौहें (Eyebrows)- फ्रन्टल अस्थि के आर्बिटल प्रवर्ध के ऊपर स्थित त्वचा पर तिरछेपन के साथ उगे छोटे, बोलों को भौंहे कहा जाता है। इनका प्रमुख कार्य सुरक्षा है। ये माथे पर आने वाले पसीने को आँखों में आने से रोकते हैं तथा अत्यधिक धूप से बचाते हैं।

पलकें (Eyelids)- ये प्रत्येक आँख के सामने ऊपर एवं नीचे पतली त्वचा से आच्छादित अवकाशी ऊतक (Areolar tissue) की दो गतिशील तहें (Movable folds) होती हैं। इन दोनों में से ऊपर वाली पलकें अधिक बड़ी एवं अधिक गतिशील रहती है। ऊपर एवं नीचे वाली पलकों के संगम स्थल को **'कैन्थाई'** (Canthi) कहा जाता है। नाक की ओर के भीतरी कैन्थस को **'मीडियल कैन्थस'** (Medial Canthus) और कान की ओर के बाहरी कैन्थस को **'लेटरल कैन्थस'** (Lateral canthus) कहा जाता है। पलकों को चार परतों में विभक्त किया जा सकता है– 1. त्वचीय परत, जिसमें बरौनियाँ (Eyelashes) होती हैं, 2. पेशीय परत, जिसमें आर्बिकुलैरिस ऑक्यूलाई (Orbicularis oculi) पेशी रहती है जो पलक को आँख के ऊपर गिराती है, 3. तन्तमयी संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) की परत जिसमें बहुत–सी त्वग्वसीय ग्रन्थियाँ (Sebaceous glands) होती हैं, जो **मीबोमियन ग्रन्थियाँ** (Mebomian glands) कहलाती हैं। इनसे स्रावित होने वाला तैलीय पदार्थ दोनों पलकों को आपस में चिपकने से बचाता है। 4. सबसे अन्दर की परत एक पतली गुलाबी मेम्ब्रेन से आस्तरित होती है, जिसे कनजंक्टाइवा (Conjuctiva) कहा जाता है।

पलकें धूल एवं अन्य बाह्य वस्तुओं के आँखों में प्रवेश रोकने रके अतिरिक्त आँखों में अत्यधिक तीव्र प्रकाश को एकाएक प्रवेश करने से रोकती हैं। पलकों के प्रत्येक कुछ सेकण्डों पर झपकते (Blinking) रहने से ग्रन्थिल स्राव (आँसू) नेत्रगोलक पर फैल जाते हैं। जिससे कॉर्निया तर बनी रहती है। निद्रा के दौरान बन्द पलकें स्रावों के वाष्पीकरण होने से रोकती हैं। जब कोई वस्तु आँख के पास आती है, तो प्रतिवर्ती किया में (Reflexively) पलकें स्वतः बन्द हो जाती है।

बरौनियाँ (Eyelashes)- पलकों के किनारों (Margins) पर छोटे–छोटे मोटे बाल आगे की ओर निकलते रहते हैं, जिन्हें **बरौनी** (Eyelashes) कहा जाता है। ये बाह्य पदार्थों को आँखों में पवेश करने से रोकते हैं। प्रत्येक आँखों की पलक में लगभग 200 बरौनियाँ होती हैं। प्रत्येक बरौनी 3 से 5 माह में स्वतः गिर कर नवीन बरौनी उग आती हैं। इसके रोमकूपों (Hair follicles) के संक्रमित हो जाने पर गुहेरियाँ (Stye) निकल जाती है।

नेत्रश्लेष्मला या कनजंक्टाइवा (Conjunctiva)- कनजंक्टाइवा एक पतली पारदर्शक म्यूकस मेम्ब्रेन है जो पलको ंके आन्तरिक भाग को आस्तारित करती है तथा पलट कर नेत्र गोलक की ऊपर आकर सतह को आच्छादित करती है। पारदर्शक कॉर्निया पर आकर समाप्त हो जाती है, जो अनाच्छादित रहता है। पलक को आस्तारित करने वाला भाग **पल्पेब्रल कनजंक्टाइवा** (Palpebral conjunctiva) कहलाता है तथा आँख की सफेदी को आच्छादित करने वाला भाग **बल्बर कनजंक्टाइवा** (Bulbar conjunctiva) कहलाता है। इन

दोनों भागों के बीच दो **नेत्रश्लेष्मकला कोष** (Conjunctival sacs) होते हैं। इन्हीं काषों के माध्यम से नेत्रगोलक एवं पलक में गति होना सम्भव होता है। नेत्र में डाली जाने वाली आईड्रॉप्स प्रयाः निचले पलक को पीछे की ओर खींच कर अधोवर्ती नेत्रश्लेष्मकला कोष (Inferior conjunctival sac) में डाली जाती है।

अश्रुप्रवाही उपकरण (Lacrimal apparatus)- प्रत्येक आँख में एक अश्रुप्रवाही उपकरण या लैक्राइमल एपरेटस होता है, जो अश्रुग्रन्थि (Lacrimal gland), अश्रुकोष (Lacrimal sac), अश्रुवाहिनियाँ (Lacrimal ducts) तथा नासा अश्रुवाहिनी (Nasolacrimal duct) से बनता है।

अश्रु ग्रन्थियाँ (Lacrimal glands)- प्रत्येक आँख की ऊपरी पलक के नीचे लेटरल कैन्थस के ऊपर स्थित होती हैं। जिनके स्राव से नेत्रगोलक तर रहता है। प्रत्येक अश्रुग्रन्थि बादाम के आकार की होती है तथा फ्रन्टल अस्थि के 'नेत्रगुहा प्लेट' के गर्त में अवस्थित होती है। यह स्त्रावी उपकला कोशिकाओं की बनी होती है। इन ग्रन्थियों में से अनेक वाहिनियाँ निकलती हैं जो नेत्रश्लेष्मलाकोष के ऊपरी भाग में खुलती हैं। इन ग्रन्थियों में आँसुओं (Tears) का निर्माण होता है, जो अश्रुवाहिनियों द्वारा पलकों के नीचे आ जाते हैं और नेत्रगोलक के सामने वाले भाग पर फैलने के बाद प्रत्येक आँख के मीडियल कैन्थस की ओर जाते हैं जहाँ पर ये दो अश्रुप्रवाही सूक्ष्मनलिकाओं (Lacrimal canaliculi) में प्रवेश कर जाते हैं। दोनों सूक्ष्मनलिकाएँ यहाँ स्थित मांस के एक छोटे–से लाल उभार जिसे माँसाकुर (Caruncle) कहते हैं, के एक ऊपर और एक नीचे से जाती है और जो 'अश्रुकोष' (Lacrimal sac) में प्रेवश कर जाती हैं। अश्रुकोष 'नासाअश्रुवाहिनी' (Nasolacrimal duct) के ही ऊपर का फैला हुआ विस्फारित भाग होता हैं। नासा अश्रुवाहिनी नासा गुहा (Nasal cavity) की अस्थिल भित्ति को नीचे की ओर पार करती हुई नाक की इन्फीरियर मिएटस में आकर खुलती है, जिसके द्वारा आँसू नाक में पहुँच जाते हैं।

आँखें प्रत्येक 2 से 10 सेकण्ड पर झपकती रहती हैं, जिससे अश्रुग्रन्थि (Lacrimal glanc) उद्दीप्त होकर एक निर्जीवाणुक (Sterile) तरल स्रावित करती है, जिसे आँसू (Tears) कहते हैं। आँसूओं में जल, लवण, म्यूसिन (Mucin) तथा एक जीवाणुनाशक एन्जाइम लाइसोजाइम (Lysozyme) रहता है।

कार्य (Function)-

1. आँसू आँखों को चिकना एवं नम रखते हैं, जिससे पलकों की गति सहजतापूर्वक हो सके।
2. आँसू बाह्य वस्तुओं, धूलकणों आदि को धोकर साफ कर देते हैं।
3. आँसूओं में विद्यमान जीवाणुनाशक एन्जाइम, लाइसोजाइम से जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।
4. आँसू कॉर्निया एवं लेन्स को जल एवं पोषण की आपूर्ति करते हैं।
5. आँसू नेत्रगोलक को स्वच्छ, नम तथा चिकनी सतह प्रदान करते हैं।

नेत्र पेशियाँ (Muscles of the eye ball)- नेत्रगोलक की इसके सॉकेट में गति निम्न 6 पेशियों के सेट द्वारा सम्पादित होती है। इनमें चार सीधी और दो तिरछी (तिर्यक) पेशियाँ होती हैं।

सीधी पेशियाँ (Rectus muscles)-

1. मीडियल रेक्टस (Medial rectus)
2. लेटरल रेक्टस (Lateral rectus)
3. सुपीरियर रेक्टस (Superior rectus)
4. इन्फीरियर रेक्टस (Inferior rectus)

तिरछी या तिर्यक पेशियाँ (Oblique muscles)-

1. सुपीरियर ऑब्लिक पेशी (Superior oblique muscle)
2. इन्फीरियर ऑब्लिक पेशी (Inferior oblique muscle)

ये सभी पेशियाँ **बाह्य पेशियाँ** (Extrinsic muscles) कहलाती हैं, क्योंकि ये नेत्रगोलक के बाहर रहती हैं। प्रत्येक पेशी का एक सिरा कपालास्थि (Skullbone) से संलग्न रहता है तथा दूसरा सिरा नेत्रगोलक के स्क्लेरा (Sclera) से संलग्न रहता है। इन सभी पेशियों की सहायता से नेत्रगोलक को सभी दिशाओं में घुमाना संभव होता है। इन पेशियों की गतियों में समन्वय (Co-ordination) होने से ही आँखें घुमायी जाती हैं। जिससे दोनों आँखें एक ही वस्तु पर केन्द्रित होती हैं। दोनों आँखें सदैव एक–दूसरे के सहयोग से काम करती हैं और यही कारण है कि दोनों आँखों से देखने पर भी हम केवल एक ही वस्तु देखते हैं। पेशियों की कमजोरी की अवस्था में अथवा उनके रोगग्रस्त हो जाने पर दोनों आँखों की दृष्टि एक ही स्थान पर नहीं पड़ती है, जिससे वस्तु एक रहते हुए भी दो दिखाई देती हैं।

पेशियों की गतियाँ (Movements of the muscles)- उपर्युक्त पेशियों की गतिया एक–दूसरे के विपरीत होती है अर्थात् जब पेशियों का एक सेट संकुचित होता है तो इसके ठीक विपरीत वाली पेशियों का एक सेट संकुचित होता है तो इसके ठीक विपरीत वाली पेशियों का सेट शिथिलन (Relaxation) की क्रिया करता है। जैसे– 'सुपीरियर रेक्टस' के संकुचन के साथ 'इन्फीरियर रेक्टस' में शिथिलन होता है, जिससे आँखें ऊपरी उठती हैं और इसके ठीक विपरीत जब 'इन्फीरियर रेक्टस' संकुचित होती है, तो सुपीरियर रेक्टस में शिथिलन होता है, जिससे आँखें नीचे की ओर गति करती हैं। इसी प्रकार मीडियल एवं लेटरल रेक्टस पेशियाँ आँखों को दाएँ–बाएँ घुमाती हैं। तिर्यक पेशियों की सहायता से आँखें ऊपर–नीचे और बाहर की ओर गतियाँ करती हैं। इसके साथ–साथ ये आँखों को चक्रवत घुमाने में भी सहायता देती हैं।

आँखों के अन्दर निम्न तीन चिकनी पेशियाँ रहती हैं, जिन्हें **अन्तरस्थ पेशियाँ** (Intrinsic muscles) कहा जाता है। **सिलियरी पेशी** (Ciliary muscle) लेन्स के ससपेन्सरी लिगामेन्ट के तनाव (Tension) को कम करती है तथा आँख को सही ढंग से समायोजित करने के लिए लेन्स को इसकी आकृति में परिवर्तन करने दती है। **सरकुलर पेशी** या **स्फिंक्टर प्यूपिला** (Circular muscle or sphincter), यह पेशी पुतली को चारों ओर वृत्ताकार दिशा में घेरे रहती है तथा पुतली को संकुचित करती है। **रेडियल पेशी** या **डाइलेटर प्यूपिला** (Raial muscle or dilator papilla), यह आइरिस की बाह्य परिधि से आरम्भ होकर पुतली के किनारों पर रेडियल दिशा में स्थित रहती है तथा पुतली को विस्फारित (फैलाती) करती है।

पलकों की पेशियाँ (Muscles of the eye lids)- ऑर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ (Orbicularis ocule) पेशी आँखों को बन्द करने के लिए पलकों को गिराती है, तथा **लीवेटर पल्पेब्री सुपीरिओरिस** (Levator palpebrae superioris) पेशी आँखों को खोलने के लिए पलकों को ऊपर उठाती है। **सुपीरियर टार्सल** (Superior tarsal) चिकनी पेशी होती है, जिसकी तन्त्रिका आपूर्ति सिम्पेथेटिक तन्त्रिका तन्त्र द्वारा होती है। यह ऊपर पलक को उठाने में सहायक होती है, इसके पक्षाघातग्रस्त होने पर ऊपरी पलक नीचे को लटक (Ptosis) पड़ती है।

दृष्टि तन्त्रिका एवं दृष्टि पथ (Optic nerve and visual pathway)- ऑप्टिक या दृष्टि तन्त्रिकाएँ (द्वितीय /II कपालीय तन्त्रिका) प्रकाश संवेद की तन्त्रिकाएँ हैं, जिनके द्वारा देखने का कार्य होता है। इन तन्त्रिका तन्तुओं की उत्पत्ति आँखों के रेटिना में होती है, जो मैक्यूला ल्यूटिया से लगभग 0.5 सेमी. नाक की ओर अभिबिन्दु (Converge) होकर (अर्थात् एक बिन्दु पर मिलकर) तथा आपस में संयोजित होकर ऑप्टिक तन्त्रिका बनाते हैं। यह तन्त्रिका नेत्रगोलक के पिछले भाग से निकलती है और पिट्यूटरी ग्रन्थि के पास आकर दूसरी ओर की ऑप्टिक तन्त्रिका से मिल (Fuse) जाती है। इस क्रॉसिंग स्थल को **'ऑप्टिक चियाज्मा'** (Optic chiasma) कहते हैं। इस स्थान पर आकर दोनों आँखों की ऑप्टिक तन्त्रिका के नाक की ओर के (Nasal side) आधे–आधे तन्तु एक–दूसरे को क्रॉस कर सीधे आगे की ओर बढ़ जाते हैं। शेष (लेटरल साइड के) प्रत्येक रेटिना के तन्त्रिका तन्तु, बिना एक–दूसरे को क्रॉस किए, दोनों तरफ (उसी ओर) अग्रसर होते हुए मध्य मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं। ऑप्टिक चियाज्मा से होकर गुजरने के उपरान्त तन्त्रिका तन्तुओं को **'दृष्टिपथ'** (Optic tracts) कहा जाता है। प्रत्येक दृष्टिपथ में दूसरी ओर की आँख के रेटिना के नासा तन्तुओं (Nasal fibres) एवं उसी ओर की आँख की रेटिना के लेटरल तन्तुओं का समावेश होता है।

प्रत्येक दृष्टिपथ सेरीब्रम से होकर पीछे की ओर जाता है तथा थैलेमस में के न्यूक्लियस में के न्यूरॉन्स, जिन्हें **'लेटरल जेनिकुलेट बॉडी'** (Lateral geniculate body) कहा जाता है, के साथ तन्तुमिलन (Synapses) करता है। वहाँ से लेटरल जेनिकुलेट बॉडी में के न्यूरॉन्स के अक्ष तन्तु (Axons) प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के ऑक्सिपिटल लोब में प्राथमिक दृष्टिपरक कॉर्टेक्स (Primary visual) में प्रक्षेपित होते हैं। जहाँ दृष्टि आवेगों की व्याख्या एवं विश्लेषण होता है।

दृष्टि की क्रिया विधि (Mechanism of vision/sight)- प्रकाश दीप्तिमान ऊर्जा (Radiant energy) का एक रूप है, जो वायु के माध्यम से लगभग 3,00,000 किमी. प्रति सेकण्ड की गति से तंरगों में गमन करता है।

प्रकाश की किरणें सामान्यतः सामान्तर रेखा में चलती हैं, किन्तु जब ये एक घनत्व वाले माध्यम में को गुजरती हैं तो ये झुक (Bend) जाती हैं, इस झुकाव को **अपर्वतन या रिफ्रेक्शन** (Refraction) कहा जाता है। बाह्य वायु से आँख में प्रवेश करने वाली प्रकाश किरणें अपवर्तित हो जाती हैं और **अभिबिन्दुग** (Converse) होकर अर्थात् एक बिन्दु पर मिलकर रेटिना के फोकस बिन्दु (Focus point) पर केन्द्रित हो जाती है।

रेटिना पर पहुँचने से पूर्व प्रकाश की किरणें आँखों के पारदर्शी अपवर्तक माध्यमों (Refracting media) कॉर्निया, एक्वीयस ह्यूमर, लेन्स एवं विट्रीयस ह्यूमर से होकर गुजरती हैं। इनमें लेन्स ही एक ऐसी रचना है, जिसमें प्रकाश की किरणों को झुकाने या अपवर्तन करने की क्षमता रहती है, जिससे वे अभिबिछुग (Converse) होकर लेन्स के पीछे रेटिना पर बिम्ब (Image) बनाती हैं।

रचना की दृष्टि से आँखों (नेत्रगोलकों) की तुलना कैमरे से की जाती है, जिसमें पलके कैमरे के समान आँखों के लिए शटर का काम करती हैं, प्रकाश के प्रवेश के लिए खिड़की 'कॉर्निया' के रूप में रहती हैं, आइरिस भीतर प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियन्त्रित करता है, क्रिस्टेलाइन लेन्स से प्रकाश की किरणें फोकस होती हैं, अभिमध्य वाहिकामयी परत (Middle vascular layer) कैमरे के प्रकाशरोधक बॉक्स का काम करती है तथा रेटिना कैमरे के समान प्रकाश के प्रति संवेदनशील (Photosensitive) प्लेट का काम करती हैं।

कैमरे के सामने जो वस्तु रहती है, कैमरे की प्लेट पर उसका उल्टा प्रतिबिम्ब बनता है। ठीक उसी प्रकार आँखों से देखी जाने वाली वस्तुओं का उल्टा प्रतिबिम्ब रेटिना पर बनता है। वस्तु से प्रकाश की किरणें निकलती हैं और एक्वीयस ह्यूमर, लेन्स एवं विट्रयस ह्यूमर को पार करके 'रेटिना' पर पड़ती है। लेन्स तथा कॉर्निया प्रकाश की सामान्तर किरणों को रेटिना पर केन्द्रीभूत करते हैं। कैमरे में लेन्स से फोकस–बिन्दु की दूरी निश्चित होती है और लेन्स को आगे–पीछे खिसका कर फोटोग्राफी प्लेट पर वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब लिया जाता है। आँख में भी लेन्स तथा रेटिना की दूरी निश्चित होती है। अतः आँख में भी लेन्स से फोकस–बिन्दु की दूरी को सिलियरी पेशियों की संकुचन–क्रिया द्वारा बदल कर वस्तु के स्पष्ट प्रतिबिम्ब को रेटिना पर प्राप्त किया जाता है।

ऑप्टिक तन्त्रिका द्वारा प्रतिबिम्ब (Image) की विस्तृत सूचना प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के ऑक्सिपिटल लोब् में पहुँचती है, जहाँ यह चेतना में विकसित होती है। इस प्रकार ऑप्टिक तन्त्रिकाओं द्वारा संवेदनाएँ (Sensations) मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्र (Visual area) में पहुँचती हैं, फलतः मस्तिष्क को देखने की अनुभूति होती है। रेटिना के उल्टे बिम्ब को सीधा दिखाना मस्तिष्क का काम है।

समायोजन (Accommodation)- आँखों में प्रवेश करने वाली सभी सामान्तर प्रकाश किरणों को रेटिना पर केन्द्रित होने के लिए अपवर्तित होने या झुकने की आवश्यकता होती है। 6 मीटर (20 फीट) से अधिक दूर की वस्तुओं को देखने के लिए उनसे आने वाली प्रकाश किरणों को अधिक अपवर्तन की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु जैसे–जैसे वस्तु पास आती जाती है तो उसे देखने के लिए उससे आने वाली प्रकाश किरणों को अधिक अपवर्तित होने की आवश्यकता होती है।

दूर की वस्तु से निकली प्रकाश की समान्तर किरणें लेन्स के वर्टिकल एक्सिस पर समकोण पर पड़ती हैं। आँखें इस प्रकार एडजस्ट होती है कि ये किरणें लेन्स के द्वारा झुका दी जाती हैं, जिससे वे स्पष्ट बिम्ब बनाने के लिए रेटिना पर फोकस हो जाती हैं। पास (6 मीटर से कम दूरी की) की वस्तु से निकली प्रकाश की किरणें अपबिन्दुक (Divergent) होती हैं तथा लेन्स पर तिरछे होकर पड़ती हैं, जो सामान्यतः रेटिना के पीछे फोकस होती हैं। ये किरणें रेटिना पर ठीक से फोकस हो सकें इसके लिए लेन्स को मोटा,

गोल (Thicker) होना चाहिए। यह क्रिया सिलियरी पेशियों के द्वारा संपादित होती है। साथ ही बिम्ब की स्पष्टता के लिए आँखें में प्रवेश होने वाली किरणों की संख्याओं में, आइरिस के संकुचन से, कमी होती हैं। इस प्रकार लेन्स के आकार में परिवर्तन से तथा आइरिस के संकुचन से पुतली (Pupil) के छोटे होने की क्रिया को **'समायोजन'** (Accomodation) कहते हैं। यह क्रिया पास की वस्तु देखते समय सदैव होती है। विभिन्न दूरीयों के अनुसार लेन्स की मोटाई या उत्तलता (Convexcity) में अनुरूप परिवर्तन होने वाली शक्ति को ही अनुकूलन अथवा समायोजन (Accomodation) कहते हैं। आँख के लेन्स की फोकस दूरी की इन स्वयं एडजस्टिंग क्रियाओं को आँख की 'समायोजन क्षमता' कहते हैं। दोषमुक्त आँखों द्वारा 25 सेमी. से दूर रखी वस्तुओं को ही स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस दूरी को 'स्पष्ट दृष्टि' की 'न्यूनतम दूरी' कहा जाता है। जिस अधिकतम दूरी के स्थान तक आँखें वस्तुओं को स्पष्ट रूप में देख सकती है, उसे आँखों का 'दूर बिन्दु' (Far point) कहा जाता है।

जब कोई वस्तु आँखों के बिल्कुल समीप रहती है, तो उसका दोनों आँखों के रेटिना पर स्पष्ट फोकस प्राप्त करने के लिए आँखें स्वयं थोड़ा भीतर की ओर घूमती हैं। आँखों की यही क्रिया **'अनुकूलन'** कहलाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:–

1.मानव शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां होती है। जिनके द्वारा .... का ज्ञान होता है।

2. प्रत्येक संवेदी तंत्रिका का अंतिम भाग कुछ विशेष प्रकार का बना होता है। जिसे.............. .....कहते है।

3....................... इन्द्रिय किसी वस्तु की गंध का ज्ञान करवाती है।

4....................... टिम्पोनिक मेम्ब्रेन एवं अन्तःकर्ण के बीच स्थित एक छोटा कक्ष है।

5....................... में सुनने तथा संतुलन के अंग अवस्थित होते है।

12.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त कि ज्ञानेन्द्रिया क्या है तािा किस प्रकार से ये हमें बाहरी सूचनाओं से अवगत करवाती है। ऑखों के द्वारा हम किसी भी दृश्य को देखने में कान के द्वारा सुनने में तथा नाक क द्वारा गन्ध का अनुभव करने में सक्षम होते है। यदि ये ज्ञानेन्द्रियां ना हो अथवा इनमें किसी प्राकर की काई चोट लग जाये या क्षतिग्रस्त हो जाये तो हम देखने, सुनने एवं सूघने में असमर्थ हो जाते है। अतः ज्ञानेन्द्रियां का भी हमारे शरीर की संरचना एवं कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान है।

12.8 शब्दावली

अन्तःकर्ण :– आन्तरिक कान या कान का आन्तरिक भाग।

बाहय कर्ण :– कान का बाहरी भाग।

घ्राण :– नाक।

त्वक:– त्वचा।

दीप्तिमानः– प्रकाशमान।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.बाहय जगत 2.अन्तांग 3.घ्राण 4. मध्यकर्ण 5. अन्तःकर्ण।

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
3 मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन – मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. Essentials of Medical Physialogy – K. Sembulingam & Prema Sembulingam, Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– ज्ञानेन्द्रियों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए नेत्र की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 2– कान की संरचना एवं कार्यों को स्पष्ट कीजिए।
प्रश्न 3– नासिका की संरचना एवं कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालिए।

इकाई–13 जिह्वा एवं त्वचा की संरचना एवं कार्य

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 ज्ञानेन्द्रियॉ
13.4 त्वचा की संरचना तथा कार्य
13.5 जिहवा की संरचना तथा कार्य
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इस पूर्व की इकाई में आपने नेत्र, कर्ण तथा नासिका की संरचना एवं कार्यों का अध्यनयन किया है। प्रस्तुत इकाई में इसी क्रम को क्रमशः आगे बढ़ते हुए हम शेष को इन्द्रियों, जिहवा तथा त्वचा की संरचना एवं कार्यप्रणाली के विषयों में चर्चा करेंगे।
पाठकों जैसा कि आप जानते है, जीभ का मुख्य कार्य है स्वार को अनुभव करना तथा त्वचा का प्रधान कार्य स्पर्श की अनुभूति करना। शरीर विज्ञान की दृष्टि से इन इन्द्रियों की संरचना किस प्रकार से हुयी है तथा किस प्रक्रिया के द्वारा ये क्रमशः स्वाद एवं स्पर्श का अनुभव करती है। इन्हीं प्रश्नों के समाधान के लिये चर्चा करते है, जिहवा तथा त्वचा इन्द्रियों की संरचना एवं कार्यो के सम्बन्ध में।

13.2 उद्देश्य –

पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

- जिहवा की संरचना को स्पतष्ट कर सकेंगे।
- त्ववचा की संरचना का वर्णन कर सकेंगे।
- जिहवा तथा त्वचचा की कार्यप्रणाली का विश्लेगषण कर सकेंगे।

13.3 ज्ञानेन्द्रिया

बाह्य जगत के ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं (Sensations) के द्वारा ही संभव होती है। संवेदना का अनुभव तभी संभव है जब उससे संबन्धित संवेदी तन्त्रिकाओं (Sensory nerves) को उचित उद्दीपन (Stimulus) प्राप्त हो सके। उद्दीपनों के उत्पन्न हो जाने पर और उनके मस्तिष्क या स्पाइनल कॉर्ड में संचारित होने के बाद उनका विश्लेषण केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के द्वारा होता है और हम उस विशेष संवेदना का अनुभव मस्तिष्क के द्वारा अनुवादित होने पर ही करते हैं। शरीर ध्वनि, प्रकाश, गंध, दाब आदि के सांवेदनिक

अंगों (Special sense organs) पर निर्भर करती है, जो शरीर के विभिन्न भागों में स्थित होते हैं।

विशिष्ट सांवेदनिक अंगों से तन्त्रिका तन्तुओं का सम्बन्ध रहता है। तन्त्रिका तन्तुओं का विशिष्ट सांवेदनिक अंगों में अन्त (Termination) होने से पहले ये अपने न्यूरोलीमा (Neurolemma) तथा मायलिन आवरण (Myelin sheath) का त्याग कर देते हैं। प्रत्येक संवेदी तन्त्रिका का अन्तिम भाग कुछ विशेष प्रकार का बना होता है, जिसे अन्तांग (End organ) कहते हैं और ये अन्तांग ही संवेदन (Sense) के विशेष अंग होते हैं। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्धित अनेक उपांग होते हैं, जो उद्दीपन को अन्तांग तक संचारित (Transmit) करते हैं। परन्तु, वास्तविक उद्ददीपन अन्तांग में ही होता है और वहाँ से यह मस्तिष्क में पहुँचता है, जहाँ इसका विश्लेषण होता है और विशिष्ट संज्ञा (Special sense) का ज्ञान होता है।

मानव शरीर में निम्न पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense organs) होती हैं, जिनके द्वारा बाह्य जगत का ज्ञान होता है। ये हैं–

6. **स्पर्शेनिद्रय या त्वचा (Skin)-** इससे स्पर्श, दाब, पीड़ा, वेदना, ताप (ceat) एवं शीत (cold) का ज्ञान होता है।
7. **स्वादेन्द्रिय या जीभ (Tongue)-** इससे किसी वस्तु को चखने से उसके स्वाद का ज्ञान होता है।
8. **घ्राणेन्द्रिय या नाक (Nose)-** यह किसी वस्तु की गंध का ज्ञान कराती है।
9. **श्रवणेन्द्रियाँ या कान (Ears)-** कान हमें विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का ज्ञान कराते हैं।
10. **द्रश्येन्द्रियाँ या आँख (Eyes)-** इनके द्वारा संसार की वस्तुओं को देखा जाता है।

13.4 त्वचा की संरचना तथा कार्य

स्पर्शेन्द्रिय (Sense of touch) का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है, जबकि शरीर की अन्य समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ स्थानीय होती हैं, तथा एक निश्चित क्षेत्र में कार्य करती हैं। स्पर्श के अतिरिक्त ताप, शीत, दाब, पीड़ा, वेदना, हल्का, भारी, सूखा, चिकना आदि संवेदनाओं का ज्ञान इसी के द्वारा होता है। समस्त शरीर की त्वचा में तन्त्रिका तन्तुओं के अंन्तांगों (Nerve endings) का एक जाल–सा फैला रहता है, जो भिन्न–भिन्न संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाते हैं, इन्हें रिसेप्टर्स (Receptors) कहा जाता है।

किसी एक संवेदना के रिसेप्टर्स एक समान होते हैं तथा विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के रिसेप्टर्स एक–दूसरे से भिन्न होते हैं और इनकी रचना में भी भिन्नता होती है। त्वचा में विद्यमान विभन्नि प्रकार के रिसेप्टर्स एक–दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित रहते हैं। उचित प्रकार के उद्दीपक को त्वचा पर लगाकर विशिष्ट वर्ग के रिसेप्टर की स्थिति (Location) को ज्ञात किया जाता है। उस बिन्दु को उस विशष संवेदना का बिन्दु (Spot) कहा जाता है। त्वचा के जिन बिन्दुओं पर कुछ कड़े बाल (hair) के द्वारा स्पर्श कराने से स्पर्श की संवेदना (Sense of touch) का ज्ञान होता है, उन क्षेत्रों को 'ताप बिन्दु (Warm

spots), 'शीत बिन्दु' (Cold spots), पीड़ा बिन्दु (Pain spots) कहा जाता है। किसी विशष संवेदना के बिन्दु, त्वचा के किसी भाग पर अधिक और कहीं कम रहते हैं।

यदि किसी कड़ी वस्तु जैसे पेन्सिल की नोंक से त्वचा पर दबाव डालते हुए स्पर्श कराया जाए तो वह दाब (Pressure) की संवेदना होती है, जिसके रिसेप्टर्स विशेष वर्ग के होते हैं। इस प्रकार के रिसेप्टर्स त्वचा के अतिरिक्त शरीर के अन्य भाग, जैसे अस्थिआवरण (Periosteum), टेन्डन्स के नीचे, आन्त्रयोजनी (Mesentery) ग्रन्थियों में भी पाए जाते हैं। इस संवेदना से हमें अपने शीर या इसके विभिन्न भागों की स्थिति एवं उनकी गति का ज्ञान होता है। इस प्रकार के रिसेप्टर्स को लेमीलेटेड या पैसिनियन (Lamellated or Pacinian) कॉर्पसल्स (कणिका) कहते हैं। इसी से शरीर में स्थिति और गति की जानकारी होती हे। उदाहरण के तौर पर यदि आप एक व्यक्ति को दोनों आँखे बन्द कर उसके एक हाथ को टेबल पर रख दें और उसे अपने दूसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति में टेबल पर रखने को कहें, तो वह सहज ही पहले रखे गए हाथ के समीप दूसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति में रख लेगा।

ठसी प्रकार विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के लिए रिसेप्टर्स भी विशिष्ट प्रकार के होते हैं, जैसे स्पर्श की संवेदना के लिए 'स्पर्श कणिकाएँ' (Tactile corpuscles), दाब के लिए 'पैसिनियन कणिका' (Pacinian corpuscles), कॉर्पसल्स ऑफ रफीनी (Corpuscles of Ruffini), कार्पसल्स ऑफ क्रॉज (corpuscles of Krause), ताप के लिए गॉल्जी–मेजोनी (Golgi-Mazzoni organs) एवं रफीनी (Ruffini) कॉर्पसल्स के तन्त्रिका–अन्तांग, शीत के लिए बल्बस कॉर्पसल्स ऑफ क्रॉज (Bulbous corpuscles of Krause) के तन्त्रिका अन्त्रांग, आदि कुछ विशिष्ट संयोजक ऊतकों से निर्मित अन्तांग हैं, जिनमे क्यूटेनियस तन्त्रिकाओं के छोरों (Cutaneous nerve endings) का अंत होता है। पेशी स्पिन्डल (Muscle spindle), गाल्जी बॉडी तथा अन्तांग प्लेट्स (End plates) आदि भी त्वचा संवेदनाओं के माध्यम हैं। इनके अतिरिक्त पीड़ा एवं वेदना के आवेगों को ले जाने वाली तन्त्रिकाओं के अन्तांग स्वतन्त्र (Free nerve endings) रहते हैं अर्थात् ये त्वचा पर स्वतन्त्र रूप से फैले रहते हैं। स्पर्श संवेदन से सम्बन्धित कुछ तन्त्रिका–अन्तांग बालों की जड़ों में भी लिपटे रहते हैं, जिनसे स्पर्श का ज्ञान होता है।

इस प्रकार विभिन्न वर्ग के रिसेप्टर भिन्न–भिन्न संवेदनाओं को ग्रहण करते हैं। किसी एक प्रकार के रिसेप्टर्स किसी एक ही संवेदना को ग्रहण कर सकते हैं, जो तन्त्रिका अन्तांग ताप के लिए हैं उनसे स्पर्श की संवेदना नहीं हो सकती है।

13.5 स्वादेन्द्रिय या जीभ

जीभ या जिह्वा का मुख्य कार्य किसी वस्तु को चखकर उसके स्वाद को ज्ञात करना है क्योंकि स्वाद के रिसेप्टर्स (Receptors) इसी में स्थित होते हैं। स्वाद के कुछ रिसेप्टर्स कोमल तालू (Soft palate), टॉन्सिल्स एवं कंठच्छद (Epiglottis) आदि की म्यूकस मेम्ब्रेन में भी होते हैं।

जीभ एक अत्यधिक गतिशील अंग है, जो स्वाद–संवेदन के अतिरिक्त चबाने (Mastication), निगलने (Swallowing) तथा बोलने (Speech) जैसे महत्वपूर्ण कार्यों को भी संपदित करती है। जीभ मुख में स्थित म्यूकस मेम्ब्रेन से पूर्णतः ढँकी हुई ऐच्छिक पेशियों से

निर्मित एक संवेदांग है। जीभ की पेशियाँ आन्तरिक (Intrinsic) एवं बाह्य (Extrinsic) दोनों प्रकार की होती हैं। आन्तरिक पेशियाँ जीभ के मुख्य अंग बनाती हैं तथा सभीप्रकार की नाजुक गतियाँ (Extrinsic) कराती हैं एवं बाह्य पेशियाँ जीभ तथा हॉयाड अस्थि (Hyoid bone), निचले जबड़े (Mandible) और टेम्पोरल अस्थि के स्टाइलॉइड प्रवर्ध के बीच में स्थित रहती हैं तथा चबाने एवं निगलने में होने वाली गतियाँ (ऊपर–नीचे, आगे–पीछे) कराती है।

जीभ के छोर या अग्रभाग (Tip), काय (Body) एवं आधार (Base or root) तीन भाग होते हैं। इसका आधार हॉयाड़ अस्थि से जुड़ा होता है जबकि इसका छोर तथा काय स्वतन्त्र होते हैं। जीभ की ऊपर की सतह डॉर्सम (Dorsum) कहलाती है, जो स्ट्रैटिफाइड स्क्वेमस एपीथीलियम (Stratified squamous epithelium) से स्तरित होती है। जब जीभ को ऊपर की ओर पलटा (Turned up) जाता है तो इसकी निचली सतह पर ऊपर की ओर मध्य रेखा की ओर आती हुई म्यूकस मेम्ब्रेन की कई तहें दिखाई देती हैं, जिसे **जिह्वा बंध** या **फ्रेनुलम** (Frenulum-linguae) कहते हैं। यह जीभ के पोस्टीरियर भाग को मुख के तल से जोड़ती है। जीभ का एन्टीरियर भाग स्वतन्त्र (Free) रहता है। जीभ को बाहर की ओर निकालने पर इसका छोर (Tip) नुकीला हो जाता है, किन्तु जब यह मुख तल में तथा शिथिल रहती है, तो इसका छोर (अग्रभाग) गोल रहता है।

स्वस्थ अवस्था (Health) में जीभ की म्यूकस मेम्ब्रन तर (Moist) एवं गुलाबी रहती है। इसकी ऊपरी सतह मखमली (Velvety) दिखाई पड़ती है तथा बहुत से उभारों (protuberances) से आच्छादित रहती है, जिन्हें **अंकुरक** या **पैपिली** (Papillae) कहते हैं। अंकुरक, जीभ की केवल ऊपरी सतह पर रहते हैं, निचली सतह पर इनका पूर्णतः अभाव रहता है किन्तु ये तालू (Palate), गले (Throat) एवं कंठच्छद (Epiglottis) की पोस्टीरियर सतह पर भी पाए जाते हैं। अंकुरकों में रक्तकोशिकाएँ (Capillaries) जाल के रूप में फैली रहती है। स्वाद–तन्त्रिकाओं–सातवीं (VII), नौवीं (IX), तथा दसवीं (X), कपालीय तन्त्रिकाओं के तन्तुओं का अन्त इन्हीं अंकुरकों (पैपिली) में होता है। इन अंकुरकों को **'स्वाद कलिकाएँ'** (Taste buds) भी कहा जाता है। मानव में लगभग 10,000 स्वाद कलिकाएँ रहती हैं। वृद्धवस्था में इनकी संख्या में कमी आ जाती है।

अंकुरक (पैपिली) मुख्यतः निम्न तीन प्रकार के होते हैं–

1. **परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपिली** (Circumvallated Papillae)
2. **छत्रिकांकुर या फन्गिफॉर्म पैपिली** (Fungi form Papillae)
3. **सुत्रिकांकुर या फिलिफॉर्म पैपिली** (Filiform Papillae)

परिवृत्त अंकुरक (Circumvallated Papillae)- ये जीभ की सतह पर पीछे की ओर अर्थात् पोस्टीरियर दो तिहाई भाग के समीप अंग्रेजी के उल्टे 'V' के आकार में दो समान्तर पंक्तियों (Rows) में 10 से 12 की संख्या में व्यवस्थित रहते हैं। प्रत्येक परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपिली में 90 से 250 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती हैं। ये काफी बड़ी आकार के और आसानी से दिखाई देने वाले अंकुरक (पैपिली) होते हैं।

छत्रिकाकुंर (Fungi form Papillae)- ये जीभ पर विशेषकर उसके छोर (अग्रभाग) तथा किनारों प8र स्थित मशरूम (Mushroom) के समान दिखाई देने वाले, एकल फैले हुए

(Singly scattered) अंकुरक होते हैं। इन प्रत्येक अंकुरक में 1 से 8 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती हैं।

सूत्रिकांकुर (Filiform Papillae)- ये जीभ के अगले दो तिहाई भाग की सतह पर पाए जाने वाले धागे के समान (Thread like) नुकीले अंकुरक होते हैं। इनमें स्वाद कलिकाओं का अभाव रहता है। इनका कार्य स्वाद ज्ञान कराने की अपेक्षा वस्तु को प्रतीत कराना है। स्वाद की अनुभूति सरकमबैलेट एवं फन्गिफॉर्म पैपिली से ही होती है।

स्वाद कलिकाएँ एवं स्वद ग्रहण करने की किया विधि– स्वाद कलिकाएँ (Taste buds) ही स्वाद की विशिष्ट अन्तांग हैं। इनकी प्रत्येक कोशिका में स्वाद–तन्त्रिका (Lingual and gloss pharyngeal nerve) की शाखा आती है। प्रत्येक स्वाद कलिका अंकुरक (पैपिली) की सतह पर सूक्ष्म रन्ध्र (Tiny pore) से खुलती है और उसकी सभी कोशिकाएँ जो इस स्थान पर सामूहिक रूप से पहुँचती है, उनका अन्त सूक्ष्म बाल के समान अनेकों उभारों में होता है। खाद्य पदार्थ इन रन्ध्रों में प्रवेश कर इन उभारों को अपने संस्पर्श से उद्दीप्त करते हैं। इनमें उत्पन्न उद्दीपन के आवगे स्वाद–संवेद की तन्त्रिकाओं (VII, IX व X कपालीय तन्त्रिकाएँ) के द्वारा मस्तिष्क के स्वाद केन्द्र (Taste centre) में संचारित होते हैं और वहाँ स्वाद का विश्लेषण होता है, तत्पश्चात ही हमें विभिन्न प्रकार के स्वादों का ज्ञान होता है।

प्रत्येक स्वाद कलिका अण्डाकार होती है। इनके अक्ष सतह पर सीधे एवं सम्बद्ध (Perpendicular) दिशा में स्थित रहते हैं। इनमें नीचे की ओर से रक्तवाहिकाएँ और तन्त्रिकाएँ भी प्रवेश करती हैं स्वाद कलिकाओं में कीमोरिसप्टर या गस्टेटरी कोशिकाएँ तथा सहारा देने वाली समोर्टिंग कोशिकाएँ रहती हैं।

मूलभूत स्वाद संवेदन (Basic taste sensation)- मुख्य रूप से स्वाद की अनुभूतियाँ मीठी, खट्टी, कड़वी एवं नमकीन चार प्रकार की होती है। आधिकांश खाद्य पदार्थों में स्वाद के साथ–साथ महक (Flavor) भी होते हैं, किन्तु यह गंध की संवेदना से सम्बन्धित रहती है और गंध के रिसेप्टर्स को उद्दीप्त करती है न कि स्वाद के रिसेप्टर्स को।

मूलभूत स्वाद संवेदनाएँ जीभ की सतह पर समस्त भागों में समानरूप से उत्पन्न नहीं होती हैं। जीभ के निश्चित भाग ही विशेष स्वाद द्वारा प्रभावित होते हैं। मीठे एवं नमकीन स्वाद जीभ के छोर या अग्रभाग (Tip) पर, खट्टा स्वाद जीभ के दोनों पार्श्वों (Sides) में तथा कडुवा स्वाद जीभ के पिछले भाग (गले के पास) में पता लगता है। जीभ के मध्य भाग में विशेष 'स्वाद संवेदना' नहीं रहती है। इस प्रकार, प्रत्येक निश्चित विशेष स्वद के लिए जीभ में निश्चित विशेष स्वाद कलिकाएँ (Taste buds) रहती हैं, जो किसी विशेष प्रकार के उद्दीपन से ही प्रभावित होती हैं।

स्वाद आवेगों का पथ (Pathways for taste impulses)- स्वाद संवेदनाओं के आगेग जीभ के अगले दो तिहाई भाग से फेशियल तन्त्रिका (Facial nerve) की शाखा द्वारा, पिछले एक तिहाई भाग से ग्लॉसोफेरन्जियल तन्त्रिका (Glosso pharyngeal nerve) द्वारा तथा तालू (Palate) एवं ग्रसनी (Pharynx) से वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve) द्वारा मस्तिष्क तक को संचारित होते हैं। उपर्युक्त तीनों कपालीय तन्त्रिकाओं के स्वाद तन्तु (Taste fibres) मेड्यूला ऑब्लांगेटा समाप्त (Terminate) होते हैं। यहाँ से अक्षतन्तु या एक्सॉन्स (Axons) थैलेमस

(Thalamus) की ओर निकलते हैं तथा फिर प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के पैराइटल लोब् में स्थित 'स्वाद केन्द्र' (Taste centre) में पहुँच जाते हैं।

घ्राणेन्द्रिय या नाक (Nose)- नाक का कार्य किसी वस्तु या पदार्थ की गन्ध का ज्ञान करना या सूँघना (Olfaction) है। जिस प्रकार स्वाद के ज्ञान के लिए पदार्थ का घोल रूप में होना अनिवार्य है, उसी प्रकार गन्ध के ज्ञान या सूँघने के लिए पदार्थ या वस्तु का गेस या वाष्पा के रूप में होना आवश्यक है। नाक में पहुँचकर वाष्प या गैस स्थानीय स्राव में घुल जाता है और घ्राण क्षेत्र की कोशिकाओं (Olfactory cells) को उद्दीप्त करता है। यहाँ से उद्दीपन के आवेग घ्राण बल्ब में और फिर घ्राण–पथ से होकर मस्तिष्क के घ्राण क्षेत्र में पहुँचते हैं जहाँ पर आवेगों का विश्लेषण होकर गन्ध का ज्ञान होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1– जीभ एक अत्यन्त गतिशील अंग है, जो स्वाद संवेदन के अतिरिक्त................ चबाने, निगलने तथा .... जैसे महत्व्पूर्ण कार्यों को भी सम्पादित करती है।

2– जीभ की पेशियॉ आन्तरिक तथा .... दोनों प्रकार की होती है।

13.6 सारांश –

प्रिय पाठकों उपरोक्त विवरण से आप जान गये हैं कि ऑख, नाक एवं कान के समान जीभ एवं त्वचा का भी बाहय वस्तुओं तथा सूचनाओं का ज्ञान करवाने में कितना महत्व है जीभ इन्द्रिया न हो तो खाने के जितने भी पदार्थ है, वे सब हमें स्वादहीन लगेंगे। इसके साथ ही चबाने एवं बोलने के कार्य में भी बाधा आयेगी। इसी प्रकार त्वचा इन्द्रियों के कार्य न करने पर हम किसी प्रकार की संवेदना का ही अनुभव नहीं कर पायेंगे।

अतः स्पष्ट हैं कि हमारे शरीर की समस्त ज्ञानेन्द्रियों का स्वस्थ्य होना तथा सुचारू ढंग से कार्य करना अत्यधिक आवश्यक है।

13.7 शब्दावली –

शिथिल – विश्राम की अवस्थाह ।

आच्छादित – आवृत

स्पाइनल कार्ड – रीढ़ की हड्डी ।

केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र – इसमें मस्तिष्क तथा मेकर आते है।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. **बोलने**
2. **बाहय**

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
3 मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन – मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. Essentials of Medical Physialogy – K. Sembulingam & Prema Sembulingam, Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 जिहवा की संरचना तथा कार्यों का वर्णन ।

प्रश्न–2 त्वचा की संरचना एवं कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालिए ।

इकाई 14 पीयूष ग्रन्थि, एड्रिनल ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 पीयूष ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य
14.3.1 अग्रखण्ड संरचना एवं कार्य
14.5.2 पश्च खण्ड संरचना एवं कार्य
14.4 एड्रीनल ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य
14.4.1 एड्रीनल कॉर्ट्रेक्स संरचना एवं कार्य
14.4.2 एड्रीनल मेड्यूला संरचना एवं कार्य
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.9 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से पूर्व आपने शरीर के महत्वपूर्ण संस्थानों के विषय में पढ़ा और महत्वपूर्ण व उपयोगी जानकारी अर्जित की।प्रस्तुत इकाई में आप शरीर और मन पर प्रभाव डालने वाले विशेष तन्त्र अन्तः स्रावी तन्त्र के महत्वपूर्ण अंग पीयूष ग्रन्थि और एड्रिनल ग्रन्थि के विषय में विस्तारपूर्वक पढेंगें। आप जानेंगे कि ये दोनों ग्रन्थियां कौन–कौन से स्रावों का स्रावक करती हैं एवं उनका क्या कार्य होता है।

आगे आप विस्तारपूर्वक पीयूष ग्रन्थि जो मास्टर ग्रन्थि भी कही जाती है के विषय में विस्तार पूर्वक पढ़ेंगें।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप–

- पीयूष ग्रन्थि की संरचना के विषय में जानेंगे
- अग्र पिट्यूटरी से निकलने वाले हॉर्मोनों के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पश्च पिट्यूटरी से निकलने वाले हॉर्मोनों के नाम व उनके कार्यों के विषय में जान पाएंगे।
- एड्रीनल ग्रन्थि की संरचना के विषय में जानेंगें
- एड्रीनल कॉर्ट्रेक्स से निकलने वाले हॉर्मोनों के नाम एवं कार्यों के विषय में जानेंगे।

- एड्रीनल मेड्यूला से निकलने वाले हॉर्मोन एवं उनके कार्यों के विषय में जानेंगे।

14.3 पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland) की संरचना एवं कार्य–

- मानव शरीर रचना में पीयूष ग्रन्थि या Hypophysis एक मटर के आकार की अतःस्रावी ग्रन्थि है। मनुष्यों में इसका वजन 0.5 ग्राम (0.02 ओस) होता है। यह सेला टर्निका (Sella Turnica) या हाइपोफाइसियल फोसा (Hypophysial Fosa) में हाइपोथैलेमस के नीचे स्थित होती है।
- पीयूष ग्रन्थि एक अति महत्वपूर्ण अतःस्रावी ग्रन्थि है जिसे मास्टर ग्रन्थि (Master Gland) भी कहा जाता है क्योंकि इससे उत्पन्न हॉर्मोन्स (Hormones) अन्य अतःस्रावी ग्रन्थियों की सक्रियता को उद्दीप्त करते हैं।
- पीयूष ग्रन्थि शरीर के विकास में तथा शरीर में पानी के संतुलन को बनाये रखने में सहायता करती है।
- पीयूष ग्रन्थि दो खण्डों में विभाजित होती है। पहले खण्ड को अग्रखण्ड (anterior lobe or adenohypophysis) कहा जाता है और दूसरे खण्ड को ष्च्च खण्ड (posterior lobe or neurohypophysis) कहा जाता है। इन दोनों खण्डों की संरचना एवं कार्यों में अंतर है।
- अग्रखण्ड उपकला कोषिका (Epithelial cell) का समूह है जो रक्त चैनलों से विभाजित होता है। इसके विपरीत पष्च खण्ड मस्तिष्क से सम्बन्धित होता है और तन्त्रिका तंत्र से निर्मित होता है एवं प्रत्यक्ष रूप से हाइपोथैलेमस (Hypothalarnus) से जुड़ा रहता है।
- अग्रखण्ड व पश्च खण्ड से अलग–अलग हॉर्मोस का स्राव होता है जो विभिन्न कार्यों के लिए उपयोगी होते हैं।

14.3.1 अग्र खण्ड (Anterior Pituitary or Adenohypophysis) की संरचना एवं कार्यः–

अग्रखण्ड निम्न सात हॉर्मोस का निर्माण करता है–

1. वृद्धि हॉर्मोन (Growth Hornone GH) या सोमेटोट्रॉपिक हॉर्मोन (Somatotropic Hormone)
    - यह हॉर्मोन शरीर के किसी विषिष्ट लक्ष्य अंग को प्रभावित करता है जो भाग वृद्धि से सम्बद्ध होते हैं।
    - यह वृद्धि दर को बढ़ाता है और परिपक्वता की स्थिति निर्माण के बाद वृद्धि को बनाए रखता है।

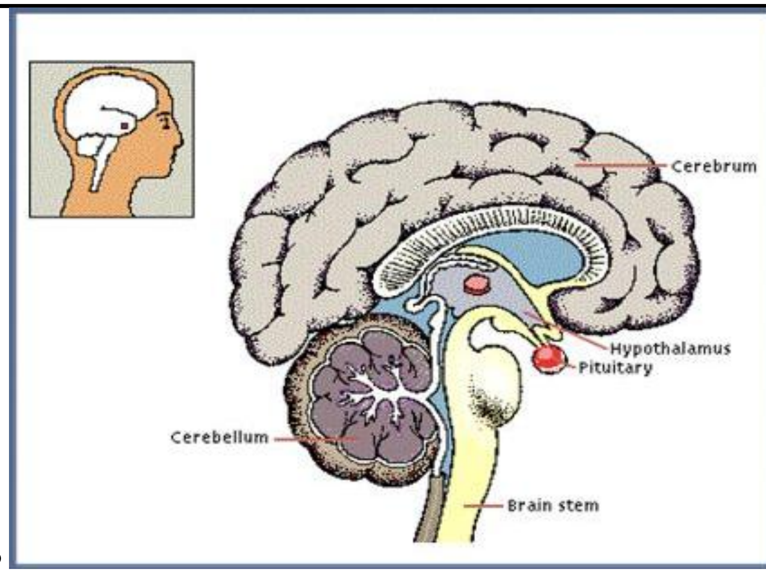

PITUITARY GLAND

- इससे शरीर की वृद्धि और विशेषकर लम्बी अस्थियों की वृद्धि का नियमन होता है।
- यह एक प्रोटीन पर आधारित पेप्टॉइड हॉर्मोन है। यह मनुष्यों और अन्य जानवरों में वृद्धि, कोषिका प्रजनन और पुनर्निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

बच्चों और किशोरों में ऊँचाई बढ़ाने के अलावा वृद्धि हॉर्मोन के शरीर पर कई अन्य प्रभाव भी होते हैं–

- कैल्शियम के धारण में वृद्धि करता है और हड्डी के खनिजीकरण को बढ़ाता व उसको मजबूत करता है।
- वसा अपघटन को बढ़ावा देता है।
- प्रोटीन संश्लेषण बढ़ाता है।
- मस्तिष्क को छोड़कर सभी आंतरिक अवयवों के विकास को प्रोत्साहित करता है।
- यकृत में ग्लुकोज के जमाव को कम करता है।
- यकृत में ग्लाइकोजन उत्पादन को बढ़ावा देता है।
- अग्नाशय की द्वीपीकाओं के रख रखाव और कार्यकलाप में मदद करता है।
- रोगप्रतिरोधक प्रणाली को प्रोत्साहित करता है।

वृद्धि हॉर्मोन की कमी के प्रभाव

- बच्चों में वृद्धि लोप और छोटा कद (short structure) वृद्धि हॉर्मोन की कमी के मुख्य लक्षण है।

पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

अग्रखण्ड (Anterior lobe or adenohypophysis) पश्च खण्ड (Posterior lobe or neurohypophysis)

1.	वृद्धि हॉर्मोन(Growth Hormone or Somatotropic hormone)	1.	ऑक्सीटोसिन (Oxytocin)
2.	थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन(Thyroid stimulating hormone, TSH)	2.	2. वैसोप्रेसिन (Vassopressin or Antidiuretic Hormone ADH)
3.	एड्रीनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन (Adrenocorticotropic Hormone ACTH		
4.	ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (lutinizing Hormone LH)		
5.	प्रोलैक्टिन (Prolactin)		
6.	फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन(Follicle Stimulating Hormone FSH)		
7.	मैलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन(Melanocyte Stimulating Hormone MSH)		

1. वृद्धि हॉर्मोन की अधिकता के प्रभावः–

- वृद्धि हॉर्मोन के बाहुल्य के कारण जबड़े, हाथ व पैरों की हड्डियॉ मोटी हो जाती हैं। इसे एक्रोमिगेली (Acromegaly) कहते हैं।
- साथ में होने वाली समस्याओं में पसीना आना, नाड़ियों पर दबाव, पेषियों की षिथिलता, यौन क्रिया में कमी आदि है।

2. थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid Stimulating Hormone TSH)

- पीयूष ग्रन्थि द्वारा स्राति यह एक महत्वपूर्ण हॉर्मोन है। थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन थाइरॉइड ग्रन्थि तक यात्रा करता है और थाइरॉइड ग्रन्थि को दो थाइरॉइड हॉर्मोन उत्पन्न करने के लिए उद्दीप्त करता है। यह दो थाइरॉइड हार्मोन एल–थाइरॉक्सिन (L-Thyroxine T4) और ट्राईआयोडोथायरोनिन (Triodothyronine T3) हैं।
- पीयूष ग्रन्थि यह अनुभव कर सकती है कि कितना हॉर्मोन रक्त में हैं और उसके अनुसार कितना उत्पन्न करना है। अगर किसी कारण से इनका

स्राव कम या अधिक हो जाए, तो यह विभिन्न रोंगों के जन्म का कारण बनती है।

थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के प्रभाव (Effect of Hypothyroidism)

- उत्तकों में कमी, गलगांड (Goitre), वजन बढ़ना, मॉसपेषियों में अकड़न आदि थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के लक्षण हैं।

थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की अधिकता के प्रभाव (Effect of Hyperthyroidism)

थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा थाइरॉइड ग्रन्थि से अत्यधिक मात्रा में हॉर्मोन का स्रावण होने से हाइपर थाइरॉडिस्म (Hyperthyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड (Exophthalmic goitre) हो जाता है। इस रोग के लक्षणों में ऑखें बाहर को उभर जाती हैं तथा रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। अधिक भूख के बावजूद वजन कम होने लगता है। अंगुलियों में कंपन और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

- इसकी अधिकता से कुशिंग रोग (cushing syndrome) हो जाता है।

3. ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (Luteinizing Hormone LH)

- यह बड़े प्रोटीन है जो सामान्य परिसंचरण द्वारा गोनाडोट्रोप कोशिकाओं (Gonadotropic cells) में उत्पन्न होते हैं। एल.एच. (LH) वृषण की लेडिग कोशिकाओं (Leyding cells) को पुरूषों में टेस्टोस्टेरोन (testosterone) बनाने के लिए उत्तेजित करता है तथा स्त्रियों मे नब्ज में वृद्धि के साथ–साथ योनि की थेका कोशिकाओं (Theca cells) को टेस्टोस्टेरॉन (testosterone) और उससे कुछ कम मात्रा में प्रोजेस्टेरॉन (Progesterone) उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करता है।
- Ovulation में सहायता करता है।

4. प्रोलैक्टिन (Prolactin)

- इसका लक्ष्य अंग mammary glands होते हैं तथा यह स्तनों को दूध उत्पादन के लिए उत्तेजित करता है। प्रोलैक्टिन प्रजनन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- प्रोलैक्टिन वयापचय के लिए भी महत्वपूर्ण है।
- प्रोलैक्टिन गर्भावस्था के दौरान संष्लेषण (surfactant synthesis) प्रदान करता है तथा भ्रूण की प्रतिरक्षा सहनशीलता में भी योगदान देता है।

5 फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle stimulating Hormone FSH)

- यह पुरूषों और महिलाओं दोनों में ही बनता है।

- महिलाओं में इस हॉर्मोन से अंडों का उत्पादन व पुरूषों में शुक्राणुओं का उत्पादन उत्तेजित होता है।

6. मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन (Melanocyte Stimulating Hormone MSH)

- यह हॉर्मोन त्वचा एवं बालों में मेलेनोसाइट (melanocyte) द्वारा मेलेनिन (melanin) के उत्पादन को उत्तेजित करता है।
- यह भूख एवं कामोत्तेजना पर भी प्रभाव डालता है।
- MSH मे वृद्धि से रंग बदलाव होता है।
- गर्भावस्था के दौरान यह हॉर्मोन बढ़ जाता है तथा गर्भवती महिलाओं में पिगमेन्टेशन (pigmentation) का कारण बनता है।

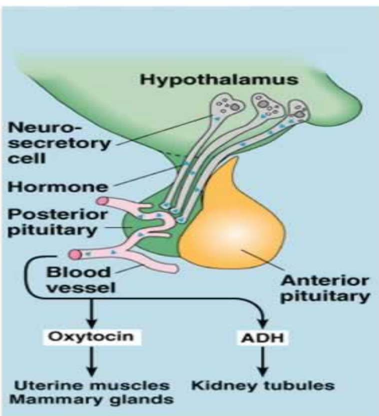

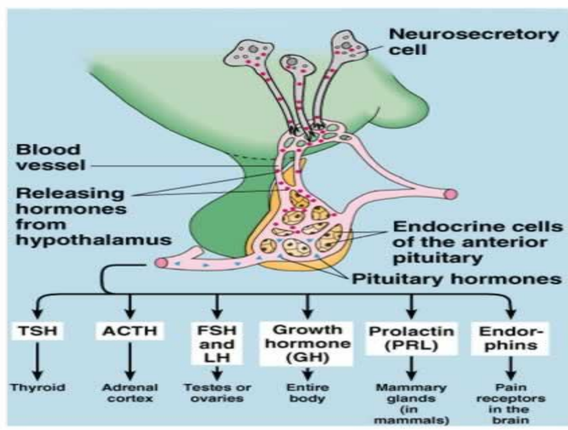

पश्च खण्ड (Posterior Pituitary) की संरचना एवं कार्य –

पश्च खण्ड निम्न दो हॉर्मोन्स का निर्माण करता है –

1. **ऑक्सीटोसिन** (Oxytocin)

- यह हॉर्मोन महिला प्रजनन में भूमिका के लिए जाना जाता है। यह प्रसव के दौरान योनि और गर्भाशय के फैलाव के समय बड़ी मात्रा में उत्पन्न होता है और स्रावित होता है।
- गर्भाशय संकुचन में सहायता करता है।

2. **वैसोप्रेसिन** (Vassopressin or Antidiurctic Hormone)

- वैसोप्रेसिन एक पेप्टाइड हॉर्मोन है जो गुर्दों के tubules में अणुओं के reapsorption को नियंत्रित करता है और ऊतक पारगम्यता को बनाए रखता है।
- यह परिधीय संवहनी प्रतिरोध को बढ़ाता है, जिससे धमनियों में रक्तचाप बढ़ जाता है (Vasoconstruction)

- यह समावस्था (Homeostasis) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और पानी, ग्लूकोज व रक्त लवण के विनियमन में भी सहायता करता है।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत

1. पीयूष ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि भी कहा जाता है।
2. वृद्धि हॉर्मोन की कमी के कारण एक्रोमिगेली नामक रोग हो जाता है।
3. पीयूष ग्रन्थि के पश्च खण्ड से प्रोलेक्टिन व ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन स्रावित होते हैं
4. वैसोप्रैसिन हॉर्मोन समावस्था बनाएं रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1. पीयूष ग्रन्थि के अग्र खण्ड को ....तथा पश्च खण्ड को.............भी कहते हैं।
2. ....हॉर्मोन गर्भवती महिलाओं में पिगमेन्टेशन वृद्धि का कारण बनता है।
3. एड्रिनोकोर्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन के अधिक स्रावण से ....रोग हो जाता है।
4. ....हॉर्मोन ovulation में सहायता करता है।

14.4 एड्रीनल/अधिवृक्क ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य –

हमारे शरीर में दो अधिवृक्क ग्रन्थियाँ होती हैं तथा दोनों गुर्दों की चोटी पर स्थित होती है। यह कनेक्टिव टिश्यू कैप्सूल (connective tissue capsule) से घिरी होती हैं और आंशिक रूप से वसा के एक द्वीप में दबी रहती हैं। अधिवृक्क ग्रन्थि को सुपरारीनल ग्रन्थि (Suprarenal Glands) भी कहा जाता है

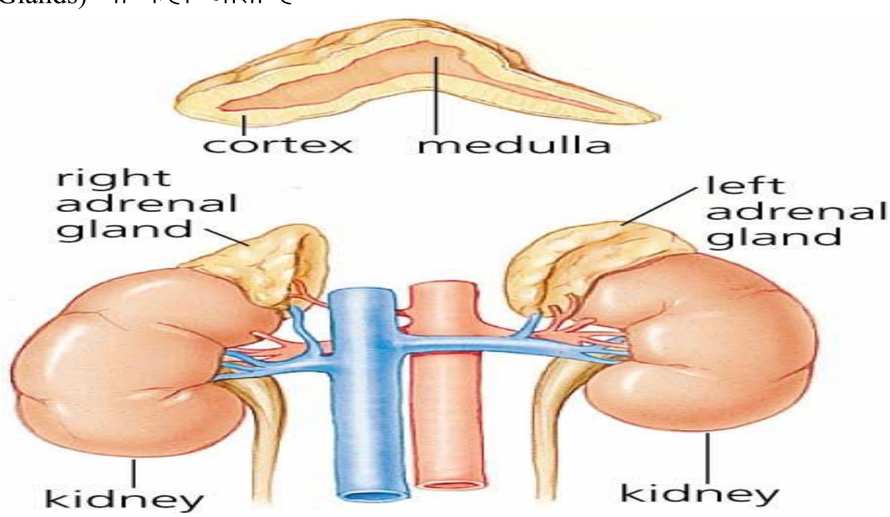

अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल कॉर्टेक्स (Adrenal Cortex) ↓	एड्रीनल मैड्यूला (Adrenal Medulla) ↓
1. मिनरलोकॉर्टीकोइड (Mineralocorticoid)	1. एपीनेफ्रीन (Epinephrine)
2. ग्लूकोकॉर्टीकोइड (Glucocorticoid)	2. नॉरएपीनेफ्रीन (Norepinephrine)
3. गोनाडोकॉर्टीकोइड (Gonadocorticoid)	

यह दोनों दो भागों में विभाजित होती हैं –

- पहली एड्रीनल कॉर्टेक्स (Adrenal Cortex) जो कि बाहरी क्षेत्र होता है और दूसरे को एड्रीनल मैड्यूला (Adrenal Medulla) कहा जाता है, जो कि आंतरिक क्षेत्र है।
- एड्रीनल कॉर्टेक्स और एड्रीनल मैड्यूला दोनों अलग–अलग कार्य करती हैं।

14.4.1 एड्रीनल कॉर्टेक्स की संरचना एवं कार्य

यह वजन में 5–7 ग्राम की ग्रन्थि है जो एड्रीनल ग्रन्थि का लगभग 90 प्रतिशत भाग बनाती है। यह कई स्टेरॉइड हॉर्मोन उत्पन्न करती है, जिन्हें कार्टिकोस्टेरॉइड (Corticosteroid) कहा जाता है।

कार्टेक्स के तीन क्षेत्र होते हैं –

पहला क्षेत्र – बाह्य क्षेत्र (outer zone) से मिनीरेलोकॉर्टिकॉइड (Mineralocorticoid) स्रावित होते हैं।

द्वितीय क्षेत्र – मध्य क्षेत्र (middle zone) से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड (glucocorticoid) स्रावित होते हैं।

तृतीय क्षेत्र – आन्तरिक क्षेत्र (inner zone) से सेक्स हॉर्मोन या gonadocorticoid स्रावित होते हैं।

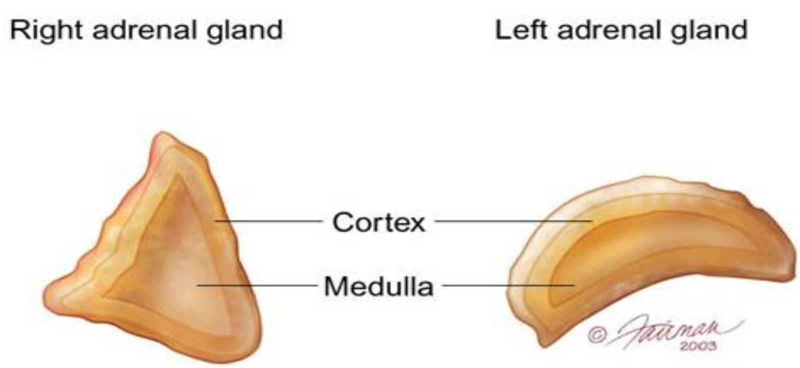

मिनरेलोकॉर्टिकॉयड (Mineralocorticoid)

इसके अन्तर्गत एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) तथा डिहाइड्रोएपिएन्ड्रोस्टेरॉन (dehydroepiandrosteron) समाहित होते हैं, जिसमें एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) प्रमुख हॉर्मोन है। मिनरेलोकॉर्टिकॉयड एड्रीनल कॉर्टेक्स के बाह्य क्षेत्र की कोशिका द्वारा उत्पन्न होने वाले स्टेरॉइड हॉर्मोनों का एक समूह (group) है, जो खनिजों (minerals) की सान्द्रता (density) को नियन्त्रित करता है।

एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) शरीर में सोडियम (Na) और पोटेशियम (K) के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायता करता है। यह वृक्कीय नलिकाओं (kidney tubule) द्वारा रक्त में सोडियम के पुनः अवशोषण में वृद्धि करता है जिससे मूत्र में सोडियम का उत्सर्जन कम होने लगता है। और पोटैशियम का उत्सर्जन बढ़ जाता है। यह श्वेद ग्रन्थियों (sweat glands) पर भी क्रिया करता है, जिससे शरीर द्रव्यों (body fluid) में इलेक्ट्रोलाइट्स (electrolytes) का संतुलन सामान्य बना रहे।

एल्डोस्टेरॉन की अधिकता से (अधिक स्राव होने पर) उच्च रक्तचाप (high blood pressure) हो जाता है। और रक्त में पोटैशियम की कमी (हाइपोथेलीमिया) हो जाती है, जिससे शरीर में झुनझुनी, सुई सी चुभन, कमजोरी, चक्कर आना आदि अपसंवेदनायें उत्पन्न हो जाती हैं।

ग्लूकोकॉर्टिकॉयड (Glucocorticoid)

यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के मध्य क्षेत्र से स्रावित होने वाला हॉर्मोन है। यह रक्त शर्करा (blood glucose) की सान्द्रता को नियन्त्रित करने में सहायता करता है। यह दो तरह के होते हैं –

A. कॉर्टिसोल या हाइड्रोकॉर्टिसोन (cortisol or hydrocortisone)

B. कॉर्टिकोस्टेरॉन (corticosterone)

ग्लूकोज़ सान्द्रता का नियमन करने के अलावा यह ग्लूकोकॉर्टिकॉयड सभी तरह के भोज्य पदार्थों जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा आदि के उपापचय (metabolism) को प्रभावित करते हैं। यह एण्टीइन्फ्लेमेट्री एजेण्ट (anti-inflammatory agent) की तरह भी कार्य करते हैं। ये वृद्धि को भी काफी हद तक प्रभावित करते हैं। ये शारीरिक अथवा मानसिक तनाव (stress) के प्रभावों को कम करने में सहायक होते हैं। यह यकृत द्वारा संग्रहीत प्रोटीन को ग्लूकोजन में परिवर्तित करता है, जिसे ग्लूकोनियोजेनेसिस की प्रक्रिया कहा जाता है और यह कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के उपयोग को भी कम करता है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर में रक्त शर्करा (blood sugar) का स्तर बढ़ जाता है। परन्तु यह अग्नाशय (pancreas) द्वारा स्रावित insulin से प्रायः सन्तुलित हो जाता है।

ग्लूकोकॉर्टिकॉयड के अधिक मात्रा में स्रावित होने के कारण 'कुसिंग्स रोग' (Cushing's syndrome) होता है। जो प्रायः कॉर्टेक्स में ट्यूमर का कारण बनता है। 'कुसिंग रोग' में हाथ–पैर सामान्य रहते हैं, परन्तु चेहरा, वक्षस्थल एवं उदर क्षेत्र की चर्बी बढ़ जाती है। उदर पर धारियाँ बन जाती हैं। मधुमेह होने की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है। त्वचा

का रंग बदल जाता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। कमर दर्द रहने लगता है। पुरुषों में नपुंसकता तथा स्त्रियों में मासिक धर्म बन्द हो जाता है।

गोनेडोकॉर्टिकॉयड्स (Gonadocorticoid)

यह सेक्स हॉर्मोन (sex hormone) भी कहलाता है। यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के आन्तरिक क्षेत्र से स्रावित होने वाला हॉर्मोन है। इनका नियमन एडिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन द्वारा होता है। सेक्स अंगों पर इसका प्रभाव बहुत कम मात्रा में होता है। इसके अन्तर्गत एण्ड्रोजन (Androgen), ईस्ट्रोजन (Oestrogen) तथा प्रोजेस्टेरोन (Progesterone), इन तीन लिंग हॉर्मोन्स का समावेश होता है, जिनका सम्बन्ध जनन तथा लैंगिक विकास से होता है। इनका प्रभाव वृषण (testis) एवं डिम्बाशय (ovum) द्वारा स्रावित हॉर्मोन के समान ही होता है। ये पुरुष एवं स्त्रियों के प्रजनन अंगों के कार्य को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा उनकी शारीरिक एवं स्वभावगत विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं।

इस हॉर्मोन के अतिस्रावण से बच्चों में समय पूर्व लैंगिक परिपक्वता (sexual maturity) है और स्त्रियों में द्वितीयक पुरुष लिंग विशिष्टतायें, जैसे आवाज में भारीपन, स्तनों के आकार में कमी, दाढ़ी–मूंछ का आना आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

इसकी अल्पसक्रियता से 'एडीसन' रोग (Addison's disease) उत्पन्न हो जाता है। इस रोग में कमजोरी एवं अति थकावट महसूस होती है, त्वचा का रंग ताँबे जैसा हो जाता है। रक्ताल्पता (anaemia), रक्त में पोटेशियम (K) स्तर बढ़ जाता है तथा सोडियम का स्तर घट जाता है। रक्तचाप कम हो जाता है, रक्त शर्करा (blood sugar) का स्तर कम हो जाता है। इस रोग का नियन्त्रण कॉर्टिसोन एवं एल्डोस्टीरॉन की नियमित मात्रायें देकर किया जा सकता है।

14.4.2 एड्रीनल मेड्यूला (Adrenal Medulla) की संरचना एवं कार्य – यह एड्रीनल ग्रन्थि का आन्तरिक भाग होता है और पूरी तरह से कॉर्टेक्स से ढँका रहता है। इससे कैटेकॉलेमाइन्स (Catecholemines) अर्थात एड्रीनलीन (Adrenaline) या इपीनेफ्रीन (epinephrine) तथा नॉरएड्रीनलिन (Noradrinalin) या नॉरएपीनेफ्रीन (Norepinephrine) नामक दो हॉर्मोन का स्रावण होता है।

नॉरएपीनेफ्रीन एपीनेफ्रीन की अपेक्षा कम प्रभावी होता है और यह बहुत कम मात्रा में उत्पन्न होता है। इस हॉर्मोन का प्रभाव सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र के समान ही होता है, जैसे श्लेषमा का स्रावण कम होना, पाचक द्रव्यों का स्रावण कम होना, हृदय गति तीव्र होना, श्वास नली का फैल जाना, लार का गाढ़ा व चिपचिपा हो जाना, रक्त वाहिकाओं का संकुचन हो जाना, पसीना बढ़ जाना आदि। यह हॉर्मोन किसी उद्दीपन से तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं और कुछ स्थितयों में जिसमें 'लड़ो या भागो प्रतिक्रिया' के लिये शरीर को तैयार करती है।

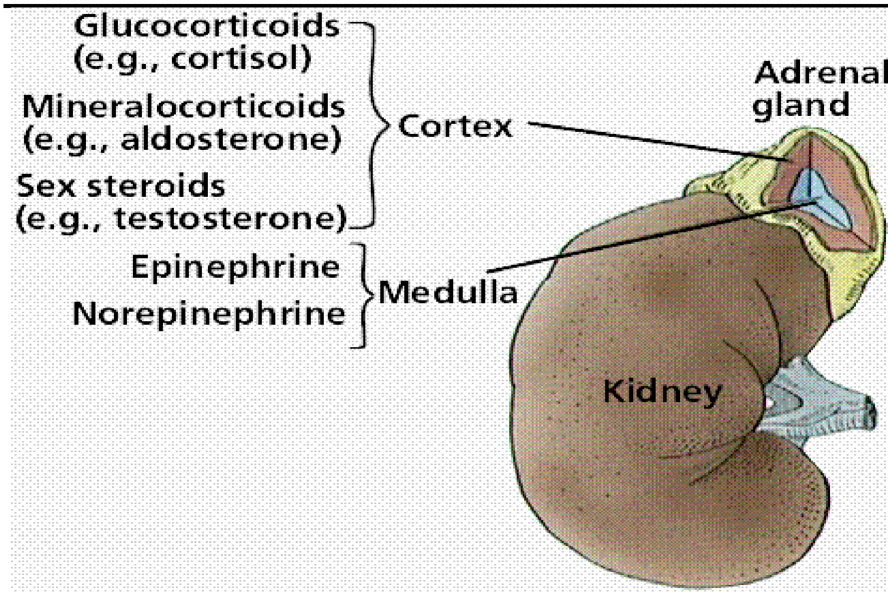

एड्रीनेलिन (adrenaline) **या इपीनेफ्रीन** (epinephrine) **के कार्य**

- हृदय की रक्त वाहिनियों (coronary vessels) को विस्फारित करना।
- हृदय की धड़कन की दर एवं शक्ति को बढ़ाना।
- हृदय से कॉर्डिएक आउटपुट (Cardiac output) बढ़ाना।
- कंकालीय पेशियों (skeletal muscles) की रक्तापूर्ति करने वाली धमनियों (arterials) को विस्फारित करना एवं उनमें होने वाली थकान की दर को कम करना।
- श्वास नलिकाओं को विस्फारित करना व श्वास दर (respiratory rate) को बढ़ाना।
- पाचन संस्थान की चिकनी पेशियों (smooth muscles) के संकुचन को रोक कर शिथिलता उत्पन्न करना।
- चयापचयी दर (metabolic rate) को बढ़ाना।
- यकृत (liner) एवं पेशियों (muscles) में स्थित ग्लाईकोजन (glycogen) को ग्लूकोज़ (glucose) में बदलकर रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ाना व पेशियों में लैक्टिक एसिड (lactic acid) के स्तर को बढ़ाना।

नॉरएड्रीनेलिन (noradrenaline) **या नॉरएपीनेफ्रीन** (norepinephrine) **के कार्य**

- परिसरीय वादिका संकुचन कर के रक्तचाप (blood pressure) बढ़ाना।
- लिपिड चयापचय को बढ़ाना।
- वसा ऊतक (adipose tissue) से उन्मुक्त वासीय अम्लों (free fatty acids) को स्वतंत्र करना है।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत

1. अधिवृक्क ग्रन्थि के बाहरी व आंतरिक क्षेत्र एक ही प्रकार के कार्य करते हैं।
2. एड्रीनल कॉटेक्स एड्रीनल ग्रन्थि का लगभग 90 प्रतिशत भाग बनाती है।

3. एल्डोस्टेरॉन के अधिक स्रावित होने पर निम्न रक्त चाप हो जाता है।
4. ग्लूकोकॉर्टिकॉयड रक्त शर्करा की सांद्रता को नियंत्रित करने में सहायता करता हैं

रिक्त स्थानों की पूर्ति –

1. अधिवृक्क ग्रन्थि के बाहरी क्षेत्र को ....आंतरिक क्षेत्र को .... कहा जाता है।
2. मिनरेलोकॉर्टिकॉयड के अन्तर्गत.....................व......................... हॉर्मोन समाहित होते हैं।

14.5 सारांश–

प्रस्तुत इकाई में अपने शरीर क्रिया विचार के प्रमुख संस्थान–अन्तःस्रावी संस्थान के प्रमुख ग्रन्थि पीयूष ग्रन्थि के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। आपने जाना कि पीयूष ग्रन्थि के अग्र खण्ड से 7 विशिष्ट हॉर्मोनों का स्रावन होता है जो कि शरीर और मन दोनों को प्रभावित करते हैं। पश्च खण्ड से प्रजनन संस्थान को प्रभावित करने वाले हॉर्मोन एंव साम्यावस्था बनाने वाला विशिष्ट हॉर्मोन वैसोप्रेसीन का स्रावण होता है। एड्रीनल ग्रन्थि के दोनों खण्डों से महत्वपूर्ण हॉर्मोनों का स्रवण होता है।

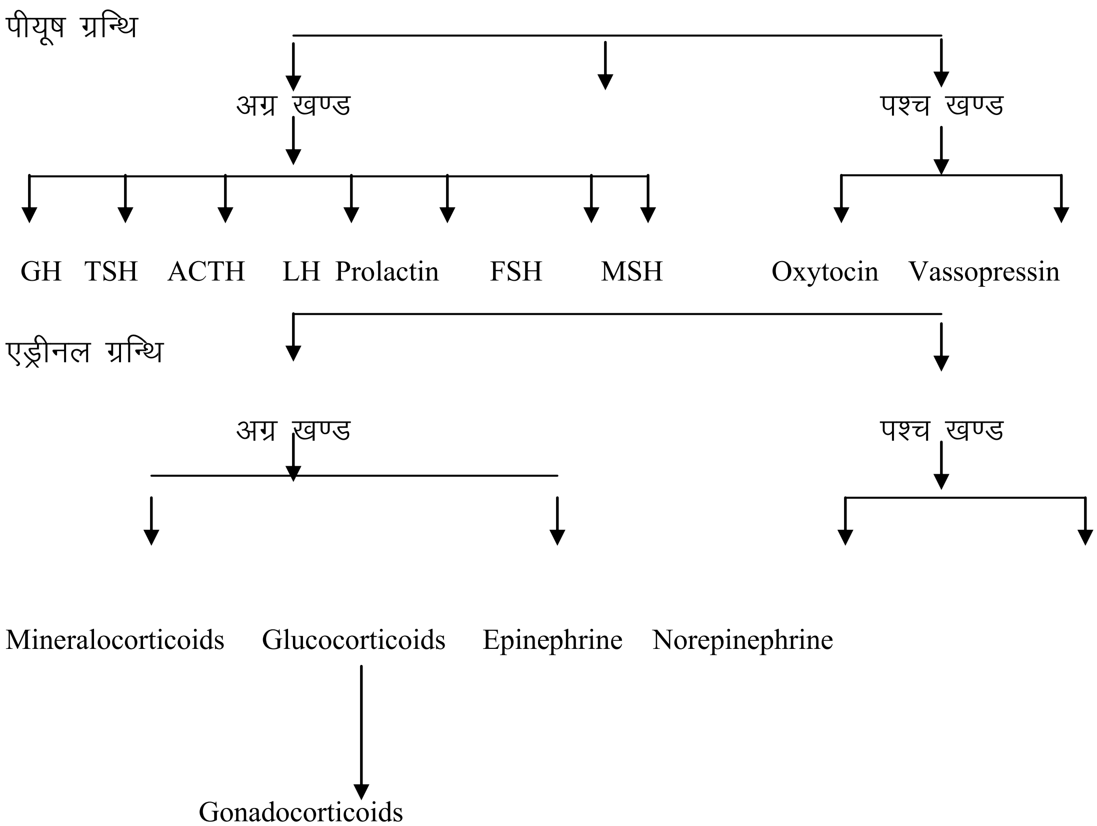

14.6 शब्दावली–

हाइपोफाइसिस– पीयूष ग्रन्थि का एक नाम
सिन्थेटिन तंत्रिका तंत्र – तंत्रिका तंत्र का एक महत्वपूर्ण विभाग है।

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

सही / गलत

1. सही
2. गलत
3. गलत
4. सही

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1. एडिनोहाइपोफाइसिस, न्यूरोहाइपोफाइसिस
2. मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन
3. कुशिंग
4. ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन

सही / गलत

1. सही
2. गलत
3. सही

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1. एड्रीनल कॉर्टेक्स, एड्रीनल मैड्यूला
2. एल्डोस्टेरॉन, डिहाइड्रोस्टेरॉन
3. कॉर्टिसोल, कॉर्टिकोस्टेरॉन
4. एपीनेफ्रीन / एड्रीनलीन, नाूरएपीनेफ्रीन / नॉरएड्रीनलीन

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. मानवी शरीर रचना व क्रिया विभाग, प्रो. अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)
2. Principles of Anatomy & Physiology, Geroard J. Tortora and Bryan H. Derrickson (2008), John Wiley & Sons (India)

14.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. पीयूष ग्रन्थि के अग्रखण्ड से निकलने वाले हॉर्मोन के नाम एवं उनके कार्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
2. पीयूष ग्रन्थि के पश्च खण्ड से निकलने वाले हॉर्मोन का नाम व कार्य बताऐं।
3. एड्रीनल कॉट्रेक्स से निकलने वाले हार्मोनों का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
3. एड्रीनल मेड्यूला के हॉर्मोनों को समाझाइये।

इकाई 15 थायरॉइड ग्रन्थि पैराथायरॉइड ग्रन्थि एवं यौन ग्रन्थियों की संरचना एवं कार्य

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 थायरॉइड ग्रन्थि
15.3.1 थायरॉइड ग्रन्थि की संरचना
15.3.2 थायरॉइड ग्रन्थि के कार्य
15.4 पैराथायरॉइड ग्रन्थि
15.4.1 पैराथायरॉइड ग्रन्थि की संरचना
15.4.2 पैराथायरॉइड ग्रन्थि के कार्य
15.5 यौन ग्रन्थियां
15.5.1 वृषण की संरचना एवं कार्य
15.5.2 अधिवृषण की संरचना एवं कार्य
15.5.3 डिम्बा ग्रन्थियों के संरचना एवं कार्य
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

थाइराइड, पैराथॉइराइड, एवं यौन ग्रन्थियों से सम्बन्धित इस इकाई से पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि पीयूष ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि क्यों कहा जाता है? इसके अग्र तथा पश्च खण्ड से निकलने वाले हॉर्मोनों की जानकारी आपने प्राप्त की। आप बता सकते हैं कि एड्रिनल ग्रन्थि के कार्ट्रेक्स तथा मेड्यूला भाग से कौन–कौन से महत्वपूर्ण हॉर्मोनों का स्रावण होता है एवं उनका क्या–क्या कार्य होता है। पाठकों

थॉइराइड, पैराथॉइराइड एंव यौन ग्रन्थियां मानव शरीर तंत्र की महत्वपूर्ण ग्रन्थियां है। ये ग्रन्थियां मानव शरीर में साम्यावस्था बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। थॉइटाइड, पैराथॉइड तथा यौन ग्रन्थियों से कौन–कौन से हॉर्मोन निकलते हैं एवं उनकी संरचना व कार्य के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक विश्लेषण प्रस्तुत है।इस इकाई में अध्ययन के बाद आप उपरोक्त महत्वपूर्ण ग्रन्थियों के महत्व को समझते हुए उनसे निकलने वाले हॉर्मोनों के कार्य का सम्पन्न विश्लेषण कर सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

- थाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना के विषय में जानेंगे।
- थाइरॉइड ग्रन्थि के कार्यो को जानेंगे।

- पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना के विषय में जानेंगे।
- पैराथाइरॉइड ग्रन्थि के कार्यो के विषय में जानेंगे।
- वृषण ग्रन्थि की संरचना एवं कार्यो को जानेंगे।
- डिम्बा ग्रन्थियों की संरचना एवं कार्यो के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

15.3 थाइरॉइड ग्रन्थि (Thyroid Gland)

थाइरॉइड ग्रन्थि ग्रीवा में श्वास प्रणाल (Trachea) के सामने निचले सर्वाइकल और प्रथम थोरेसिक वर्टिब्रा के स्तर पर स्थित रहती है। यह दो खण्डों में विभक्त रहती है जो लेरिक्स (स्वर यंत्र) और ट्रेकिया (श्वास प्रणाल) के मध्य जोड़ के दोनों तरफ स्थित रहती है। एक सामान्य वयस्क में थाइरॉइड ग्रन्थि का वजन लगभग 25–40 ग्राम तक होता है। थाइरॉइड ग्रन्थि के दोनों लॉब (खण्ड) उतक के एक ब्रिज से जुड़े होते हैं, जिसे इस्थामस (Isthmus) कहते हैं।

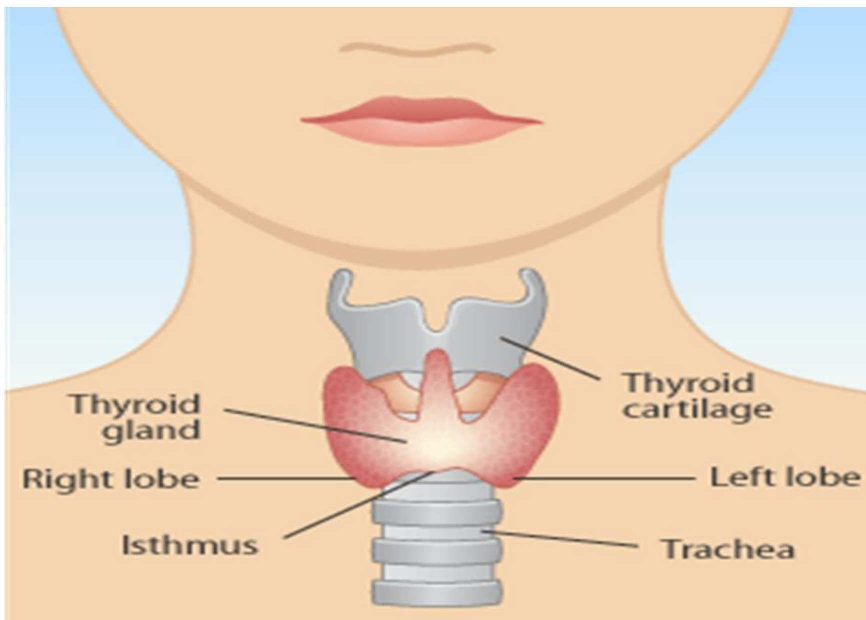

15.3.1 थाइरॉइड ग्रन्थि के संरचना – थाइरॉइड ग्रन्थि की कार्यात्मक इकाई बहुत सारे आपस में जुड़े हुए फॉलिकल (follicles) होते हैं। इन फॉलिकल में एक गाढ़ा चिपचिपा प्रोटीन पदार्थ भरा होता है जिसे कोलाइड कहते हैं। इस कोलाइड में थाइरॉइड हॉर्मोन संचित रहते हैं। थाइरॉइड ग्रन्थि दो तरह की कोशिकाओं फोलीक्यूलर और पैराफोलीक्यूलर कोशिकाओं से निर्मित होती है। फोलीक्यूलर कोशिकायें (follicular cells) चारों ओर फैली हुई रहती हैं। यह थाइरॉइड हॉर्मोन थाइरॉक्सिन और थाइरॉइडोट्राइआइडो थायरोडीन का निर्माण एवं स्रावण करती हैं, जो शरीर की अधिकांश कोशिकाओं में उपापच्य (Matabolism) को बढ़ाते हैं। पैराफालिक्यूलर कोशिकायें फोलिक्यूलर कोशिकाओं की अपेक्षा कम और आकार में बड़ी होती हैं। इन्हें 'C' cell भी कहते हैं। यह कोशिकायें फोलिकल्स के मध्य समूह में पाई जाती हैं तथा केलिस्टोनिन नामक हॉर्मोन का निर्माण एवं स्रावण करती हैं।

15.3.2 कार्य – थाइरॉइड निम्नलिखित तीन हॉर्मोन्स का स्रावण करता है –

1- T3
2- T3
3- TCT

T3 **हॉर्मोन अथवा ट्राईआयडो थाइरॉक्सीन** (Tri iodeothyroxine)

(i) विकास एवं वृद्धि को प्रभावित करता है।
(ii) सामान्य उपापच्य दर को नियन्त्रित करता है।
(iii) कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, उपापच्य को सम्पन्न करता है।
(iv) शारीरिक भार को नियन्त्रित करता है।
(v) मूत्र निर्माण में सहायक है।
(vi) कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के अन्तःग्रहण को बढ़ाता है।
(vii) हृदय गति एवं श्वसन दर को नियन्त्रित करता है।

T4 **हॉर्मोन अथवा थाइरॉक्सीन या टैट्राआयडोथाइरॉक्सीन** (Tetraiodothyroxine)

इसके कार्य T3 हॉर्मोन के समान ही हैं, परन्तु यह थाइरॉइड स्राव का लगभग 90 प्रतिशत होता है जबकि T3 अधिक सांद्र और अधिक सक्रिय होता है।

TCT **अथवा थायरोकैल्सिटोनिन** (Thyrocalcitonin)- यह रक्त में कैल्शियम की सान्द्रता को कम करता है एवं Bron mineral metabolism का नियन्त्रण करता है।

थाइरॉइड स्रावण की कमी एवं अधिकता का शरीर पर प्रभाव–

अधिकता से पड़ने वाला प्रभाव – थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा थाइरॉइड ग्रन्थि से अत्यधिक मात्रा में हॉर्मोन का स्रावण होने से हाइपर थाइरॉडिस्म (Hyperthyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड (Exophthalmic goitre) हो जाता है। इस रोग के लक्षणों में आँखें बाहर को उभर जाती हैं तथा रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। अधिक भूख के बावजूद वजन कम होने लगता है। अंगुलियों में कंपन और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

कमी से शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव – थाइरॉइड ग्रन्थि के अल्प सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से कम मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से 'हाइपो थाइरॉडिस्म' (Hypothyrodism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण गर्भ में शिशु के विकास अथवा शैशवावस्था के दौरान थाइरॉइड अल्प क्रिया से 'क्रेटिनिज्म' (जड़ मानवता) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में बुद्धि का ह्रास हो जाता है। बच्चों का विकास रुक जाता है। कंकालीय वृद्धि रुक जाती है, पेट बाहर को अधिक बढ़ जाता है। माँसपेशीय कमजोरी हो जाती है। आहार नाल की motility कम हो जाने के कारण कब्ज हो जाता है। दाँत देर से निकलते हैं, अस्थियों एवं पेशियों का विकास अतिक्रमित हो जाता है। वयस्कों में थाइरॉइड ग्रन्थि के के सक्रियता सक्रियतस से 'मिक्सीडीमा' (Myxedema) नामक रोग होने से त्वचा पीली, सूखी, रूक्ष हो जाती है। चेहरा फूला–फूला सा लगता है। वजन बढ़ जाता है। शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है जिससे ठण्ड सहन नहीं हो पाती। बाल शुष्क, खुर्दरे और पतले हो जाते हैं, सुस्ती, थकान होती है। महिलाओं में या तो मासिक स्राव नहीं होता अथवा बहुत अधिक होता है। याद्दाश्त में कमजोरी एवं मानसिक क्षमता का ह्रास होने लगता है।

अभ्यास प्रश्न–सही / गलत

1. थायरोकैसिटोनिन हॉर्मोन रक्त में कैल्शियम की सांद्रता को कम करता है।
2. हाइपरथॉमराइडिस्म की अवस्था में वयस्कों में मिक्सीडीमा नामक रोग उत्पन्न हो जाता है।
4. थायरॉइड ग्रन्थि की कार्यात्मक इकाई बहुत सारे आपस में जुड़े हुए फॉलिकल्स होते है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1. थॉराइड स्रावण की कमी से...............एवं अधिकता से..............नामक रोग से हो जाते हैं।
2. ट्राईआयडो थाइरॉक्सीन कोशिकाओं द्वारा ....के अन्तःग्रहण को बढ़ाता है।
4. थायरोकैल्सिटोनिनि हॉर्मोन................का नियंत्रणा करता है।

15.4 पैराथाइरॉइड ग्रन्थि (Parathyroid Gland)-

15.4.1 पैराथाइरॉड ग्रन्थि की संरचना– पैराथाइरॉइड ग्रन्थि मसूर के दाने के आकार की चार छोटी–छोटी ग्रन्थियों का समूह है, जिनमें से प्रायः दो–दो थाइरॉइड ग्रन्थि के प्रत्येक खण्ड की पोस्टीरियर (पिछली सतह) में स्थित रहती है। ये लगभग 3–4 मि0मी0 व्यास की होती है और पीले भूरे रंग की होती है। जिन कोशिकाओं से ये बनी होती है, वे spherical होती हैं और columns में व्यवस्थित होती हैं। इनका वजन 0.05 से 0.3 ग्राम तक होता है।

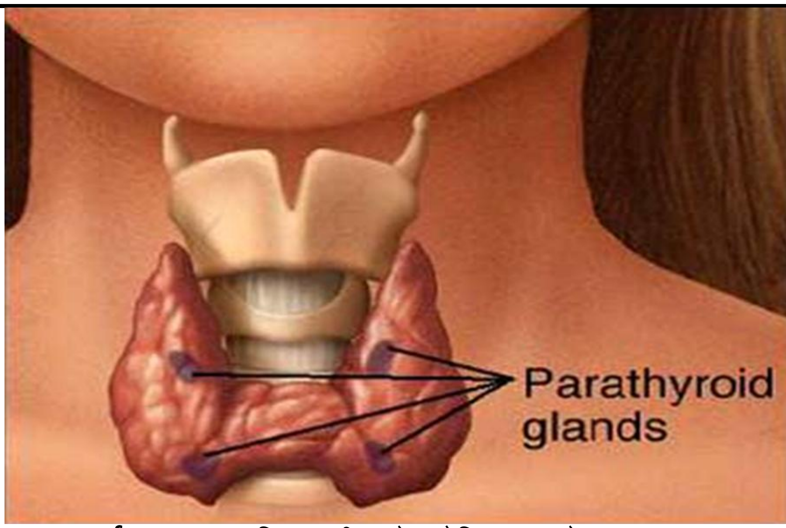

15.4.2 कार्य – यह ग्रन्थि शरीर में कैल्शियम के स्तर का संचलान करती है। इसका तात्पर्य यह है कि रक्त में कैल्शियम की अधिकता और कमी का नियन्त्रण इसी के द्वारा सम्पादित होता है। यह कार्य निम्न प्रकार से सम्पादित होता है –

रक्त में कैल्शियम के नियन्त्रण हेतु यह शरीर के तीन अंगों पर प्रभाव ड़ालता है –

1. अस्थि
2. वृक्क/किडनी
3. आन्त

- जब रक्त में कैल्शियम की कमी होती है तो पैराथाइरॉइड कैल्शियम को बढ़ाने का कार्य करता है।
- जब कैल्शियम अधिक होता है तो यह उसे कम करने का कार्य करता है।

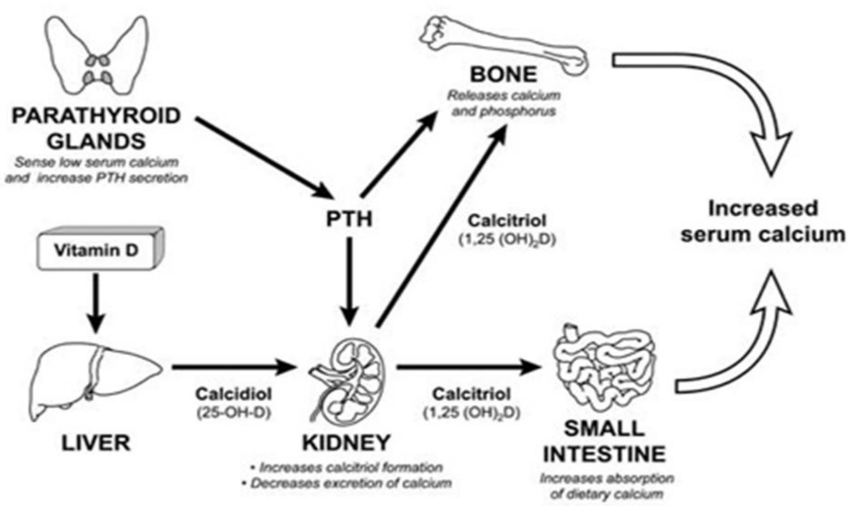

यह विभिन्न अंगों पर प्रभाव निम्न तरीके से करता है –

पैराथाइरॉइड हॉर्मोन अस्थि से कैल्शियम रक्त में खींचता है।

पैराथाइरॉइड हॉर्मोन किडनी पर तीन प्रकार से असर करता है –

(i) पेशाब में Ca बहने से रोकता है।

(ii) पेशाब में फॉसफोरस को बहने देता है।

(iii) एक प्रकार का विटामिन 'डी' बनाता है, जिसे Calcitrial कहते हैं।

कैल्सिट्रिओल कैल्शियम और फॉसफोरस को छोटी आँत के खण्डों से रक्त में खींच लेता है।

कैल्सिट्रिओल अस्थि से कैल्शियम (Ca) रक्त में खींच लेता है।

पैराथाइरॉइड ग्रन्थि से स्रावित होने वाला हॉर्मोन

इस ग्रन्थि से पैराथोर्मोन नामक हॉर्मोन स्रावित होता है, जिसका प्रमुख कार्य कैल्शियम और फॉस्फेट के मेटाबोलिज़्म को नियन्त्रित करना होता है। अस्थियों में जहाँ कैल्शियम और फॉस्फेट मिलकर अस्थि का निर्माण करते हैं, वहीं यह हॉर्मोन कैल्शियम और फॉस्फेट को अस्थि से रक्त में ले जाने का कार्य करता है।

किडनी में यह फॉस्फेट के निकलने को बढ़ाता है। साम्यावस्था बचाये रखने में यह हॉर्मोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जैसे

- यह शरीर के मेम्ब्रेन पारगम्यता को बनाये रखता है। (Membranus permeability)
- तंत्रिक, पेशीय एवं हृदीय कार्यों को सुचारू रूप से चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- हाइपर कैल्शिमिया को नियन्त्रित करता है।

ग्रन्थि की सक्रियता से प्रभाव–

अधिकता से शरीर पर प्रभाव – पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से अधिक मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से हाइपर पैरेथाइरॉडिस्म (Hyperparathyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में रक्त में फॉस्फोरस की मात्रा कम हो जाती है, परन्तु Ca की मात्रा अधिक हो जाती है। ऐसी स्थिति में अस्थियों से अधिक Ca का पुनः अवशोषण (reabsorption) हो जाता है और रक्त में Ca की मात्रा बढ़ जाती है। अस्थियों में Ca की कमी हो जाने से वह छिद्रमय और भुरभुरी हो जाती है। Ca की वृद्धि से पेशी और तंत्रिका उत्तेजनशीलता कम हो जाती है। .... पेशियों में स्फूर्ति कम हो जाती है। मूत्र में फॉस्फोरस और कैल्शियम निकलने लगता है तथा गुर्दों में पथरी (renal calculi or stones) बन जाती है।

कमी से शरीर पर प्रभाव – पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अल्प सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से कम मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से हाइपोपेराथाइरिडिस्म (Hypoparathyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण रक्त में Ca की मात्रा कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप टिटेनी (Tetany) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में पेशीय कड़ापन और

ऐंठन होती है, हृदय की गति बढ़ जाती है, श्वास की गति बढ़ जाती है और बुखार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इस स्थिति में रक्त में Ca आयन स्तर 10mg/100ml से घटकर 7mg/100ml हो जाता है। यदि यह स्तर और अधिक घट जाये, तो गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जैसे–जैसे रक्त में Ca की मात्रा घटती जाती है, पेशाब में भी कमी होती जाती है। यह स्थिति बच्चों में अधिक पाई जाती है।

अभ्यास प्रश्न–

सही / गलत

1. पैराथॉयराइड ग्रन्थि शरीर मे कैल्शियम के स्तर का संचालन करती है।
2. पैराथॉयराइड ग्रन्थि मसूर के दाने के आकार की छः छोटी–छोटी ग्रन्थियों का समूह है।
3. हाइपरपैराथॉयराइडिस्म नामक स्थिाति में रक्त में कैल्शियम की मात्रा कम हो जाती है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1. हारपोपैराथॉराइडिस्म की स्थिति में ....नामक रोग हो जाता है।
2. किडनी में पैराथोर्मोन.........................के निकलने को बढ़ाता है।
3. पैराथॉइराइड हॉर्मोन एक प्रकार का विटामिन डी बनाता है जिसे .... कहते हैं।

15.5 यौन ग्रन्थियाँ –

जनन ग्रन्थियों का सम्बन्ध जनन (reproduction) से होता है। इन ग्रन्थियों के अन्तर्गत पुरुष एवं स्त्री के जननांगों का समावेश होता है। पुरुष में वृषण ग्रन्थियाँ (Testes) और स्त्री में डिम्बा ग्रन्थियाँ (ovaries) जनन ग्रन्थियाँ या लिंग ग्रन्थियाँ (sex glands) कहलाती हैं। ये हॉर्मोन का स्राव करती हैं जो प्रजनन कार्यों (reproductive functions) के नियमन में सहायता करते हैं। वृषभ एवं डिम्ब ग्रन्थियों का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है –

15.5.1 वृषण (Testes) की संरचना एवं कार्य– वृषण पुरुष की प्रजनन ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रन्थि शुक्राणु का उत्पादन करती है जो कि जनन के दौरान मुख्य भूमिका निभाता है। भ्रूणीय विकास के दौरान वृषण उदर श्रेणि गुहा के भीतर वृक्कों (kidney) के ठीक नीचे निर्मित होते हैं। तीन माह का भ्रूण होने पर प्रत्येक वृषण अपनी वास्तविक जगह से नीचे उतरकर इन्वाइनल केनाल (inguinal canal) में आ जाता है। सातवें माह के पश्चात ये inguinal canal से गुजरकर वृषणकोष या अण्डकोश में आ जाता है। वृषणकोष शिशनमूल के नीचे एवं जांघों के बीच में लटकने वाली त्वचा की एक थैली होते हैं। टेस्टीज वृषणकोष में जन्म के पश्चात या थोड़ी ही पहले पूर्णतया उतरते हैं। Inguinal canal वृषण के गुजरने के पश्चात प्रायः बन्द हो जाती है। यदि केनाल बन्द नहीं हो पाती, तो inguinal हॉर्निया हो जाता है। यदि टेस्टीज ठीक से नहीं उतरते हैं या उदरगुहा में ही रह जाते हैं, तो प्रायः प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ही ऑपरेशन द्वारा उन्हें अपने स्थान पर लाया जाता है। यदि यह दशा ठीक नहीं की जाती तो टेस्टीज द्वारा टेस्टोस्टीरॉन नामक हॉर्मोन उत्पन्न तो होता है,

परन्तु शुक्राणु उत्पन्न नहीं होते, जिसके परिणामस्वरूप बांझपन या बन्ध्यता (sterility) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त इस अवस्था के परिणामस्वरूप टेस्टीकुलर केंसर होने की सम्भावना बढ़ जाती है। बांया वृषण दायें के तुलना में कुछ नीचे होता है जिससे सामान्य क्रियाओं में ये आपस में नहीं टकराते हैं। वृषण शरीर के बाहर वृषणकोष में रहते हैं।

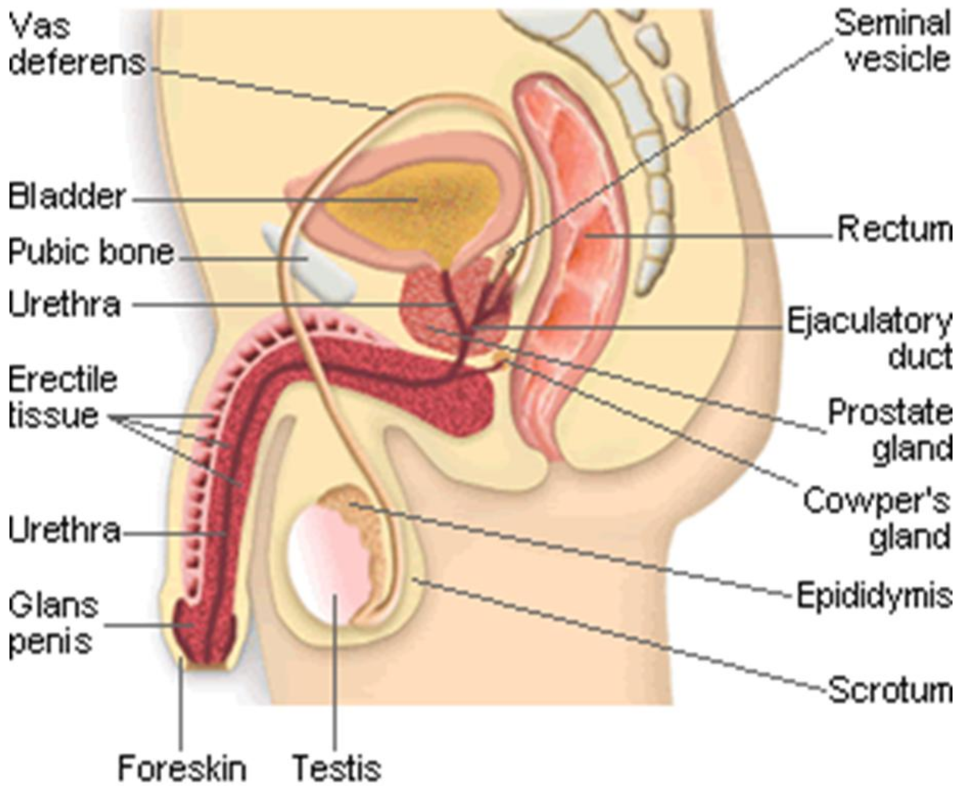

अतः इनका तापमान शरीर के ताप से लगभग 3^0F कम होता है। यह कम तापमान शुक्राणुओं की उत्पत्ति तथा उनके जीवित रहने के लिये आवश्यक होता है।

संरचना–वृषण शरीर के बाहर वृषणकोष में स्थित रहते हैं। वृषणकोष का आन्तरिक भाग एक तन्तुमय मीडियन सेप्टम द्वारा दो भागों में विभाजित होता है। प्रत्येक भाग या कक्ष में एक वृषण रहता है। मीडियन सेप्टम की दीवार वृषणकोष पर बाहर की ओर त्वचा के उभार (रेखा), पेरीनियल रेफी (perineal raphe) के रूप में दिखाई देती है, जो आगे चलकर शिशन के नीचे स्थित मध्य रेखा तथा पीछे perineum से गुदा तक स्थित मध्य रेखा में विलीन हो जाता है।

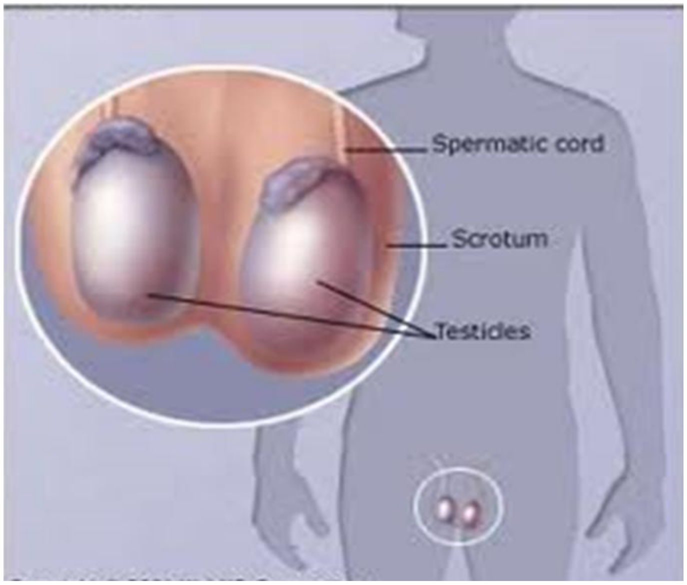

वयस्कों में प्रत्येक वृषण अण्डाकार आकृति का होता है तथा लगभग 4.5 सेमी0 लम्बा तथा 2.5 सेमी0 चौड़ा होता है। ये वृषणकोष में दोनों ओर वृषणरन्जुओं द्वारा लटके रहते हैं। प्रत्येक वृषण एक तन्तुमय थैली (fibrous sac) जिसे ट्यूनिका एल्ब्यूजीनिया (Tunica albuginea) कहते हैं, में बन्द रहता है। Tunica albuginea में वृषण में भीतर की ओर को कई पट (septae) निकलर इसे कई कक्षों में जो कि lobules कहलाते हैं, में विभाजित करता है।

15.5.2 अधिवृषण या एपिडिडायमस (Epididymis) की संरचना एवं कार्य– शुक्रजनन नलिकायें वृषण के मध्य पश्च भाग में आकर मिलती हैं। यह क्षेत्र 'मीडिएस्टीनम टेस्टीज़' कहलाता है। शुक्रजनन नलिकायें सीधी होगी सीधी नलिकायें (tubuli recti) बन जाती हैं जो सूक्ष्म नलिकाओं के जाल, जिसे रेती टेस्टीज़ कहा जाता है, में खुलती हैं। इसके ऊपरी सिरे पर 15–20 अपवाही नलिकायें (efferent ducts) खुलती हैं।

अधिवृषण के कार्य

1. यह शुक्राणुओं के परिपक्त होने तक एवं स्खलित होने तक इनको संचित रखता है।
2. वृषण से स्खलनीय वाहिकाओं तक शुक्राणुओं को पहुँचाता है।
3. शुक्राणुओं को आगे शिश्न की ओर धकेलता है। इसमें वृत्ताकार चिकनी .... कार्य करती है।

प्रत्येक अधिवृषण में सिर, काय और पुच्छ होती है। सिर वृषण के शीर्ष भाग पर स्थित रहता है। काय वृषण में पार्श्वीय एवं पुच्छ वृषण के तल तक फैला रहता है।

शुक्राणु (Sperm)-एक परिपक्व शुक्राणु सिर, ग्रीवामय में बंटा होता है। सिर में केन्द्रक होता है, जिसमें गुणसूत्र रहते हैं। ग्रीवा में कुण्डलित माइटोकॉण्ड्रिया रहते हैं, जो गतिशीलता के लिये ऊर्जा प्रदान करते हैं। पुच्छ की सहायता से शुक्राणु गति करते हैं। Tunica

celbuginea ट्यूनिका वैस्कुलोसा (tunica vasculosa) में आस्वरित होती है तथा ट्यूनिका वैजाइनेलिस (tunica vaginalis) से अच्छादित रहती है।

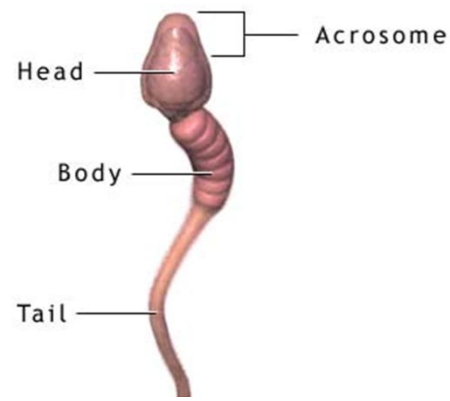

ट्यूनिक वैस्कुलौसा वाहिलामाय (vascular) परत होती है, जिसमें कोशिकाओं का जाल विद्यमान होता है तथा ट्यूनिका वैजाइनैलिस दो परतों वाली सीरमी कला होती है, जो उदर श्रोणि गुहा को आस्तरित करती है एवं विलीन हो जाती है।

प्रत्येक वृषण में 800 से अधिक कसी हुई कुण्डलित सूक्ष्म नलिकायें होती हैं, जिन्हें शुक्रजनक नलिकायें (seminiferous tubules) कहते हैं। ये नलिकायें एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति में प्रति सेकेण्ड में हजारों शुक्राणु उत्पन्न करती हैं। दोनो वृषणों में विद्यमान शुक्रजनक नलिकाओं की कुल लम्बाई लगभग 225 मीटर होती है। इनकी भित्तियाँ जर्मिनल (germinal) ऊतक द्वारा आस्तरित होती हैं, जिसमें दो तरह की कोशिकायें शुक्राणुजनक कोशिकायें (spermatogenic cells) एवं सहारा देने वाली सर्तोली (sertoli) कोशाऐं रहती हैं। शुक्राणुजनक कोशिकायें शुक्राणुओं में रूपान्तरित हो जाती हैं। शुक्राणु का विकास अथवा शुक्राणुजन का अध्ययन आप प्रजनन संस्थान में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे। सर्तोली कोशाऐं जर्मिनल शुक्राणुओं के परिपक्वन के लिये पोषण उपलब्ध कराती हैं। ये कोशिकायें नलिकाओं के भीतर एक प्रकार का तरल स्राव भी स्रावित करती है, जो विकासशील शुक्राणुओं के बाहर की ओर बहने के लिये एक तत्व माध्यम का कार्य करता है। ये कोशिकायें एण्ड्रोजन – बाइडिंग प्रोटीन का स्रावण करती हैं, जो टेस्टोस्टीरॉन एवं ईस्ट्रोजन दोनों को बांधती है तथा इन हॉर्मोन को शुक्रजनन नलिकाओं के भीतर के तरल में पहुँचाती हैं। यहाँ ये परिपक्व होते हैं।

शुक्राणु वृषण की शुक्रजनन नलिकाओं में उत्पन्न होने वाली पुरुष जनन कोशिकायें होती हैं। इनकी लम्बाई लगभग 0.05 मि.मी. होती हैं। प्रत्येक शुक्राणु 2 माह में पूर्णतया विकसित होता है। इनकी परिपक्वता अधिवृषण में होती है।

वृषण के हार्मोन व उनके कार्य– वृषण (testes) का अंतःस्रावी भाग कोशिकाओं के एक समूह से बना होता है, जिन्हें इन्टरस्टीशियल कोशिकायें (Interstitial cells) कहते हैं। यह कोशिकायें वृषण के सेमिनीफैरस ट्यूब्यूल्स (seminiferous tubules) के मध्य स्थित कनेक्टिव ऊतकों (connective tissues) में पाई जाती हैं। इन इंटरस्टीशियल कोशिकाओं से पुरुष

सेक्स हॉर्मोन टेस्टोस्टीरोन (testosterone) व एंड्रोस्टीरोन (Andosterone) स्रावित होते हैं जो कि सेकेण्ड्री सैक्सुअल कैरेक्टर्स (secondary sexual characters) के लिए उत्तरदायी होते हैं। इनका वर्णन निम्न है –

a. **टेस्टोस्टीरोन** (Testosterone)

- सेकेण्ड्री सेक्स अंग (secondary sex organs) जैसे एपीडीडाइमिस (epididymis), पोस्ट्रेट ग्रन्थि (Postrate gland), सेमिनल वैसिकल (seminal vesicle) के वृद्धि एवं विकास को नियंत्रित करता है।
- पुरुष की सेकेण्ड्री सेक्सुअल विशेषताओं (secondary sexual characters) जैसे दाढ़ी, मूँछ, आवाज में भारीपन, कंधों का चौड़ा, लम्बाई आदि के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।
- सहवास उद्दीपन के लिय उत्तरदायी होता है।
- शुक्राणुओं (sperms) की परिपक्वता के लिए उत्तरदायी होता है।

b. **एण्ड्रोस्टीरोन** (Androsterone)

- यह द्वितीयक सेक्स लक्षणों को उभारने में सहायक होता है, परन्तु यह टेस्टोस्टीवेज की तुलना में कम प्रभावी रहता है।

15.5.3 डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries) की संरचना एवं कार्य– स्त्रियों में दो डिम्ब ग्रन्थियाँ होती हैं, जो डिम्ब (ova) एवं स्त्री हॉर्मोन (hormone) उत्पन्न एवं स्रावित करती है। ये बादाम के आकार की हल्के भूरे रंग की ग्रन्थियाँ हैं, जो उदर के निचले भाग में गर्भाशय के दोनों ओर डिम्बवाहिनिकाओं के पीछे एवं नीचे स्थित रहती हैं। प्रत्येक डिम्ब ग्रन्थि डिम्बग्रन्थियोजनी या मीजोवैरियम (Mesovarium) द्वारा ब्रॉड लिगामेण्ट की ऊपरी सतह से संलग्न रहती है। मीजोवेरियम के बॉर्डर में मोटापन डिम्बाशयी लिगामेण्ट (ovarian ligament) कहलाता है, जो डिम्बग्रन्थि से गर्भाशय तक फैला रहता है। मीजोवेरियम में शिराऐं, धमनियाँ, लसीका वाहिकाऐं एवं तंत्रिकायें विद्यमान होती हैं, जो डिम्बा ग्रन्थि के छिद्र (Hylum) से होकर आती एवं जाती हैं। डिम्ब ग्रन्थियाँ सस्पेन्सरि लिगामेण्ट द्वारा श्रोणि की पार्श्वीय भित्तियों से लटकी होती हैं।

संरचना–डिम्ब ग्रन्थियाँ विशिष्ट उपकला कोशाओं की एक परत से आच्छादित रहती हैं, जिसे बीज या जननित परत (germinal layer) कहा जाता है। इस परत के नीचे संयोगी ऊतक (connective tissue) का एक पिण्ड होता है जिसे स्ट्रोमा (stroma) कहते हैं।

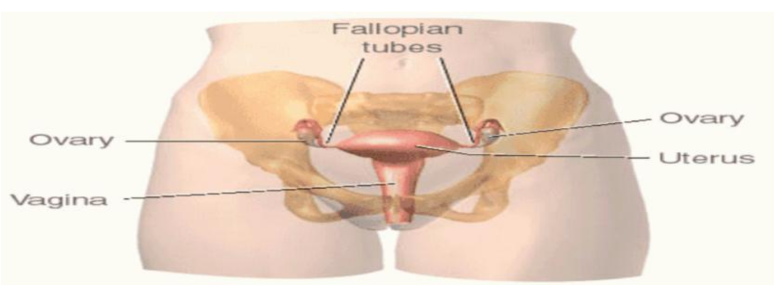

इसी स्ट्रोमा (stroma) में डिम्ब (ova) परिपक्व होता है। डिम्ब ग्रन्थि निम्न दो भागों में बंटी होती है –

1. कॉर्टेक्स भाग
2. वाहिकामय मेड्यूला भाग

कॉर्टेक्स में गोलाकार एपिथीलियमी उतक होते हैं, जिन्हें फॉलिकल्स (follicles) कहा जाता है। इनमें डिम्ब की उत्पत्ति एवं विकास (oogenesis) होता है। प्रत्येक फॉलिकल में एक अपरिपक्व डिम्ब होता है, जिसे प्राथमिक डिम्ब कोशिका (primary oocyte) कहा जाता है तथा ये फॉलिकल्स हमेशा विकास की कुछ एक अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं।

कॉर्टेक्स के बाहरी भाग अर्थात एपिथीलियल परत के नीचे संयोगी ऊतक की सफेद परत होती है, जिसे 'टयूनिका एल्ब्यूजीनिया' (tunica albuginea) कहा जाता है। जन्म के समय कन्या शिशु की प्रत्येक डिम्ब ग्रन्थि में हजारों की संख्या में प्रीमोर्डीयल फॉलीकल्स होते हैं। 12 से 16 वर्ष की आयु में इनकी maturity शुरू हो जाती है। किसी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन काल में लगभग 500 फॉलिकल्स ही परिपक्व हो पाते हैं। शेष विघटित हो जाते हैं। जब फॉलिकल्स परिपक्त होते हैं, तो इसकी भित्ति का निर्माण करने वाली कोशिकाओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने से फॉलिकल का परिवर्धन हो जाता है और उसके भीतर बनने वाले द्रव से गुहा भर जाती है। इस द्रव को 'पुटक द्रव' (liquor follicali) कहते हैं। प्रतिमाह ऋतुस्राव (menses) समाप्त होने के अगले दिन से एक डिम्ब ग्रन्थि में एक .... पुटल का विकास होना आरम्भ हो जाता है। पूर्ण विकसित या परिपक्त फॉलिकल को वेसिक्यूलर ओवेरियन फोलिक्यूल (Vesicular ovarian follicle) या ग्राफियन फॉलिकल (Graafian follicle) कहते हैं। ग्राफियन फॉलिकल में पुतल द्रव की मात्रा बढ़ती जाती है, जिससे इसका आकार भी बड़ता जाता है और वह डिम्ब ग्रन्थि की सतह पर .... के रूप में उभर आता है। लगभग 14 वें दिन इसमें तनाव बढ़ने से यह फट जाता है। फटने से आन्तरिक भाग में स्थित डिम्ब डिम्ब ग्रन्थि से बाहर निकल कर पर्युदर्या गुहा (peritoneal cavity) में आ जाता है। इस प्रक्रिया को डिम्बोत्सर्जन (ovulation) कहते हैं।

यह डिम्ब डिम्बवाहिनी के कीपाकार द्वार (infundibulum) से होता हुआ डिम्बवाहिनी में प्रवेश कर जाता है। डिम्बोत्सर्जन के उपरान्त फॉलिकल को आस्तरित करने वाली कोशिकायें अन्दर की ओर वृद्धि कर के कार्पस ल्यूटियम (corpus luteum) या पीत पिण्ड (yellow body) में परिवर्तित हो जाती है। यदि कॉर्पस ल्यूटियम के निर्मित होने के बाद 14 दिनों के अन्दर निषेचन नहीं होता है, तो ये विघटित (नष्ट) हो जाती है। और इसके स्थान पर तन्तुमय ऊतक का एक पिण्ड बन जाता है, जिसे कॉर्पस एल्बिकन्स (corpus albicans) कहा जाता है। इसके तुरन्त बाद प्रायः ऋतुस्राव (menstruation) होता है। यदि निशेषण होता है तो corpus lutium गर्भावस्था के प्रथम 2 से 3 माह तक सक्रिय रहती है। इसके पश्चात यह विघटित होकर प्लेसेन्टा का रूप ले लेती है।

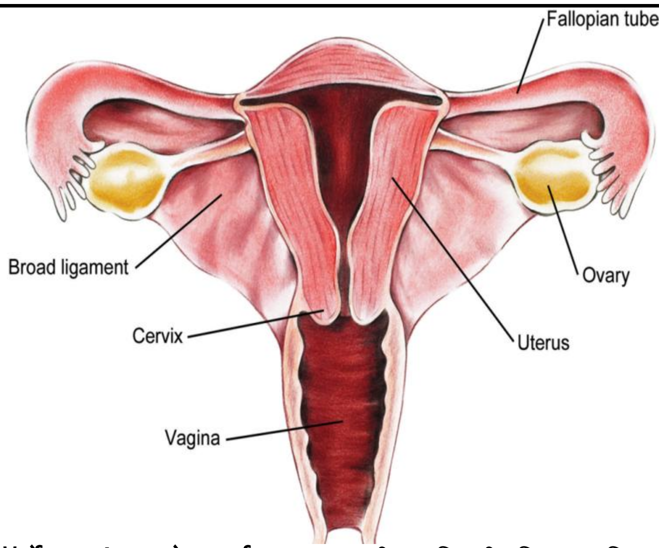

डिम्ब ग्रन्थि के हॉर्मोन एवं उनके कार्य– वृषण की भांति ही डिम्ब ग्रन्थि के अन्तःस्रावी भाग से तीन हॉर्मोनों का स्राव होता है, जिनका वर्णन निम्नवत् है –

a. **ईस्ट्रोजन** (Estrogen) – ये स्टेरॉयड हॉर्मोन का समूह होता है। यह डिम्बोत्सर्जन से पहले विकासात्मक फॉलिकल के थीकाइन्टर्ना (Theca interna) द्वारा स्रावित होता है और डिम्बोत्सर्जन के बाद Theca lutin cell द्वारा स्रावित होता है। यह गर्भवती महिलाओं में placenta के द्वारा भी स्रावित होता है।

- यह स्त्री जनन अंग जैसे फेलोपीन ट्यूब, यूट्रस, वेजाइना की वृद्धि और सामान्य कार्यक्षमता के लिये उत्तरदायी है।
- स्त्री द्वितीयक लक्षणों (Female secondary sexual characters) जैसे स्तनों का विकास, पेल्विक क्षेत्र का विकास, प्यूबिक बालों की वृद्धि, मासिक धर्म की शुरूआत आदि को नियन्त्रित करता है।
- सहवास उद्दीपन के लिये उत्तरदायी है।

b. **प्रोजेस्ट्रॉन** (Progestrone) – यह कॉर्पस ल्यूटियम द्वारा स्रावित होने वाला हॉर्मोन है।

- यह गर्भावस्था के दौरान डिम्बोत्सर्जन की क्रिया पर अंकुश रखता है ताकि गर्भधारण की प्रक्रिया में कोई बाधा उत्पन्न न हो।
- Uterine wall में foetus को अवस्थित करता है।
- Placenta formation को सहयोग करके आगे बढ़ाता है।
- गर्भ में विमजने के विकास के लिये उत्तरदायी होता है।
- गर्भावस्था के दौरान दुग्ध ग्रन्थियों के विकास के लिये उत्तरदायी है।
- गर्भाशय (uterus) के संकुचन को अवरूद्ध करता है ताकि गर्भस्थ शिशु पूरे विकास को प्राप्त करे अर्थात पूरी तरह निर्भाध रूप से विकसित हो सके।

c. **रिलैक्सिन हॉर्मोन** (Relaxin Hormone) – यह हॉर्मोन गर्भाधान के अन्त में कॉर्पस ल्यूटियम द्वारा स्रावित होता है। इसका कार्य पेल्विक लिगामेंट को शिथिलता प्रदान करना है ताकि प्रसव ठीक से हो सके।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत

1. पुरूषों में डिम्ब ग्रन्थियां तथा स्त्रियों में वृषण ग्रन्थियां जनन ग्रन्थियां या लिंग ग्रन्थियां कहलाती है।
2. अधिवृषण शुक्राणुओं के परिपक्व होने तक एवं स्खलित होने तक इनको संचित रखता है।
3. डिम्ब ग्रन्थियों से टेस्टोस्टीरॉन नामक हॉर्मोन स्रावित होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

1.वृषण का अंतःस्रावी भाग कोशिकाओं के एक समूह से बना होता है जिन्हें..............कोशिकायें कहते है।

2...........हॉर्मोन गर्भावस्था के दौरान दुग्ध ग्रन्थियों के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।

3................हॉर्मोन का कार्य पेल्बिक लिगामेंट को शिथिलता प्रदान करना है ताकि प्रसव ठीक से हो सके।

15.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने शरीर क्रिया विज्ञान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में महत्वपूर्ण ग्रन्थि थाइरॉइड, पैराथाइरॉइड एवं यौन ग्रन्थ्यिों के विषय में पढ़ा, आपने पढ़ा कि थाइरॉइड ग्रन्थि एवं पैराथाइरॉइड ग्रन्थि उपपच्य को प्रमुखता से प्रभावित करते हैं। यौन ग्रन्थियां पुरूष सैक्स हॉर्मोन एवं स्त्री सैक्स हॉर्मोनों का स्रावण करके शरीर में महत्वपूर्ण स्थितियों के लिये तैयारी, क्रिया एवं शिथिलता प्रदान करते हैं।

15.7 शब्दावली

श्वास प्रणाल – श्वास प्रणाल या श्वास नली स्वश्यंत्र के नीचे से प्रारम्भ होकर फेफड़ों के शीर्ष तक पहुंचने वाली नहली होती है।

स्वर यंत्र – उपस्थित की बनी संरचना जो स्वर को उत्पत्ति करती है।

स्टोरॉइड – यह एक प्रकार के रासायनिक कम्पाउण्ड है जो कि विशिष्ट शारीरिक अन्तःक्रियाओं के लिऐ उत्तरदायी होते हैं जैसे सैक्स हॉर्मोन

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सही / गलत

1. सही
2. गलत
3 सही

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. क्रेटिनिज्म, नेत्रोत्सेधी गलगण्ड

2. ग्लूकोज
3. बॉन मिनरल मैटाबॉलिस्म

सही / गलत
1. सही
2. गलत
3 गलत

रिक्त स्थानों की पूर्ति
1. टिटैनी
2. फॉस्फेट
3. कैल्सिट्रियल

सही / गलत
1. गलत
2. सही
3. गलत

रिक्त स्थानों की पूर्ति
1. इन्टरस्टीशियल
2. प्रोजेस्टॉन
3. रिलैक्सिन

15.9. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रा0 अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)
2. Principles of Anatomy & Phisiology, Geroard J. Tortora and Bryan H. Derrickson (2008), John Wiley & Sons (India)

15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. थायरॉइड ग्रन्थि की संरचना एवं अधिवता व कमी से पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करें।
2. पैराथायरॉइड ग्रन्थि की संरचना एवं कार्यो का वर्णन करें।
3. वृषण एवं अधिवृषण की संरचना व कार्यो का वर्णन करें।
4. डिम्ब ग्रन्थि की संरचना एवं उससे निकलने वाले हॉर्मोनों का विस्तारपूर्णक वर्णन करें।

इकाई–16 प्रतिरक्षा तंत्र के विभिन्न अंगों की संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 प्रतिरक्षा तंत्र के अंग –

16.3.1 प्रतिरक्षण तंत्र

16.3.2 लसीका की संरचना एवं कार्य

16.3.3 प्लीहा की संरचना एवं कार्य

16.3.4 थाइमस ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य

16.3.5 यकृत ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य

16.3.6 अस्थि मज्जा की संरचना एवं कार्य

16.4 सारांश

16.5 शब्दावली

16.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.8 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

आपने इस इकाई से पूर्व शरीर के महत्वपूर्ण तंत्र अन्तःस्रावी तंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त की एवं तंत्र के क्रियाकलापों को समझा। अन्तःस्रावी तंत्र शरीर के सभी तंत्रों से जुड़ा हुआ है एवं इसके हॉर्मोनों के स्राव शरीर की साम्यावस्था बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस इकाई में आप प्रतिरक्षा संस्थान के विभिन्न अंगों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। हमारा शरीर एक बहुत ही सुनियोजित तरीके से कार्य करता है। जब कि कोई बाहरी तत्व हमारे शरीर में प्रवेश करता है तो हमारे शरीर में स्थित विशेष कोशिकायें उन तत्वों को पहचान लेती हैं कि वह मित्र तत्व है अथवा शत्रु तत्व है। शत्रु कोशिकाओं से निपटने वाली कोशिकायें मिलकर उत्तक एवं उत्तक मिलकर अंग का निर्माण करते हैं। किसी रोग के प्रति सुरक्षा हेतु जो अंग कार्य करते हैं, उन अंगों से मिलकर सुरक्षात्मक संस्थान या प्रतिरक्षा

संस्थान बनता है। आगे आप प्रतिरक्षा संस्थान क्या है एवं इसके विभिन्न अंगों के विषय में जानेंगे।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप –

- प्रतिरक्षा तंत्र का आशय जानेंगे।
- लसीका की संरचना एवं कार्य के विषय में जानेंगे।
- प्लीहा की संरचना एंव कार्य के विषय में जानेंगें।
- थाइमस ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य के विषय में जानेंगे।
- यकृत ग्रन्थि के प्रतिरक्षा विषयक कार्यों के सम्बन्ध में जानेंगे।
- अस्थि मज्जा के कार्यों के विषय में जानेंगे।

16.3 प्रतिरक्षा तंत्र के अंग

16.3.1 प्रतिरक्षा तंत्र– किसी रोग, विशेष तोर पर संक्रामक रोग के प्रति प्रतिरोधक शक्ति के होने अथवा संक्रामक रोग से बचने की क्षमता को प्रतिरक्षा कहते हैं। यह प्रतिरक्षा या इम्यूनिटी (Immunity) शरीर की एक विशिष्ट क्षमता है जिसके कारण ही हम जीवित रह पाते हैं। इस क्षमता के न होने पर हमारा इस वातावरण में रह पाना अत्यन्त कठिन है। सम्पूर्ण वातावरण में कई प्रकार के शत्रु एवं मित्र विषाणु घूमते रहते हैं, परन्तु कई लोगों को वे विषाणु कष्ट पहुँचाते हैं एवं कई लोगों को नहीं पहुँचाते। इसका मुख्य कारण व्यक्ति की रोग क्षमता ही है। यदि रोग क्षमता या रोग प्रतिरोधक क्षमता अथवा प्रतिरक्षण मजबूत होती है तो वातावरण में व्याप्त रोग के जीवाणु या विषाणु हमें रोगी नहीं बना पाते हैं।

चिकित्सा शास्त्र की वह शाखा जिसमें रोगों के प्रति रोग क्षमता या इम्यूनिटी का अध्ययन किया जाता है, रोग क्षमता विज्ञान या इम्यूनोलॉजी (Immunology) कहलाती है। प्रतिरक्षा तंत्र के अन्तर्गत वे सभी अंग आते हैं, जो किसी न किसी रूप में शरीर की प्रतिरक्षा में सहायक होते हैं, वे अंग निम्नलिखित हैं –

- लसीका
- लसीका नोड
- प्लीहा
- थाइमस ग्रन्थि
- यकृत ग्रन्थि

आगे आप मुख्य रूप से लसीका, प्लीहा, थाइमस ग्रन्थि एवं यकृत की संरचना एवं कार्यों के विषय में अध्ययन करेंगें।

16.3.2 लसीका (Lymph)- लसीका रक्त प्लाज़्मा के समान स्वच्छ, पानी जैसा द्रव होता है, जिसका संगठन अन्तरालीय द्रव (interrestitial fluid) के जैसा होता है, परन्तु इसमें प्लाज़्मा की अपेक्षा प्लाज़्मा प्रोटीन्स की मात्रा कम रहती है। ऊतकों में चयापचय के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले कुछ व्यर्थ पदार्थ – कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया आदि भी इसमें मिले रहते हैं। इसमें कोशिकाओं की पतली, छिद्रमय भित्तियों में प्रवेश करने वाली श्वेत रक्त कोशिकायें जिन्हें ल्यूकोसाइट्स (Leucocytes) भी कहा जाता है, पाई जाती हैं। लसीका ग्रन्थियों में उत्पन्न लिम्फोसाइट्स भी बड़ी लसीका वाहिकाओं में पायी जाती हैं।

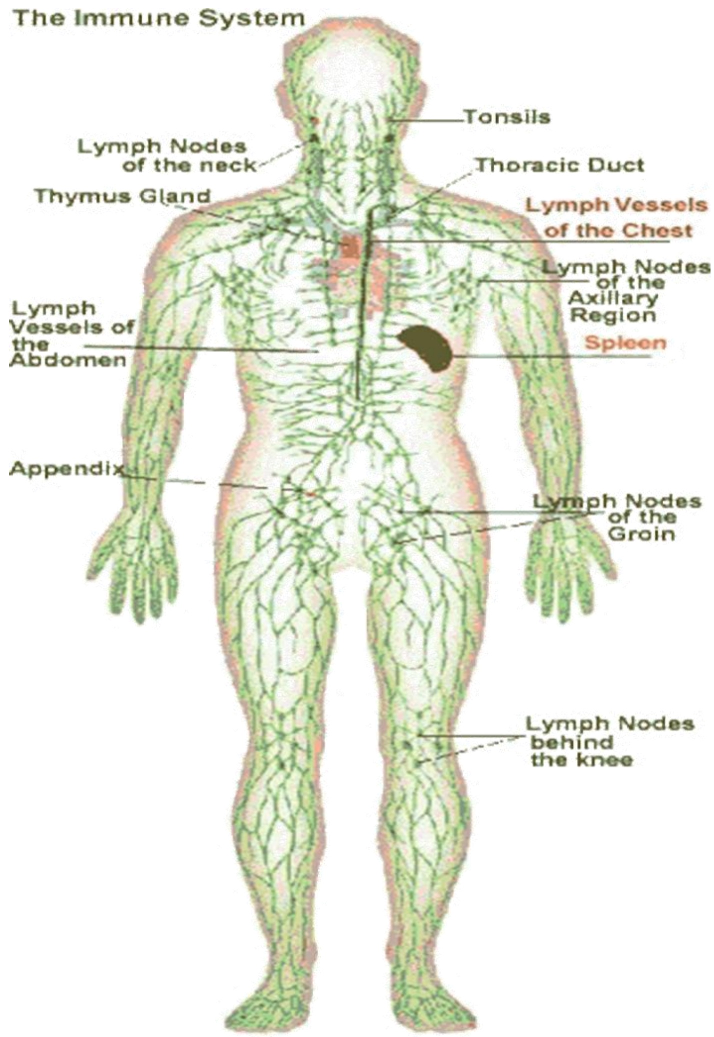

लसीका उत्पत्ति (Origin of Lymph)-अन्तरालीय द्रव (Interstitial fluid), जो कि निलयी संकुचन द्वारा उत्पन्न रक्त वाहिकाओं के भीतर रक्त के हाइड्रोस्टैटिक दाब के जल, प्रोटीन की कुछ मात्रा विशेषकर एल्ब्यूमिन एवं अन्य पदार्थ कोशिकाओं से रिसकर बाहर उत्तक कोशिकाओं के बीच के स्थान में आ जाते हैं, को कहा जाता है। यह द्रव पदार्थ जीवित ऊतकों को भिगोकर रखने का कार्य करता है तथा उनको पोषण भी प्रदान करता है। ऊतकों का पोषण करने के उपरान्त उत्पन्न व्यर्थ पदार्थों, जैसे CO_2 कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया आदि से युक्त अन्तरालीय द्रव का अधिक भाग रक्त कोशिकाओं की भित्तियों को पार करके उनके भीतर रिसकर पहुँच जाता है, किन्तु उसका कुछ भाग रक्त कोशिकाओं में न जाकर लसीकीय कोशिकाओं (lymphotic capillaries) में पहुँच जाता है, जो लसीका (lymph) कहलाता है और लसीकीय तन्त्र (lymphotic system) द्वारा रक्त में प्रवाहित हो जाता है।

लसीकीय कोशिकायें एवं अन्य वाहिकायें (Lumphetic Capillaries and other vessels)

लसीकीय कोशिकायें लाल रक्त कणिकाओं, श्वेत रक्त नली कणिकाओं एवं प्लेटलेट्स को अपनी धाराओं में बहाने वाली रक्त कोशिकाओं के लगभग समान संरचना वाली कोशिकायें होती हैं। रक्त कोशिकाओं के समान ये भी एण्डोथीलियमी कोशिकाओं की एक परत की बनी होती है। लसीय कोशिकाओं की परत रक्त कोशिकाओं की तुलना में अधिक पारगम्य होती हैं। इस पारगम्यता के कारण ही अन्तरालीय द्रव के घटकों का यह अवशोषण कर लेती है और श्वेत रक्त कोशिकायें भित्तियों से बाहर निकल जाती हैं। लसीकीय कोशिकायें ऊतकों की कोशिकाओं के बीच जाल के समान फैली रहती हैं। लसीकीय कोशिकाओं में जलीय पारदर्शी द्रव निरन्तर बहता रहता है। ये बन्द सिरे वाली छोटी–छोटी नलियों के रूप में प्रायः सभी अंगों के अन्तरालीय अवकाशों (interstitial space) से आरम्भ होती हैं। ये रक्त कोशिकाओं की अपेक्षा चौड़ी अधिक होती हैं। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous System) एवं कार्निया में इनका अभाव रहता है।

संरचना के सम्बन्ध में निम्न तथ्य सामने आये हैं –

1. ये रक्त कोशिकाओं से मिलती जुलती संरचना के होते हैं।
2. इनकी दीवारें अधिक पारगम्य होती हैं।
3. ये अधिक चौड़ी कोशिकायें होती हैं।
4. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र एवं कार्निया में नहीं पाई जाती हैं।

दुग्धवाहिकायें

छोटी आंत की आन्तरिक सतह पर स्थित अंकुरों (villi) में विशेष प्रकार की लसीकीय कोशिकायें पायी जाती हैं, जिन्हें ''दुग्ध वाहिकायें'' या लैक्टीयल्स (lacteals) कहा जाता है। ये कोशिकायें छोटी आंत से वसा को अवशोषित करती हें तथा उसके पश्चात रक्त में पहुँचा देती हैं। रक्त से यह सम्पूर्ण शरीर में वितरित हो जाती है। लैक्टीयल्स को 'काइल' (chyle) भी कहा जाता है और यह लसीका वसा की उपस्थिति के कारण दूध के समान श्वेत हो जाती है।

लिम्फेटिक्स

लसीकीय वाहिकायें या लिम्फेटिक्स कई लसीकीय कोशिकाओं के आपस में मिलकर बड़ी संचयी वाहिका के बनाने से बनती हैं। ये संचयी वाहिका जो कि लिम्फेटिक्स कहलाती हैं, शिराओं के समान ही होती हैं। इसकी भित्तियां शिराओं की अपेक्षा पतली होती हैं इनमें शिराओं की अपेक्षा अधिक संख्या में कपाट (valve) होते हैं जो लसीका द्रव्य कौ पीछे जाने से रोकते हैं। लसीकीय वाहिकायें प्रायः रक्त वाहिकाओं के समानान्तर रहने वाले संयोगी ऊतकमें पायी जाती है। शरीर के भीतर ये superficial और deep दो स्तरों में पाये जाते हैं। ये लिम्फ नोड्स में से होकर गुजरते हैं। त्वचा एवं अवत्वचीय ऊतकों में superficial लसीकीय वाहिकायें superficial शिराओं के साथ–साथ तथा deep वाहिकायें, deep शिराओं एवं धमनियों के साथ–साथ चलती हैं।

लसीकीय वाहिकायें या लिम्फेटिक्स एक दूसरे से जुड़कर दो बड़ी नलिकायें (ducts) दायीं लसीकीय नलिका एवं वक्षीय नलिका बनाती हैं, जो अपने–अपने लसीका को हृदय के ऊपर स्थित सबक्लेवियन शिराओं में उड़ेल देती हैं।

संक्षेप में –

1. लसीकीय वाहिकायें कई लसीकीय कोशिकाओं के संचयन से बनती हैं।

2. इनकी भित्तियाँ शिराओं की अपेक्षा पतली होती हैं।
3. कपाटों की संख्या अधिक होती हैं।
4. उपरिस्थ (superficial) और गहन (deep) दो प्रकार से अवस्थित होती हैं।
5. गहन वाहिकायें गहन शिराओं के साथ एवं उपरिस्थ वाहिकायें उपरिस्थ शिराओं के साथ–साथ बहती हैं।

लसीला परिसंचरण (Circulation of Lymph)

समस्त लसीका वाहिकायें अपने भीतर उपस्थित लसीका द्रव को आगे धकेलने के लिये शरीर की अन्य संस्थानों से उत्पन्न दबाव एवं गतियों का सहारा लेती हैं। लसीकीय वाहिकाओं की रचना रक्त शिराओं के समान होती हैं तथा इनकी भित्तियाँ बहुत पतली उपकला की बनी होती हैं। शिराओं की तरह उनमें थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बहुत से अर्द्धचन्द्राकार कपाट (valve) होते हैं। इन कपाटों का कार्य लसीकीय द्रव को पीछे न जाने देना होता है। ये कपाट इस तरह व्यवस्थित होते हैं कि लसीका पीछे नहीं जा पाती हैं। लसीकीय द्रव को आगे धकेलने के लिये रक्त परिसंचरण संस्थान की तरह कोई पम्प नहीं होता बल्कि बड़ी लसीकीय वाहिकाओं की भित्तियों में विद्यमान वृत्ताकार एवं लम्बवत् चिकनी पेशियों की गति से लसीका वाहिकाओं में आगे की ओर बढ़ती है।

लसीकीय वाहिकाओं का लसीका, उतकीय तरल का उत्पादन बढ़ने से, श्वसन तंत्र की पेशियों तथा शरीर की अन्य पेशियों की गति से उत्पन्न दबाव से आगे बढ़ता है, एवं शरीर के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में पहुँचता है। सभी लसीका वाहिकायें वक्षीय–गुहा (thorasic cavity) की ओर पहुँचती है। दायीं नलिका सिर, चेहरे और गर्दन के दाहिने भाग, दाहिनी भुजा, दाहिने वक्ष क्षेत्र और दाहिने फेफड़े, हृदय के दाहिने भाग तथा यकृत के ऊपरी भाग की लसीकीय वाहिकाओं (लिम्फेटिक्स) द्वारा संचित लसीका को दायीं सबक्लेविअन शिरा (right subclavian vein) में पहुँचाती हैं।

वक्षीय नलिका (thoracic duct) दायीं लसीकीय नलिका की अपेक्षा बड़ी और मोटी होती है, जो उदर के भीतर, डायाफ्राम के नीचे एक विस्फारित भाग के रूप में आरम्भ होती है, जिसे सिस्टर्ना काईली (Cisterna Chyli) कहते हैं। यहाँ से यह नलिका डायाफ्राम के महाधमनी – छिद्र से होकर ऊपर की ओर हृदय के पीछे स्थित मीडियास्टाइनम में होती हुई गर्दन के आधार में बायीं ओर पहुँचती हैं। यहाँ पर यह सिर और गर्दन से आने वाली बायें जगुलर शिरा के मुख्य भाग, बायीं ऊपरी भुजा से आने वाली बायीं सबक्लेवियन शिरा के मुख्य भाग तथा वक्ष एवं इससे सम्बन्धित भागों से आने वाली अन्य लसीकीय वाहिकाओं से जुड़ती है। अन्ततः वक्षीय नलिका बायीं सबक्लेवियन शिरा में खुलती है और लसीका को रक्त में पहुँचा देती है। इस प्रकार लसीकीय नलिकायें दायीं और बायीं सबक्लेवियन शिराओं में खुलकर निरन्तर रक्त प्रवाह में लसीका को मिलाती रहती हैं।

लसीका पर्व (Lymph Nodes)

लसीका पर्व ऊतकीय पिण्ड हैं जो लसीकीय वाहिकाओं के मार्ग में एक धागे में पिरोए हुये मनके के समान सेम के बीज की आकृति (1 से 25 मि0मी0 लम्बे) के होते हैं। लसीका पर्व (lymph nodes) मुख्यतः गर्दन, बगल, छाती, पेट और जाँघों के बीच में अधिक संख्या में तथा कोहनी एवं घुटनों के जोड़ के पीछे कम संख्या में पाये जाते हैं। उपरिस्थ पर्व (superficial nodes) त्वचा के समीप गर्दन, बगल (कारव) एवं उरूसन्धियों में अवस्थित

रहते हैं तथा गहन नोड्स उरुसन्धि क्षेत्र के भीतर गहराई में, लम्बर कशेरुका (lumbar vertibra) के समीप फेफड़ों के आधार पर, छोटी आँतों के आसपास के ऊतकों में एवं यकृत में अवस्थित रहते हैं। अधिकांश लसीका रक्त प्रवाह में वापस पहुँचने के लिये कम से कम एक लिम्फ नोड से होकर गुजरता है।

संरचना–लिम्फ पर्व चारों ओर से तन्तुमय संयोगी ऊतक के एक कैप्सूल से आच्छादित होती है। कैप्सूल से लिम्फ नोड के केन्द्र की ओर संयोगी ऊतक के प्रवर्ध जिन्हें तन्तुबन्ध (trabeculae) कहा जाता है, अन्दर की ओर निकले होते हैं, जिससे पर्व कई भागों में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक भाग का बाह्य भाग लिम्फ पर्व का कॉर्टेक्स (cortex) भाग कहलाता है, जिसमें लिम्फोसाइट्स घने गुच्छों में विद्यमान रहती हैं, जिन्हें लिम्फ नोड्यूल्स (lymph nodules) कहते हैं। प्रत्येक नोड्यूल के मध्यम में जर्मिनल केन्द्र (germinal center) होता है जहाँ कोशिका विभाजन से लिम्फोसाइट्स उत्पन्न होते हैं। लिम्फ नोड्स प्रतिदिन लगभग 10 बीलियन लिम्फोसाइट्स उत्पन्न करते हैं। लिम्फ पर्व का आन्तरिक भाग मेड्यूला (medulla) कहलाता है, जिसमें लिम्फोसाइट्स की रस्सीनुमा रचनायें, मेड्यूलरी कॉर्ड्स (medullary cords) नोड्यूल से निकली रहती है, जो एक–दूसरे से लिपटकर एक ढ़ीला, स्पंजी जाल बनाती है।

प्रत्येक लिम्फ पर्व में लसीका (लिम्फ) को आने वाली चार या पाँच अभिवाही लसीकीय वाहिकायें होती हैं जो कैप्सूल के उत्तल (convex) किनारे से होती हुई पर्व के अपेक्षाकृत कोशिका मुक्त क्षेत्र, कार्टिकल साइनस (cortical sinus) में प्रवेश करती हैं और अपने लिम्फ को त्याग देती हैं। साइनसेस से होकर लिम्फ धीरे–धीरे छनता (filter) है तथा अपवाही लसीका वाहिकायें (efferent lymph vessels) कैप्सूल की अवतल (concave) किनारी, जिसे हाइलम (Hilum) कहते हैं, से होती हुई लसीका (लिम्फ) को लेकर के लसीकीय नलिकाओं में पहुँचती हैं।

लसीका पर्व के कार्य (Functions of Lymph Nodes)

1. लसीका पर्व अथवा लिम्फ नोड्स छलनी (filter) का कार्य करते हैं। इन नोड्स के द्वारा लसीका छन जाती है जिससे ये बाह्य हानिकारक पदार्थ एवं रोग को उत्पन्न करने वाले जीवाणु (microorganism) आदि को रोक लेती हैं।
2. लिम्फ नोड्स में लसीका कोशिकाओं (लिम्फोसाइट्स) विशेष रूप से बी–लिम्फोसाइट्स की उत्पत्ति होती है तथा इनमें वृहत्भक्षक कोशिकायें होती हैं (macrophages) विद्यमान रहती हैं, जिनसे उत्पन्न एण्टीबॉडीज़ एवं एन्टीटॉक्सिन्स (antitoxins) द्वारा रोगोत्पादक जीवाणु आदि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार लसीका पर्व (lymph nodes) रोगोत्पादन जीवाणु आदि को रक्त में जाने से रोक कर अथवा उन्हें नष्ट कर के संक्रमण को शरीर के अन्य भाग में फैलने से रोकते हैं।
3. ये नोड्स परिसंचरण के लिये नये लिम्फोसाइट्स का निर्माण करते हैं।

समूह लिम्फ नोड्यूल्स (Aggregated Lymph Nodules)

गुच्छों के रूप में रहने वाले ये नोड्यूल्स ''पेयर की चित्तियाँ'' या ''पेयर्स पैचेज़'' भी कहलाती हैं। समूह लिम्फ नोड्यूल्स गुच्छों के रूप में बिना कैप्सूल के टाँसिल्स, छोटी आंत

एवं एपेण्डिक्स (appendix) में पाये जाते हैं। इन्हीं के समान ऊतक के गुच्छे श्वसन पथ की ब्रोन्काई के साथ पाये जाते हैं।

कार्य

ये प्लाज़्मा कोशिकाओं का निर्माण करते हैं। ये आँत में विद्यमान एन्टीजन की अनुक्रिया में अधिक मात्रा में प्रतिरक्षा हेतु एन्टीबॉडीज़ स्रावित करते हैं।

टॉन्सिल (Tonsil)

टॉन्सिल अथवा गलतुण्डिकायें संयोगी ऊतक के एक कैप्सूल में बन्द लसीकाभ ऊतक के पिण्ड होते हैं। प्रतिरक्षा तंत्र के दृष्टिकोण से ये अंग अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं –

1. **फेरिन्जियल टॉन्सिल** (Pharyngeal Tonsil) – ये नासिका के पीछे ग्रसनी की ऊपरी पश्च भित्ति में स्थित रहते हैं।
2. **पैलाटाइन टॉन्सिल** (Palatine Tonsil) – ग्रसनी के दोनों ओर स्थित रहते हैं।
3. **लिंग्वल टॉन्सिल** (Lingual Tonsil) यह जीभ के मूल में स्थित रहते हैं।

कार्य–

1. ये शरीर पर आक्रमण करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट करने में सक्षम होते हैं।
2. ये अधिकांश संक्रामक जीवाणुओं को लिम्फोसाइट्स द्वारा नष्ट कर देती हैं।
3. टॉन्सिल में उपस्थित प्लाज़्मा कोशिकायें–एण्टीबॉडी के निर्माण में सहायक होती हैं।

यद्यपि टॉन्सिल प्रायः संक्रमण की अवस्था से शरीर की रक्षा करते हैं, परन्तु कभी–कभी ये स्वयं भी संक्रमण का शिकार हो जाते हैं। ऐसे में कभी–कभी शल्य क्रिया द्वारा इन्हें निकाल भी लिया जाता है।

16.3.3 प्लीहा (Spleen)- उदरीय गुहा में बाईं पसलियों के नीचे एवं आमाशय के बाहरी किनारे पर स्थित नलिकाविहीन ग्रन्थि के रूप में कार्य करने वाला यह अंग प्रतिरक्षा तंत्र की एक मजबूत कड़ी है। प्लीहा लसीकाभ ऊतक से निर्मित एक चपटी दीर्घआयताकार (oblong) बड़ी ग्रन्थि है। यह उदरीय गुहा में बायीं ओर बायें अधः पर्शुकीय क्षेत्र (left hypochondriac region) में डायाक्रॉम के नीचे (inferior) आमाशय के फण्ड्स, बायें वृक्क, पैंक्रियाज़ की पुच्छ एवं बड़ी आँत के प्लीहा बंग (splenic flexure) को स्पर्श करती हुई स्थित रहती है। इसका आकार एवं आकृति लगभग एक बन्द मुट्ठी के समान होती है। यह लगभग 12 से0मी0 लम्बी, 7 से0मी0 चौड़ी तथा 2.5 से0मी0 मोटी होती है तथा वजन में लगभग 200 ग्राम होती है। रंग गहरा बैंगनी होता है।

संरचना

यह गहरे बैंगनी रंग की संरचना वाली ग्रन्थि दो किनारों वाली जिन्हें एण्टीरियर और पास्टीरियर किनारे कहते हैं, होती है। डायाक्रॉम के नीचे वाली सतह उत्तल (convex) होती है। दूसरी सतह अवतल (concave) होती है, जो आमाशय के फण्ड्स, बायें वृक्क, पैंक्रियाज़ एवं splenic flexure के सम्पर्क में होती है। अवतल सतह पर नीचे की ओर एक हाइलम होता है जिससे होकर प्लीहा धमनी (splenic artery). तंत्रिकायें (nerves) एवं

लसीका वाहिकायें (lymph vessels) प्लीहा में प्रवेश करती है तथा प्लीहज शिरा (splenic vein) इसके बाहर की ओर निकलती है। इसकी ऊतकीय संरचना लिम्फ पर्वों के समान ही होती है जो चारों ओर से संयोगी ऊतक के एक कैप्सूल से ढकी होती है, जिससे अन्दर की ओर निकले तन्तुबन्धों (trabeculae) से प्लीहा कई भागों में विभाजित हो जाती है। इन विभक्त भागों को खण्ड या लोब्यूल्स (lobules) कहा जाता है। मेड्यूला के क्रियात्मक भाग में एक कोशिकीय पदार्थ रहता है जिसे प्लीहज–लुगदी (splenic pulp) कहा जाता है, यह लाल–सफेद दो तरह के रंगों की होती है। लाल लुगदी (red pulp) सम्पूर्ण प्लीहा में अधिक मात्रा में विद्यमान रहती है, जिसमें सफेद pulp के छोटे–छोटे द्वीप समूह बिखरे रहते हैं। सफेद लुगदी (white pulp) प्लीहण धमनी की छोटी–छोटी शाखाओं के चारों ओर लिम्फोसाइट्स के घने पिण्डों (compact masses) की बनी होती हैं। ये पिण्ड जो अन्तरालों में होते हैं, को प्लीहज पर्विकायें या स्प्लीनिक नोड्यूल्स (splenic nodules) अथवा मैल्पीघियन कॉर्प्यूसेल्स (melpighian corpuscles) कहा जाता है। लाल लुगदी के भीतर रक्त से भरे हुए शिरीय विवर (venous sinusoids) होते हैं तथा इनमें मोनोसाइट्स एवं वृहत भक्षक कोशिकायें (macrophgnes) विद्यमान रहती हैं। इनमें से मोनोसाइट्स रक्त प्रवाह के लिये श्वेत रक्त कोशिकाओं के निर्माण में सहायता करती हैं तथा भक्षक कोशिकायें (फैगोसाइट्स) टूटने वाली लाल रक्त कोशिकाओं का भक्षण कर के उन्हें विखण्डित कर देती हैं।

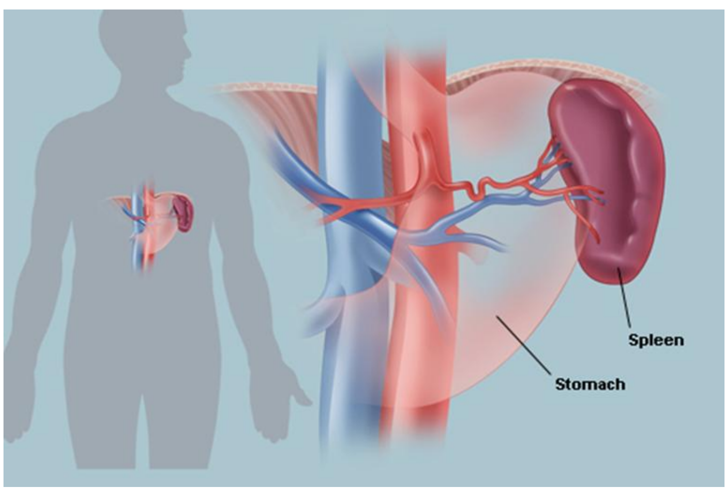

Splenic धमनी की शाखायें प्लीहा में पहुँचकर रक्त को सीधे splenic pulp में डालती हैं। प्लीहा में कोशिकायें नहीं होती है, जिससे रक्त प्लीहा की कोशिकाओं के सीधे सम्पर्क में आता है और शिरीय विवरों (venous sinusoid) में संचित हो जाता है। यहाँ से रक्त प्लीहण शिरा की शाखाओं में चला जाता है, जिनके आपस में मिलने से प्लीहण

(splenic) शिरा (vein) बनती है। यह splenic vein पोल्टर शिरा (polter vein) से मिल जाती है।

प्लीहा के कार्य (Functions of the Spleen)

1. प्लीहा का मुख्य कार्य रक्त को छानना (filter) एवं भक्षक कोशिकाओं – लिम्फोसाइट्स और मोनोसाइट्स का निर्माण करना है।
2. प्लीहा में उपस्थित प्रचुर मात्रा में विद्यमान भक्षक कोशिकायें (macrophages) रक्त से क्षय (damage) या मृत लाल कोशिकाओं को एवं रक्त प्लेटलेट्स, सूक्ष्म जीवाणुओं तथा अन्य कोशिकीय विजातियों को हटाने में सहायता प्रदान करती है।
3. भक्षक कोशिकायें जीर्ण लाल रक्त कोशिकाओं (R.B.C.) के हीमोग्लोबिन के आयरन (लौह तत्व) को भी हटाती है तथा अस्थि मज्जा (bone marrow) में लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन के लिये इसे परिभ्रमण अथवा परिसंचरण में लौटा देती है। हीमोग्लोबिन (Hb) के टूटने से बिलिरूबिन पिगमेण्ट का उत्पादन होता है, जो यकृत में परिसंचरित होता है।
4. प्लीहा के रक्त में विद्यमान एण्टीजन्स (antigens) लिम्फोसाइट्स के क्रियाशील बनकर कोशिकाओं में विकसित होते हैं तथा एण्टीबॉडीज़ (antibodies) का निर्माण करते हैं।
5. गर्भावस्था में गर्भस्थ भ्रूण में प्लीहा लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण करती है। बाद में यह ताजी बनी लाल रक्त कोशिकाओं एवं प्लेटलेट्स को संचयित (store) रखती है तथा आवश्यकता पड़ने पर इन्हें रक्त प्रवाह में छोड़ती है।
6. स्प्लीन रक्त के भण्डार का काम करती है।

16.3.4 थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland)- थाइमस ग्रन्थि वक्षीय गुहा (thorasic cavity) में स्टर्नम के पीछे श्वास प्रणाल (trachea) के विभाजन के स्तर पर स्थित लसिकाभ ऊतक से निर्मित गुलाबी–भूरे रंग की एक नलिकाविहीन ग्रन्थि है। यह हृदय एवं इसकी मुख्य रक्त वाहिकाओं के ऊपर विद्यमान रहती है। इसमें दो खण्ड पाये जाते हैं जो दायें खण्ड एवं बायें खण्ड के रूप में संयोगी ऊतक द्वारा जुड़े होते हैं। ये खण्ड जो थाइमस ग्रन्थि को बनाते हैं, संयोजी ऊतक के एक कैप्सूल में बन्द होते हैं। प्रत्येक खण्ड तन्तुबन्धों (trabeculae) द्वारा छोटे–छोटे खण्डों (lobules) में विभाजित रहता है। प्रत्येक खण्ड (lobule) में बाहर की ओर कॉर्टेक्स (cortex) तथा अन्दर केन्द्र में मेड्यूला (medulla) होता है। कॉर्टेक्स (cortex) भाग में अनेकों छोटे–छोटे लिम्फोसाइट्स जिन्हें सामान्यतः थ्रॉम्बोसाइट्स कहा जाता है, रहते हैं। जिनमें से अधिकांश लिम्फोसाइट्स थाइमस ग्रन्थि से निकलने के पूर्व विघटित (degenerate) हो जाते हैं।

थाइमस ग्रन्थि के अन्दर केवल कोशिकायें (capillaries) होती हैं। मेड्यूला में इयोसिनोफिलिक कॉर्पस्किल्स (eosinophilic corpuscles) जिन्हें थाइमिक कॉर्पस्किल्स (thymic corpuscles) या हैसल्स कार्पस्किल्स कहा जाता है, पाई जाती है। इन कार्पस्किल्स

या कोशिकाओं के केन्द्र पर काचाभ (hyline) पदार्थ रहता है, जो चारों ओर से चपटी एपिथीलियल कोशिकाओं के साथ संयोजी ऊत्तक के घेरे से घिरा रहता है।

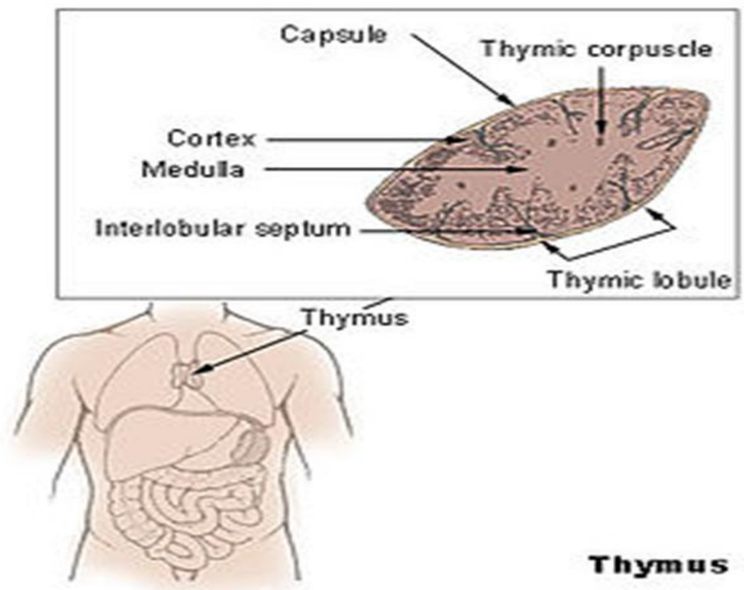

Thymus

कार्य (Functions)-भूर्णावस्था में थाइमस ग्रन्थि लिम्फोसाइट्स का निर्माण करती है तथा यह एण्टीबॉडीज़ बनाने में सहायता प्रदान करती है। जन्म के समय यह ग्रन्थि बड़ी होती है लगभग 12 से 15 ग्राम तक पायी गई है। युवावस्था में यह मात्र सूत्र के समान रह जाती है।

नवजात शिशु में यह ग्रन्थि एण्टीबॉडीज़ बनाती है तथा रोग क्षमता या इम्यूनिटी संस्थान के प्रारम्भिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मुख्यतः टी–कोशिकाओं का निर्माण करती है जोकि इम्यूनिटी (रोगक्षमता) बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

थाइमस ग्रन्थि से स्रावित स्राव का प्रभाव जननेन्द्रियों के विकास तथा यौवनारम्भ पर पड़ता है। यह जननेन्द्रियों के स्राव को यौवनारम्भ तक नियंत्रित रखती है। यह अस्थियों के विकास पर भी नियन्त्रण रखती ळें

16.3.5 यकृत (Liver)- यकृत शरीर की सबसे बड़ी डेढ़ कि0ग्रा0 तक वजन की ग्रन्थि होती है। यह उदर गुहा के ऊपरी दाहिने भाग में स्थित होता है। यह डायाफ्राम के नीचे तथा पूरे दाहिने हाइपोकोण्ड्रियम को घेरे रहती है। यकृत की ऊपरी सतह उत्तल (convex) होती है एवं निचली सतह अवतल होती है। इसके नीचे आमाशय, पक्वाशय का प्रथम भाग तथा आंत का दाहिना ऊपरी भाग स्थित होता है। यकृत के किनारों को यदि देखें तो इसका बायां किनारा कुछ नुकीला तथा दायां किनारा कुन्द (blunt) होता है।

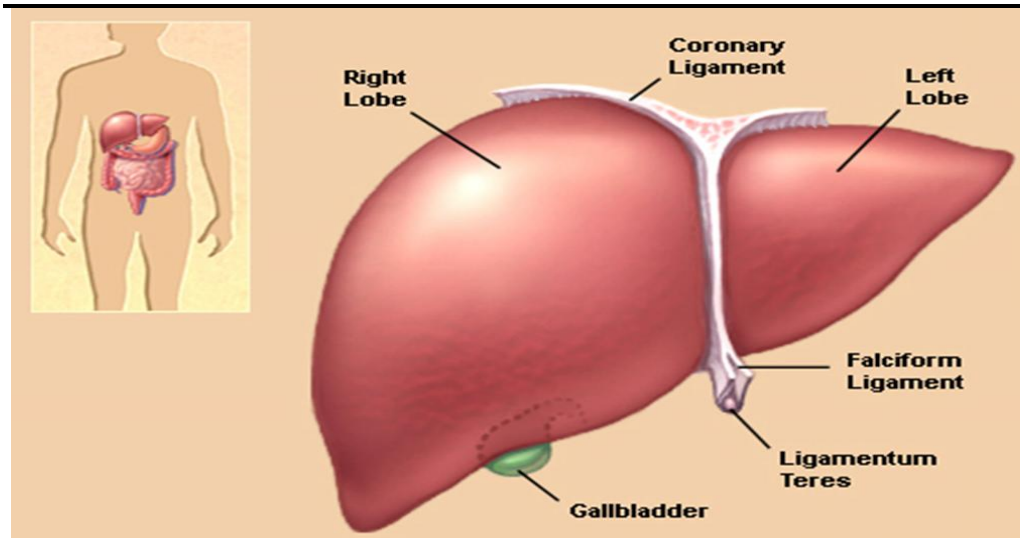

संरचना–ग्लीसन्स कैप्सूल के भीतर संयोगी ऊतक का बना हुआ यह अंग होता है। यकृत उदर की अग्रमध्य भित्ति से सटा हुआ रहता है। यह फैल्सीफॉर्म लिगामेण्ट (falciform ligament) के द्वारा दो खण्डों में विभाजित रहता है। यकृत के दोनों खण्ड अलग–अलग आकार के होते हैं जिसमें दाहिना खण्ड बायें खण्ड की तुलना में छः गुना तक बड़ा पाया जा सकता है। यह दाहिना खण्ड दाहिने वृक्क एवं बड़ी आँत के दाहिने कोल्कि (हिपेटिक) प्लेक्सर के ऊपर स्थित रहता हैं यकृत का बायां खण्ड जो कि छोटा है आमाशय के ऊपरी भाग में स्थित रहता है। यकृत का दायां खण्ड पीछे (ventral) सतह पर और दो खण्डों में विभाजित रहता है। एक ऊपर का आयताकार खण्ड (quadrate lobe) तथा दूसरा नीचे का पुच्छल खण्ड (caudate lobe) होता है। आयताकार (quadrate lobe) एवं पुच्छल खण्डों (caudate lobes) के बीच एक अनुप्रस्थ विदर अथवा दरार होती है, जिसे पोर्टा हिपेटिस (Porta hepatis) या यकृत द्वार (liver door) कहते हैं। इसमें से होकर यकृत में कई वाहिकायें, तंत्रिकायें, लसीका वाहिनियां एवं वाहिकाओं का आना जाना होता है। इन वाहिकाओं, तंत्रिकाओं, लसिका वाहिनियाओं का वर्णन सूक्ष्म रूप से इस प्रकार है –

1. **यकृत धमनी** (Hepatic Artery)

यह धमनी यकृत में शुद्ध रक्त पहुँचाती है। यकृत में पहुँचने वाले रक्त का लगभग 20 प्रतिशत इसी के द्वारा पहुँचता है।

2. **पोर्टल शिरा** (Portal Vein)

यह आमाशय, छोटी एवं बड़ी आँत, अग्नाशय और प्लीहा से रक्त लाकर यकृत में पहुँचाती है। शेष 80 प्रतिशत रक्त इसी के द्वारा यकृत में पहुँचता है। इस रक्त में छोटी आँत द्वारा अवशोषित पोषक तत्व विद्यमान रहते हैं।

3. **यकृत शिरा** (Hepatic Vein)

यह यकृत में आये हुए रक्त को रक्त महाशिरा में पहुँचाने का कार्य करती है।

4. **यकृत वाहिकायें** (Hepatic ducts)

पित्त वाहिकायें जिन्हें सूक्ष्म पित्त नलिकायें (bile canaliculi) कहा जाता है, पित्त केशिकायें (bile capillaries) जो यकृत की कोशिकाओं से पित्त को एकत्रित करने के बाद संयोजित होती है, से निर्मित होती है। यकृत द्वारा स्रावित पित्त सूक्ष्म पित्त नलिकाओं में पहुँचता है। यह पित्त यहाँ से दाहिनी एवं बायीं यकृत वाहिकाओं (right & left hepatic ducts) में पहुँचता है। ये दोनों यकृत वाहिकायें पित्ताशय (gall bladder) से निकली पित्ताशयी या सिस्टिक वाहिका (cystic duct) से एक बिन्दु पर मिलकर उभय पित्त वाहिका (common bile duct) बनाती है। कॉमन बाइल डक्ट मुख्य अग्नाशय वाहिका (pancreatic duct) से संयुक्त हो जाती है और फिर ग्रहणी (पक्ताशय) के दूसरे भाग में खुलती है।

यकृत के खण्ड बहुत छोटे–छोटे खण्डकों (lobules) से मिलकर बने होते हैं, जो पंचकोणीय या षट्कोणीय आकृति के होते हैं। अधिकांश खण्डक लगभग 1 मि0मी0 डायामीटर के होते हैं और उनमें केन्द्रीय शिरा (central vein) रहती है। खण्डकों के भीतर यकृत कोशिकायें (hepatocytes) एक कोशिका मोटाई वाली परतों में व्यवस्थित रहती हैं तथा केन्द्री शिरा से खण्डक के किनारे (edge) की ओर फैलती हैं। प्रत्येक खण्डक के कोने (corner) में एक प्रतिहारी क्षेत्र (portal area) होता है, जो पोर्टल शिरा, यकृत धमनी, पित्त वाहक एवं तंत्रिका की शाखाओं से मिलकर बना होता है।

यकृत कोशिकाओं की पंक्तियों के बीच में शिरानालाभ (sinusoids) विद्यमान रहते हैं, जो पोर्टल शिरा एवं यकृत धमनी की शाखाओं से रक्त का परिवहन करते हैं। प्रतिहारी क्षेत्र की धमनी एवं शिरा से रक्त शिरानालाभ को बहता है। तथा फिर केन्द्रीय शिरा में पहुँचता है। वहाँ से यह खण्डक से यकृत शिरा में पहुँचता है। शिरानालाभ की भित्तियाँ एण्डोथीलियल कोशिकाओं से आस्तरित रहती है। इन आस्तरित कोशिकाओं से कैमोसाइटिस स्टीलेट रेटिक्युलोएण्डोथीलियल कोशिकायें संलग्न रहती हैं, जो यकृत में होकर गुजरने वाली जीर्ण–क्षीर्ण लाल एवं श्वेत रक्त कोशाओं, सूक्ष्म जीवाणुओं एवं बाह्य पदार्थों को पचा लेता है। इस दृष्टि से यह प्रतिरक्षा तंत्र का एक मुख्य अंगक है।

अभी आपने यकृत की स्थूल एवं सूक्ष्म संरचना के विषय में पढ़ा। अब आप यकृत के कार्यों के विषय में पढ़ेंगे और जानेंगे कि यह यकृत सुरक्षात्मक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण अंगक है। यह मेटाबोलिक, संग्राहक एवं स्रावी दृष्टिकोण से सभी तरह से महत्वपूर्ण कार्य करता है।

चयापचयी कार्य (Metabolic Functions)

1. कार्बनिक यौगिकों से एमीनो एसिड को अलग करता है।
2. ऊतक कोशिकाओं से यूरिया का निर्माण एवं प्रोटीन के मेटाबोलिज़्म से उत्पन्न एमीनो एसिड को यूरिया में बदलता है।
3. वसीय अम्लों का ऑक्सीकरण करता है।
4. प्रतिरक्षा तंत्र में सम्मिलित यह अंग रक्त की मृत लाल कोशिकाओं को रक्त से अलग कर लेता है एवं हिमेटिन नामक लौह तत्व को संचित कर लेता है।
5. औषधियों एवं विषैले पदार्थों का निर्विषीकरण (detoxification) कर शरीर की रक्षा करता है।
6. एण्टीबॉडीज़ एवं एण्टीटॉक्सिन्स का निर्माण करता है।

7. यह शरीर का तापक्रम बनाये रखता है जो कि उपापचय अथवा चयापचय के लिये अति आवश्यक तथ्य है।

संग्रही कार्य (Storage Functions)

1. यह ग्लूकोज़ को ग्लाइकोजन के रूप में संग्रहित रखता है एवं आवश्यकतानुसार पुनः ग्लूकोज़ में भी परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।
2. विटामिन A, D, E, K जो कि वसा में घुलनशील हैं, को संचित रखता है।
3. प्रोटीन के सरल उत्पाद एमीनो एसिड को संचित रखता है।
4. विटामिन B_{12} जो कि एण्टी एनिमिक विटामिन हैं, को संचित रखता है।

स्रावी कार्य (Secretory Functions)

1. पित्त का स्रावण करता है जिससे वसा का पाचन एवं अवशोषण करने में मदद करता है।
2. पित्त का स्रावण रासायनिक, हॉर्मोनल अथवा तंत्रिका तंत्र की क्रियाशीलता से परिवर्तित भी हो जाता है, परन्तु पित्त पाचन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण द्रव है। पाचन ठीक होने पर ही शरीर समय पर एवं सही मात्रा में आवश्यक पोषक प्राप्त कर सुचारू रूप से अपना कार्य कर पायेगा।

16.3.6 अस्थि मज्जा (Bone Marrow)- अस्थि मज्जा)Bone Marrow) अस्थियों में पाया जाने वाला एक विशेष लचीला व वसा युक्त ऊतक है। यह शरीर की कुछ बड़ी अस्थियों में पाया जाता है। यह बड़ी अस्थियाँ खोपड़ी, उरोस्थि (Sternum), पसली (Ribs), श्रोणीय (Pelvis), ऊर्वस्थि (Femur) अस्थियाँ हैं। अस्थि मज्जा छोटी अस्थियों में नहीं पाया जाता। वयस्कों में पूरे शरीर भार का लगभग चार प्रतिशत भार अस्थि मज्जा का होता है। इसका वजन लगभग 2.6 कि.ग्रा. तक होता है। अस्थित मज्जा लसीका तंत्र का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि यह लसीका (lymph) के प्रवाह को विपरीत दिशा में प्रवाहित होने से रोकता है।

अस्थि मज्जा प्रतिरक्षा तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि अस्थि मज्जा में ही रक्त कोशिकाओं का प्रादुर्भाव व विकास होता है।

अस्थि मज्जा मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं –

1. लाल मज्जा
2. पीली मज्जा

इनका वर्णन निम्न प्रकार है –

1. **लाल मज्जा** (Red Marrow)

लाल मज्जा में मुख्यतः हीमेटोपोयटिक ऊतक (Hematopoietic Tissue) होते हैं। लाल मज्जा में लाल रक्त कोशिकायें, अधिकतर श्वेत रक्त कोशिकायें एवं प्लेटलेट्स उत्पन्न होती हैं। जन्म के समय सम्पूर्ण मज्जा लाल ही होती हैं। धीरे–धीरे समय के साथ व उम्र बढ़ने के साथ इसमें से कुछ पीली मज्जा में बदल जाती हैं। लाल मज्जा मुख्यतः फ्लैट अस्थियों (Flat Bones) जैसे कूल्हे की हड्डी (hip bone), छाती की हड्डी (breast bone), कशेरुका (vertebrae), (shoulder blades) में पायी जाती हैं। लम्बी व बड़ी हड्डियों

जैसे ऊर्वस्थि (femur) और प्रगण्डिका (humerus) के एपीफीसल (epiphyseal) अंत में स्थित स्पोंजी (spongy) तत्व में भी लाल मज्जा पाई जाती है। लाल मज्जा में बहुत सी रक्त वाहिकायें (blood vessels) और कोशिकायें (capillaries) पाई जाती हैं।

2. **पीली मज्जा** (Yellow Marrow)

पीली मज्जा में मुख्यतः वसा कोशिकायें होती हैं। इसमें श्वेत रक्त कोशिकाओं का एक भाग उत्पन्न होता है। पीली मज्जा लम्बी व बड़ी हड्डियों के मध्य भाग के खोखले हिस्से में पायी जाती है। बहुत अधिक खून बहने की स्थिति में आवश्यकता पड़ने पर पीली मज्जा लाल मज्जा में परिवर्तित हो सकती है ताकि नई रक्त कोशिकाओं का निर्माण हो सके।

स्ट्रोमा (Stroma)

अस्थि मज्जा का स्ट्रोमा (stroma) रक्त कोशिकाओं के निर्माण की प्रक्रिया में सीधे शामिल नहीं होता। पीली मज्जा अधिकतर इस स्ट्रोमा का हिस्सा होती है। कुछ कोशिकायें जैसे फाइब्रोब्लास्ट (Fibroblasts), मैक्रोफेज़ (macrophages), एडिपोसाइट (adipocytes), ऑस्टियोब्लास्ट (osteoblasts) आदि कोशिकायें अस्थि मज्जा स्ट्रोमा का गठन करती हैं।

इन कोशिकाओं में मेक्रोफेज़ कोशिकायें लाल रक्त कोशिकाओं की उत्पत्ति में सहायक होती हैं। यह हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) उत्पादन के लिये लौह पहुँचाती हैं।

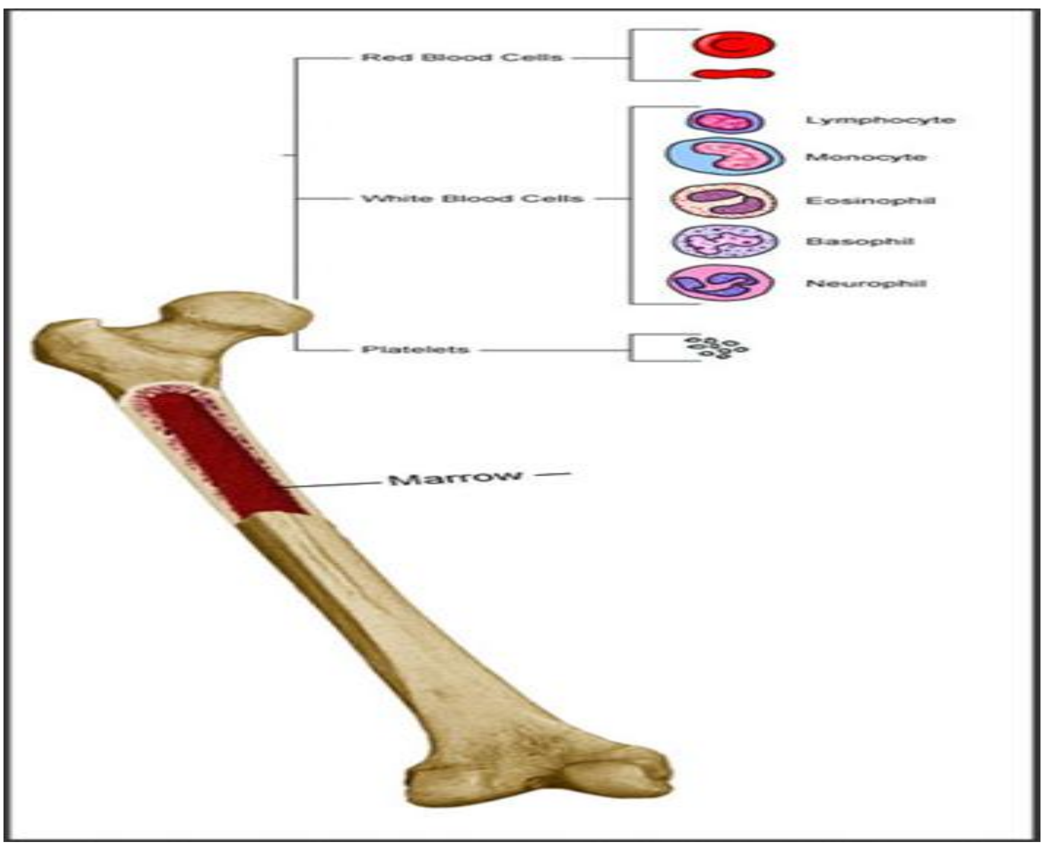

स्टैम कोशिकायें (Stem Cells)

स्टेम कोशिकायें अस्थि मज्जा के स्ट्रोमा में पाई जाती हैं। इनको मज्जा स्ट्रोमल कोशिकायें (Marrow Stromal Cells) भी कहा जाता है। यह कोशिकायें बहुत सारी दूसरी कोशिकाओं के मध्य अंतर पहचान रकती हैं। यह अस्थि मज्जा के लिये द्वारपाल का कार्य करती हैं। इन्हीं स्टेम कोशिकाओं से श्वेत रक्त कोशिकायें (leucocytes), लाल रक्त कोशिकायें (erythrocytes) व प्लेटलेट्स (thrombocytes) उत्पन्न होती हैं, जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली में व परिसंचरण में सहायक होती हैं।

अपरिपक्व स्टेम कोशिकायें स्ट्रोमा में अवस्थित हो अस्वस्थ, कमजोर या क्षतिग्रस्त कोशिका का इंतजार करती हैं और जैसे ही ऐसी किसी कोशिका या कोशिकाओं का पता चलता है, यह तुरन्त उसकी कमी पूरी करने के लिए रक्त कोशिकाओं के उस प्रकार में बदल जाती है जिसकी शरीर को आवश्यकता होती है और इस प्रकार यह शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में सहायता करती हैं।

अस्थि मज्जा अवरोध (Bone Marrow Barrier)

अस्थि मज्जा में एक अवरोध (barrier) भी पाया जाता है, जिसका कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह अवरोध अपरिपक्व कोशिकाओं को मज्जा से बाहर जाने से रोकता है।

परिपक्व कोशिकाओं में ही मैम्ब्रेन प्रोटीन (membrane protein) होते हैं जो रक्त वाहिकाओं से कोशिकाओं को संलग्न कर बाहर निकालने में सहायता करते हैं।

अभ्यास प्रश्नः–

सही / गलत

(i) प्लीहा का मुख्य कार्य रक्त को छानना एवं भक्षक कोशिकाओं का निर्माण करना है।

(ii) लिम्फ नोड्स परिसंचरण के लिए नये लिम्फोसाइट्स का निर्माण करते हैं।

(iii) फैरिन्जियल टॉन्सिल ग्रसनी के दोनों ओर स्थित रहते हैं।

(iv) यकृत की ऊपरी सतह अवतल व निचली सतह उत्तल होती है।

(v) यकृत ग्लूकोज को ग्लाइकोजन के रूप में संग्रहित रखता है।

(vi) पैलाटाइन टॉन्सिल ग्रसनी के नीचे की ओर स्थित रहते हैं।

रिक्त स्थानों की पूर्तिः–

(i) अस्थि मज्जा के दो प्रकार .... एवं.......................... हैं।

(ii) लाल मज्जा में .... , ...एवं.................................... उत्पन्न होती हैं।

(iii) पीली मज्जा में मुख्यतः... कोशिकाएँ होती हैं।

(iv) श्वेत रक्त कणिकाएँ... के नाम से भी जानी जाती हैं।

(v) .... टॉन्सिल जीभ के मूल में स्थित होते हैं।

(vi) भ्रूणावस्था में थाइमस ग्रन्थि.. का निर्माण करती है।

16.4 सारांश

प्रतिरक्षा तंत्र में सम्मिलित अंग बाह्य जीवाणुओं, विषाणुओं के प्रति शरीर को तैयार करते हैं। लसीका पर्व एक छलनी का कार्य करते हैं जो हानिकारक जीवाणुओं को छान लेते हैं। लसीका नोड्स में उपस्थित वृहत्भक्षक कोशिकायें एण्टीबॉडीज़ और एण्टीटॉक्सिन्स द्वारा रोगोत्पादक जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार टॉन्सिल आदि जीवाणुओं से होने वाले दुष्प्रभावों से शरीर की रक्षा करते हैं। प्लीहा भी एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है जो लिम्फ नोड्स के समान ही छलनी का कार्य करता है। यह रक्त को छानकर हानिकारक जीवाणुओं, विषाणुओं को अलग कर लेता है। ये लिम्फोसाइट्स और मोनोसाइट्स का निर्माण कर हानिकारक जीवाणुओं का भक्षण करने मे सक्षम होती हैं। प्लीहा के रक्त में विद्यमान एण्टीजन्स लिम्फोसाइट्स को क्रियाशील बनाकर कोशिकाओं में विकसित होते हैं एवं एण्टीबॉडीज़ का निर्माण करते हैं।

T- कोशिकायें जो थाइमस ग्रन्थि में बनती हैं, इम्यूनिटी को बढ़ाने में सहायक होती हैं। प्रतिरक्षा तंत्र की महत्वूपर्ण इकाई यकृत चयापचयी, संग्रही एवं स्रावी कार्यों के द्वाराशरीर के विकास एवं प्रतिरक्षा में मदद करता है।

इस प्रकार आपने पढ़ा कि उपरोक्त सभी अंग प्रतिरक्षा संस्थान को बनाते हैं एवं हमारे जीवित रहने, स्वस्थ रहने और प्रसन्न रहने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

16.5 शब्दावली

1.	अन्तरालीय द्रव	–	दो कोशिकाओं के बीच में स्थित द्रव
2.	चयापचय	–	उपापचय, मेटाबॉलिज़्म
3.	उपरिस्थ	–	ऊपर स्थित, सुपरफीशियल
4.	डायफ्राम	–	उपस्थिमय संरचना जो फेफड़ों की गतिशीलता के लिये उत्तरदायी है।

16.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

सही / गलत

(i) सही

(ii) सही

(iii) गलत

(iv) गलत

(v) सही

(vi) गलत

रिक्त स्थानों की पूर्तिः–

(i) लाल मज्जा, पीली मज्जा

(ii) लाल रक्त कोशिकाएँ, श्वेत रक्त कोशिकाएँ, प्लेटलेट्स

(iii) वसा कोशिकाएँ।

(iv) ल्यूकोसाइट्स

(v) लिंग्वल टॉन्सिल

(vi) लिम्फोसाइट्स

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रा0 अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)
4. Principles of Anatomy & Phisiology, Geroard J. Tortora and Bryan H. Derrickson (2008), John Wiley & Sons (India)

16.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रतिरक्षा संस्थान में लसीका की भूमिका को समझाइये।
2. प्लीहा किस प्रकार शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है, स्पष्ट कीजिये।
3. थाइमस ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य बताइये।
4. यकृत ग्रन्थि के कार्यों का वर्णन करते हुए इसकी संरचना पर भी प्रकाश डालिये।
5. अस्थि मज्जा के कार्य समझाइये।

इकाई 17 प्रतिरक्षा प्रणाली के कार्य

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 प्रतिरक्षा तंत्र के कार्य
17.4 रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रकार
17.4.1 सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता
17.4.2 अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता
17.5 एन्टीबॉडीज़
17.6 एण्टीजन्स
17.7 सारांश
17.8 शब्दावली
17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

इससे पहले आपने प्रतिरक्षा प्रणाली के अंग एवं उनकी संरचना के सम्बन्ध में पढ़ा। आपने जाना कि कौन–कौन से अंग मिलकर प्रतिरक्षा प्रणाली की मजबूत दीवार बनाते हैं, जो कि शरीर की रक्षा करती है। लसीका, प्लीहा, यकृत, थाइमस ग्रन्थि आदि प्रतिरक्षा प्रणाली के प्रमुख अंग हैं।

इस इकाई में आप प्रतिरक्षा प्रणाली किस प्रकार हमारे शरीर की सुरक्षा करती है उसकी आन्तरिक कार्य प्रणाली क्या है यह जानेंगे। आप जानेंगे कि किस प्रकार हमारा यह शरीर विभिन्न भक्षक कोशिकाओं जैसे न्यूट्रोफिल, मेक्रोफेज़, बेसोफिल आदि प्राकृतिक किलर कोशिकायें, सूजन, ज्वर आदि के द्वारा सहज रूप से हमारी मदद करता है एवं अर्जित प्रतिरोधक क्षमता के रूप में T-cells, β-cells हमारे शरीर को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। आगे आप प्रतिरक्षा प्रणाली के कार्यों के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक पढ़ेंगे।

17.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप –

- सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता के विषय में जानेंगे।
- सहज रोग क्षमता के प्रमुख रक्षक अंगों के सम्बन्ध में जानेंगे।
- रक्त की प्रतिरक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में जानेंगे।
- अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता के विषय में जानेंगे।

- β -cells के बारे में जानेंगे।
- T-cells के बारे में जानेंगे।
- एण्टीबॉडीज़ के विषय में जानेंगे।
- एण्टीजन्स के विषय में जानेंगे।

17.3 प्रतिरक्षा तंत्र के कार्य

- मानव शरीर अक्सर 'युद्ध की स्थिति' में वार्णित किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि मानव शरीर लगातार ऐसे बाहरी तत्वों से लड़ता रहता है जो शरीर के लिये अहितकर हैं तथा शरीर को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते रहते हैं। इन बाहरी तत्वों में बैक्टीरिया (Bacteria), वाइरस (virus) टोक्सिन (Toxin), फफूंद (Fungi) व परजीवी (Parasite) शामिल हैं। यह तत्व अपने उत्पन्न होने की सही परिस्थिति में शरीर पर हमला कर शरीर को कमजोर बना देते है जिसके परिणामस्वरूप शरीर सही तरह से कार्य नहीं कर पाता है। अगर प्रतिरक्षा प्रणाली न हो तो शरीर पर इन तत्वों का हमला ही होता रहेगा और शरीर व उसके अंग विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो जाएगे। अतः प्रतिरक्षा प्रणाली का मुख्य कार्य शरीर में एक ऐसी सेना का निर्माण करना है जो इन बाहरी तत्वों से हमारे शरीर की रक्षा कर सकें और रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर सकें। यही प्रतिरक्षा प्रणाली या प्रतिरक्षा तंत्र है।
- प्रतिरक्षा प्रणाली अत्यन्त जटिल प्रणाली है। यह ऐसे लाखों बाहरी तत्वों की पहचान कर सकती है जो शरीर को नुकसान पहुँचा सकते हैं और यह ऐसे स्राव एवं कोशिकाओं का भी निर्माण कर सकती है जो इन बाहरी तत्वों को शरीर से हटाने में कारगर सिद्ध हो और शरीर व शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा करें।
- प्रतिरक्षा प्रणाली की सफलता का रहस्य एक व्यापक और गतिशील संचार प्रक्रिया है जिसमें लाखों कोशिकाएँ आपस में संगठित रहती हैं और एक कोशिका से दूसरों कोशिका तक संदेश भेजती रहती हैं।
- प्रतिरक्षा तंत्र की कोशिकाओं को जैसे ही किसी बाहरी तत्व के शरीर में घुसने की आहट होती है यह तुंरत ऐसे शक्तिशाली रसायनों का निर्माण करने लगती है जो कि उन तत्वों से लड़ने में सक्षम हों।
- प्रतिरक्षा तंत्र की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता यह हैं कि यह शरीर की अपनी कोशिकाओं एवं बाहरी तत्वों के बीच भेद करने की क्षमता रखता है। अगर किसी कारण से यह क्षमता कम हो जाए तो प्रतिरक्षा तंत्र

शारीरिक कोशिकाओं एवं बाहरी तत्वों के बीच विभेद नहीं पाता और अपने ही शरीर की कोशिकाओं का विनाश करने लगता है। इसे ऑटोइम्यूनिटी (autoimmunity) कहते हैं।

17.4 रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रकार

रोग प्रतिरोधक क्षमता के मुख्यतः दो प्रकार है जिनका वर्णन निम्न है –

17.4.1 सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता (Innate Immunity)

– सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जन्मजात होती है तथा सूक्ष्मजीवों के प्रति स्वतः ही सुरक्षा प्रदान करती है।

– सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता बाहरी तत्वों से लड़ने के लिए हमेशा तैयार रहती है। इसके लिए उसे किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जिस किसी तत्व से शरीर को क्षति पहुँच रही होती है उस पर यह तुरंत ही आक्रमण कर उसे नष्ट कर देती है।

– सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रमुख रक्षक वह अंग है जो सबसे पहले संक्रमण को शरीर में जानेसे रोकते हैं। यदि यह अंग ऐसी कर पाते हैं तो शरीर के लिए रोग से लड़ना आसान हो जाता है। यह प्रमुख अंग है।

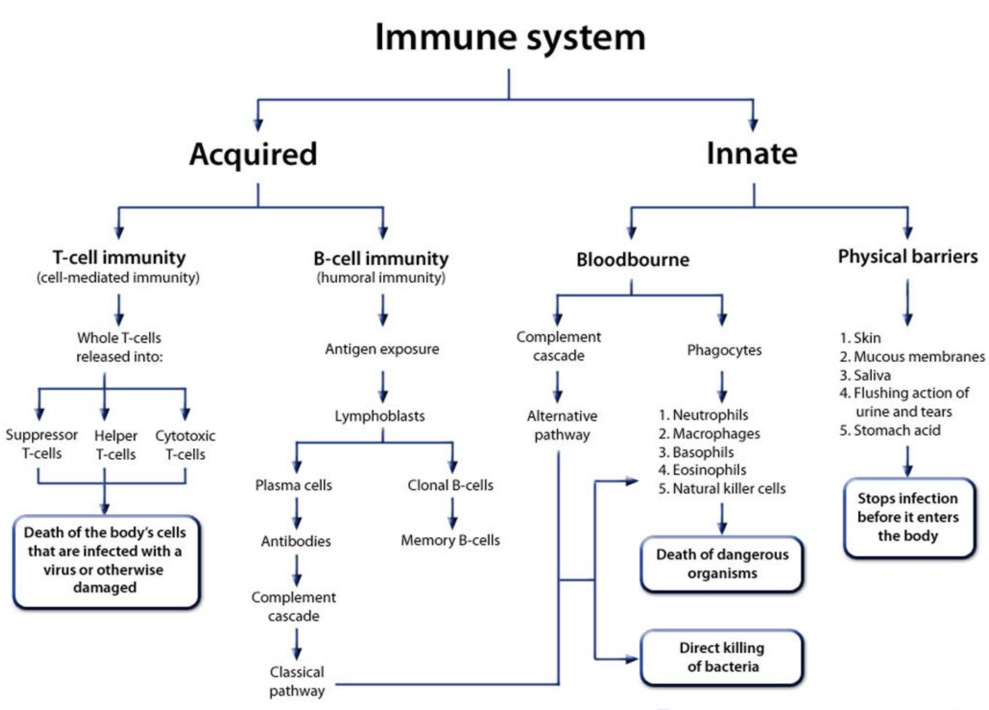

I **शारीरिक सीमायें** (Physical Barriers)

a. **त्वचा** (Skin)

त्वचा संक्रमण के लिए मुख्य रूप से बाधा का कार्य करती है और शरीर की जीवाणुओं से इस प्रकार रक्षा करती है –

- त्वचा में बहुत सी मृत कोशिकाएँ होती है जो जीवाणुओं को शरीर में जाने से रोकती हैं।
- त्वचा के अपने स्वस्थ जीवाणु होते हैं, जो नुकसान पहुॅचाने वाले जीवाणुओं से लड़कर उन्हें गुणा होने से रोकते हैं।
- त्वचा में स्वेद ग्रन्थि (Sweat Glands) व वसा ग्रन्थि (Sebaceous Glands) होती है। स्वेद ग्रन्थि शरीर से अम्लीय स्राव स्रावित करती हैं तथा वसा ग्रंन्थि सीबम (sebum) नामक स्राव स्रावित करती है जो गाढ़ा और तैलीय होता है। यह दोनों स्राव जीवाणुओं के विकास की दर में रूकावट उत्पन्न करते है।
- अगर त्वचा निरंतर नम रहे तो संक्रमण होने की संभावना बढ़ जाती है क्योंकि निरंतर नमी से त्वचा का अवरोध कमजोर हो जाता है और जीवाणुओं के उत्पन्न और गुणा होने की अधिक संभावना बन जाती है।
- इसी प्रकार यदि त्वचा में चोट या कट लग जाए तो भी संक्रमण के होने की संभावना व जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है।

b. **फेफड़े** (Lungs)

फेफड़े भी जीवाणुओं से एक सुरक्षात्मक कवच का कार्य करते है। फेफड़ों के वायु मार्ग की अस्तर (lining) चिपचिपे, गाढ़े पदार्थ 'म्यूकस' (mucous) में लिपटी होती है। इस वायुमार्ग में निरंतर हवा आती–जाती रहती है। इस हवा के साथ फेफड़ों के लिए नुकसानदेह पदार्थ भी आ जाते हैं, इसलिए फेफड़ों की सुरक्षा करना आवश्यक है। यही म्यूकस फेफड़ों की सुरक्षा करता है, श्वास प्रश्वास के समय जीवाणु, जो शरीर के लिए हानिकारक होते है, म्यूकस से चिपक जाते हैं तथा एक एंजाइम (enzyme), लाइसोज़ाइम (lysozyme), जो कि म्यूकस में पाया जाता है, इन जीवाणुओं को पचा लेता है तथा उनके अवशेषों को वायुमार्ग से बाहर फैंक देता है।

c. **आँखें** (Eyes)

आँखों से निकलने वाले आँसू भी जीवाणुओं के लिए अवरोध का कार्य करते हैं पहले यह जीवाणुओं को बहा देते है। दूसरा इनमें भी एंजाइम लाइसोजाइम होता हैं जो जीवाणुओं को पचा कर अवशेषों को बाहर फैंक देता है।

d. **मुँह** (Mouth)

हमारे मुँह में बहुत से हानिकारक जीवाणु होते हैं जो कि टूथ डिके (Tooth Decay) का कारण बनते हैं। मुँह में लार की उपस्थिति के कारण यह जीवाणु पनप नहीं पाते। लार जीवाणुओं की विनाशकारी प्रक्रिया को इस प्रकार नियंत्रित करती है –

- लार के साथ जीवाणु बह जाता है और साथ ही खाद्य कण भी बह जाते हैं जो कि जीवाणुओं का भोजन हैं।
- लार में लाइजोजाइम एन्जाइम व अन्य एंजाइम होते है जो जीवाणुओं को नष्ट करने में सहायक हैं।
- लार में बहुत सी एंटीबॉडी (Antibodies) भी पायी जाती हैं जो संक्रामक कणों की पहचान कर, उन्हें नष्ट कर देती हैं।

e. **आमाशय (Stomach)**

आमाशय में उच्च अम्लीय वातावरण के कारण जीवाणु स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। अगर कोई जीवाणु आमाशय में चला ही गया, तो वह किसी अन्य पदार्थ की तरह ही एन्जाइम्स द्वारा पचा लिया जाता है।

f. **मूत्र मार्ग (Urinary Tract)**

स्वेद की भांति मूत्र भी अम्लीय होता है तथा जीवाणुओं को शरीर से बाहर निकालने में सहायक होता है। यह मूत्रमार्गीय संक्रमण (urinary infection) को होने से रोकता है।

अगर संक्रामक जीवाणु उपरोक्त अंगों की सीमा पार कर शरीर में घुस जाते हैं, तो अन्य प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया होने लगती है। रक्त में उपस्थित श्वेत रक्त कण (white blood cells or leukocytes) जीवाणुओं पर आक्रमण कर शरीर की रक्षा करते हैं। रक्त में होने वाली प्रतिक्रयायें निम्न हैं –

II रक्त की प्रतिरक्षा प्रक्रिया (Immune Responses in Blood)

a. **कॉम्प्लीमेन्ट कैसकेड** (Complement Cascade)

यह 20 प्रोटीन द्वारा निर्मित एक प्रणाली है। सारे कॉम्प्लीमेन्ट प्रोटीन जिगर द्वारा ही स्रावित होते हैं तथा रक्त के प्लाज़्मा प्रोटीन में भी पाये जाते हैं। यह कॉम्प्लीमेन्ट प्रोटीन कुछ ऐसे पदार्थों को पहचानने में

सक्षम होते हैं जो केवल हानिकारक जीवाणुओं में ही पाये जाते हैं। जीवाणुओं का पता चलते ही यह जीवाणु की दीवार में छेद कर उन्हें फटने पर मजबूर कर देते हैं। यह फैगोसाइट्स (phagocytes) को भी जीवाणुओं पर आक्रमण करने के लिए संकेत भेजते हैं।

b. **फैगोसाइट्स** (Phagocytes)

फेगोसाइट्स निम्न प्रकार के होते हैं –

(i) **न्यूट्रोफिल** (Neutrophils) – यह फेगोसाइट्स का एक बहुत ही सामान्य प्रकार है। न्यूट्रोफिल सबसे पहले हानिकारक जीवाणु या पदार्थ से खुद को बाँध लेता है। फिर 'स्यूडोपोडिया' (pseudopodia) द्वारा जीवाणु को अपने अंदर समेट कर उसे नष्ट कर देता है। यह स्वयं नष्ट होने से पहले उसके 20 जीवाणु नष्ट कर सकता है।

(ii) **मैक्रोफेज़** (Macrophage) – यह न्यूट्रोफिल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है और स्वयं नष्ट होने के पूर्व 100 जीवाणुओं तक नष्ट कर सकता है। यह शक्तिशाली हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के काम आता है।

(iii) **बेसोफिल** (Basophil) – यह सूजन पैदा करता है।

(iv) इयोस्नोफिल (Eosinophil) – यह मुख्यतः परजीवियों को नष्ट करते हैं। यह किसी एलर्जी के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं।

(v) **जीवाणुनाशक एजेंट** (Bactericidal Agent) – यह ऑक्सीडाइज़िंग एजेंट के द्वारा जीवाणुओं को नष्ट करते हैं। इन ऑक्सीडाइजिंग एजेंट को ऑक्सीडेन्ट्स (oxidants) कहते हैं। ऑक्सीडेन्ट्स शरीर के ऊतकों के लिये भी हानिकारक होते हैं, इसलिये फैगोसाइट्स में इनका आवश्यकता पड़ने पर ही उपयोग किया जाता है।

c. **प्राकृतिक किलर कोशिकायें** (Natural Killer Cells)

प्राकृतिक किलर कोशिकायें बोन मैरो से उत्पन्न होती हैं। यह कोशिकायें शरीर की उन कोशिकाओं को नष्ट करती हैं, जो जीवाणुओं द्वारा संक्रमित हो चुकी हैं। यह कैंसर और ट्यूमर कोशिकाओं की पहचान करने में सक्षम होती हैं।

d. **सूजन** (Inflammation)

जब भी शरीर में ऊतकों को किसी प्रकार की क्षति पहुँचती है, तो शरीर के ऊतकों से ऐसे रासायनिक द्रव्य निकलते हैं जो सूजन उत्पन्न करते हैं।

लाली, सूजन, गर्मी व दर्द सूजन के लक्षण हैं। यह लक्षण निम्न कारणों से उत्पन्न होते हैं।

- स्थानीय रक्त प्रवाह बढ़ना।
- रक्त वाहिकाओं से पानी एवं प्रोटीन का रिसाव
- आहत क्षेत्र में बहुत सारी प्रतिरक्षक कोशिकाओं का आना–जाना
- दर्द रिसेप्टर्स में उत्तेजना

सूजन की वजह से जीवाणु आहत स्थान पर और प्रहार नहीं कर पाते।

e. **ज्वर** (Fever)

ज्वर शरीर के सामान्य तापमान से बढ़ा हुआ तापमान है। ज्वर शरीर के लिए सामान्यतः हानिकारक नहीं होता। यह शरीर की एक प्रतिक्रिया के रूप में उभरता है, जब फेगोसाइट्स जीवाणुओं को नष्ट कर रहे होते हैं। शरीर में और जीवाणुओं का गुणन न हो इसलिए शरीर के तापमान को बढ़ाकर यह स्थिति नियंत्रित की जा सकती है।

17.4.2 अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता (Acquired Immunity)

- अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता (acquired immuinity) जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश के उपरान्त क्रियान्वित होती है। यह क्षमता जीवाणुओं को पहचानने के बाद ही अपना कार्य शुरू करती है। यह पहले से किसी भी प्रकार के जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए तैयार नहीं होती है। एक बार जीवाणुओं के प्रति प्रतिक्रिया करने के बाद अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली शरीर की रक्षा के लिए रक्षात्मक प्रतिक्रियाओं का निर्माण तीव्र गति से करने लगती है।
- अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली में मुख्य रूप में दो कोशिकायें – बी–कोशिकायें (β-cells) व टी–कोशिकायें (T-cells) शरीर की रक्षात्मक प्रक्रिया में कार्य करती है।
- सहज रोग प्रतिरोधक प्रणाली की अपेक्षा अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली को पहले यह जानना आवश्यक होता है कि किस तरह के जीवाणु ने शरीर पर आक्रमण किया है। यह जानने के बाद अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली उस जीवाणु से लड़ने के लिए आवश्यक तैयारी कर उस जीवाणु से किस प्रकार लड़ना है, इसकी एक अभिकल्प तैयार कर जीवाणु पर आक्रमण करती है। इसमें थोड़ा समय लगता है क्योंकि यह विशिष्ट जीवाणु के लिए विशिष्ट अभिकल्प तैयार करती है।
- सारे बाहरी तत्वों की सतह पर एक अलग सा पैटर्न होता है जिसकी वजह से अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली कोशिकायें उन्हें पहचान लेती हैं। जैसे

ही अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकायें इस पैटर्न से युक्त तत्वों को पहचान लेती है, वैसे ही वे उन्हें बाहरी घोषित कर उन पर आक्रमण कर देती हैं। इन सारे बाहरी तत्वों को एन्टीजन (antigen) कहते हैं। एन्टीजन वह हैं जिनको अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकायें ढूँढ सकती हैं व आक्रमण कर सकती हैं।

- अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली के सक्रियण के लिए अन्य कोशिकाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। मेक्रोफेज़ (macrophage) कोशिकायें इस सक्रियण को गतिशील करने में सहायक होती हैं।
- जब जीवाणु शरीर पर आक्रमण करते हैं तो सफेद रक्त कोशिकाओं (white blood cells) का एक प्रकार लिम्फोसाइट (lymphocyte) उन जीवाणुओं पर आक्रमण करते हैं।

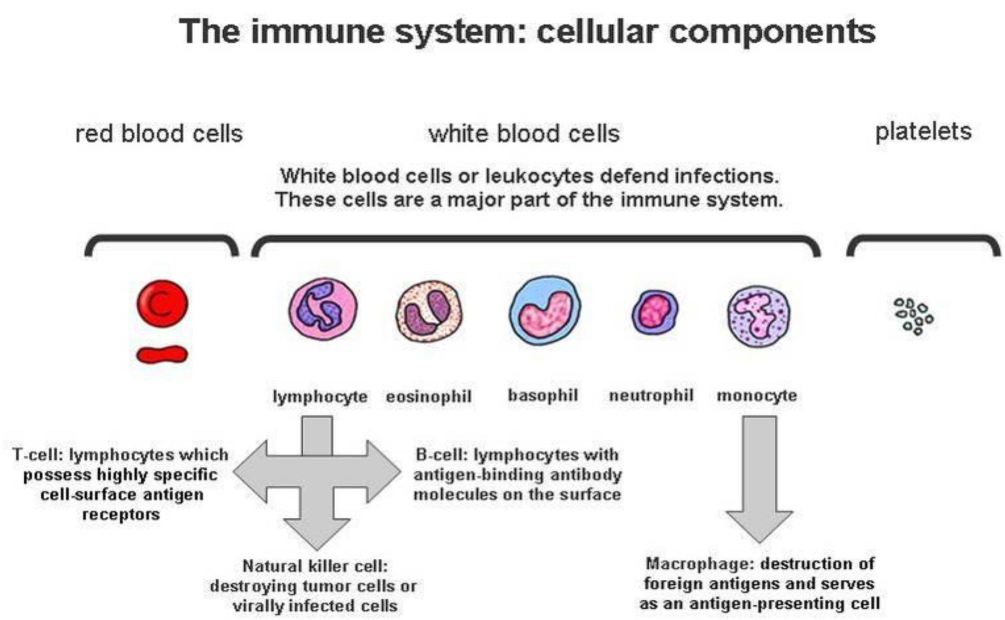

लिम्फोसाइट के दो प्रकार – टी–कोशिकायें (T-cells) और बी–कोशिकायें (β-cell) अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली के अन्तर्गत आते हैं। इनका वर्णन निम्न है –

I. **टी–कोशिकायें** (T-Cell)

- टी–कोशिका प्रतिरक्षा प्रणाली को कोशिका मीडिएटेड इम्यूनिटी (cell mediated immunity) भी कहते हैं।
- टी–कोशिकायें लिम्फोसाइट्स का लगभग 80 प्रतिशत भाग होती हैं। इनको टी कोशिका इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland) में परिपक्व होती हैं।
- टी–कोशिकायें अपनी प्रारम्भिक अवस्था में स्टेम कोशिका (stem cell) के रूप में उभरती हैं, जिसका उत्पादन बोन मैरो (bone marrow) द्वारा होता है। परिपक्व होने के लिए यह स्टेम कोशिकायें थाइमस ग्रन्थि में स्थानान्तरित हो जाती हैं, जहाँ यह तीन सप्ताह तक रह सकती हैं। थाइमस ग्रन्थि में टी–कोशिकाओं को टी–कोशिका ग्राहक (T-cell receptors) मिलते हैं। यह ग्राहक कई प्रकार के होते हैं। ग्राहकों के आधार पर ही टी–कोशिका का प्रकार एवं कार्य निर्धारित होता है।

टी–कोशिका सक्रियण (T-cell Activation)

टी–कोशिकायें बाहरी तत्वों का स्वयं पता नहीं लगा पातीं। इसके लिए उन्हें एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं – एंटीजन प्रेसेंटिंग कोशिका (Antigen presenting cells) की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। एंटीजन प्रेसेंटिंग कोशिका किसी भी बाहरी तत्व को नष्ट करने की क्षमता रखती है। जैसे ही यह कोशिकायें किसी बाहरी तत्व से टकराती हैं, वैसे ही यह टी–कोशिकाओं को प्रक्रिया करने के लिए संकेत भेजती हैं, जिससे रक्त में टी–कोशिकायें प्रवाहित होने लगती हैं और बाहरी तत्वों से लड़ने के लिए तैयार हो जाती हैं।

टी–कोशिका के कार्य (Function of T-Cell)

- बी–कोशिकाओं (B-Cell) के विकास एवं सक्रियण के लिए संकेत भेजती हैं।
- उन कोशिकाओं का सक्रियण करना जो बाहरी तत्वों को नष्ट कर सकते हैं।
- वाइरल संक्रमण (Viral Infection) के समय साइटोटॉक्सिक टी–कोशिका (Cytotoxic T-Cells) को उद्दीपित करते हैं।
- अन्य कोशिकाओं एवं दूसरी प्रकार की टी–कोशिकाओं, मैक्रोफेज़ेस व इयोस्नोफिल्स को विकास के लिए संकेत भेजती है।

टी–कोशिका के प्रकार (Types of T-Cells)

टी–कोशिकायें भी निम्न तीन प्रकार की होती हैं –

a. साइटोटॉक्सिक टी–कोशिका
b. सप्रैसर टी–कोशिका
c. हैल्पर टी–कोशिका

इनका वर्णन निम्न है –

a. **साइटोटॉक्सिक टी–कोशिका** (Cytotoxic T-cell)

- यह कोशिकायें वाइरल संक्रमित कोशिकाओं से शरीर की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- यह कोशिकाएँ कुछ प्रकार के अर्बुदों के प्रति प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में और ऊतक ग्राफ्ट्स के नकारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।
- इन कोशिकाओं को सक्रिय एन्टीजन प्रेसेन्टिंग कोशिकाओं की तथा हैल्पर टी–कोशिकाओं की आवश्यकता पड़ती है।
- हेल्पर टी–कोशिकाओं साइटोटोक्सिक टी–कोशिकाओं को सक्रिय करने में सहायक होती हैं जिसके परिणामस्वरूप साइटोटोक्सिक टी–कोशिकाओं अपने लक्ष्य पर निशाना साध उन्हें नष्ट करने लगती हैं।
- साइटोटोक्सिक टी–कोशिकायें एक प्रोटीन परफोरिन (Perforin) का निर्माण करती हैं जो कि बाहरी हानिकारक तत्वों को जड़ से नष्ट कर देता है।
- बाहरी तत्वों को नष्ट करने के लिए साइटोटोक्सिक टी कोशिका पहले अपने आपको उस तत्व से जोड़ लेती है और फिर उसमें परफोरिन प्रोटिन स्थानांतरित कर उसे स्वतः नष्ट होने पर बाध्य कर देती है इससे आस–पास की कोशिकाओं को हानि नहीं पहुँचती है।
- जब वह तत्व नष्ट हो जाता है तो साइटोटोक्सिक टी कोशिका उस कोशिका से विलग हो दूसरे संक्रमित कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए चले जाते हैं।

b. **सप्रैसर टी–कोशिका** (Suppressor T-Cell)

- सप्रैसर टी–कोशिका जैसा कि नाम से विदित है, साइटोक्सिक टी–कोशिका एवं हैल्पर टी–कोशिका के कार्यों को दबाती है।
- सप्रैसर टी–कोशिकायें प्रतिरक्षा प्रणाली की अन्य कोशिकाओं के कार्यों को दबाता हे ताकि शरीर के अपने ऊतकों को बाहरी तत्वों से लड़ते समय अधिक हानि न हो ।

- सप्रैसर टी–कोशिका शरीर को ऑटोइम्यूनिटी के आक्रमण से बचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऑटोइम्यूनिटी (Auto immumity) में शरीर का प्ररितरक्षा तंत्र बाहरी हानिकारक तत्वों को नष्ट करने की अपेक्षा अपने ही शरीर की कोशिकाओं को नष्ट करने लगता है। जिससे शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

c. **हैल्पर टी–कोशिका** (Helper T-Cell)

- हैल्पर टी–कोशिकायें टी–कोशिकाओं का सबसे सामान्य प्रकार है। यह पूरी टी–कोशिकाओं का लगभग तीन–चौथाई भाग बनाती है।
- यह कोशिकायें प्रतिरक्षा तंत्र की विभिन्न प्रकार से सहायता करती हैं और शरीर की सभी प्रतिरक्षा प्रक्रियाओं को नियंत्रित करती हैं।
- इन कोशिकाओं से एक पदार्थ निकलता है जिसे लिम्फोकाइन (lymphokines) कहते हैं। यह पदार्थ हैल्पर टी–कोशिकाओं द्वारा प्रतिरक्षा तंत्र के दूसरे भागों को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं तथा दूसरी टी–कोशिकाओं को विकसित होने और आक्रमण करने के लिए उद्दीप्त करता है। यह पदार्थ बी–कोशिकाओं को विकसित और परिपक्व होने में सहायता प्रदान करता है।
- एड्स (AIDS – Acquired Immuno Deficiency Syndrome) में हैल्पर टी–कोशिकाओं की अत्यधिक कमी हो जाती है जिससे शरीर संक्रमण के लिए नाजुक बन जाती है और शरीर में रोग आसानी से उत्पन्न हो जाते हैं।
- हैल्पर टी–कोशिकाओं का बी–कोशिकाओं के विकास पर प्रभाव होता है। संक्रमण की स्थिति में अगर टी–कोशिकायें नष्ट ही जायें तो बी–कोशिकायें भी काम नहीं कर सकती, अर्थात निष्क्रिय रहती हैं।

II **बी कोशिकायें** (B-Cell)

- बी–कोशिका प्रतिरक्षा प्रणाली को ह्यूमरल मीडिएटेड इम्यूनिटी (Humoral Mediated Immunity) भी कहा जाता है।
- बी कोशिकायें लिम्फोसाइट्स का 10–15 प्रतिशत भाग होती है। इनको बी कोशिका इसलिये कहा जाता है क्योंकि यह बोन मैरो (Bone Merrow) में परिपक्व होती है।

- टी–कोशिकाओं की भांति बी–कोशिका भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में स्टैम कोशिका (stem cell) के रूप में उभरती है। पर थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland) में स्थानान्तरित होने की अपेक्षा यह बोन मैरो में ही परिपक्व होती हैं। बोन मैरो में ही बी–कोशिकाओं को ग्राहक मिलते हैं और यह रक्त में प्रवाहित हो जाती हैं। एक बार प्रवाहित होने के बाद बी–कोशिकायें शरीर को लिम्फॉइड ऊतक (Lymphoid tissue) में चली जाती हैं, जहाँ पर वह टी–कोशिकाओं के नज़दीक परन्तु अलग स्थित रहती हैं।

बी–कोशिका सक्रियण (B-Cell Activation)

अधिकतर बी–कोशिकाओं का सक्रियण लिम्फ नोड्स में होता है। लिम्फ नोड्स में एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं द्वारा बाहरी तत्वों को नष्ट कर अवशेषों को बी व टी–कोशिकाओं को प्रस्तुत किया जाता है। इस बाहरी तत्व के ग्राहक को पहचानकर बी–कोशिका गुणा होने लगती हैं। टी–कोशिका द्वारा भी बी–कोशिका सक्रिय होती है। सक्रियण के बाद बी–कोशिका सम्पूर्ण शरीर में पलायन करती है और प्लाज़्मा कोशिकाओं (Plasma Cells) में बदल जाती हैं।

बी–कोशिका के कार्य (Function of B-Cell)

- बी–कोशिका शरीर की सुरक्षा में दो महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है –
- लक्ष्य एंटीजन के प्रति उपयुक्त एण्टीबॉडी के उत्पादन को सुनिश्चित करती है
- लक्ष्य एण्टीजन को टी–कोशिका के सामने पेश करती है और टी–कोशिका सक्रियण के लिए संकेत भेजती है।

बी–कोशिका के प्रकार (Types of B-Cells)

बी–कोशिकाओं के निम्न दो प्रकार हैं –

a. प्लाज़्मा बी–कोशिका
b. स्मृति बी–कोशिका

इनका वर्णन निम्न है –

a. **प्लाज़्मा बी–कोशिका** (Plasma B-Cell)

- प्लाज़्मा बी–कोशिकायें बी–कोशकाओं का वह प्रकार है जो केवल एक प्रकार की एण्टीबॉडी को उत्पन्न एवं स्रावित करने के लिए प्रतिबद्ध होती है। यह परिसंचरण में मिलने वाली एण्टीबॉडी की वृद्धि करती है।
- जब तक यह कोशिकायें एण्टीबॉडी स्रावित करती रहती हैं, तब तक शरीर की सुरक्षा बनी रहती है।

b. **स्मृति बी–कोशिका** (Memory B-Cell)

- स्मृति बी–कोशिकायें बी–कोशिकाओं के सक्रियण के बाद भी बन सकती है। यह कोशिकायें लिम्फ नोड्स में पलायन कर जाती हैं जहाँ यह उस विशिष्ट एण्टीजन के लिए तैयार रहती हैं, जो दोबारा भी मिल सकता है।
- अगर कोई एण्टीजन दोबारा आता है, तो यह कोशिकायें उस पर आक्रमण करने और गुणा होने के लिए तैयार रहती हैं।

17.5 एण्टीबॉडी (Antibody)

- एण्टीबॉडी एक प्रोटीन पदार्थ होता है जो विशिष्ट रूप से किसी एण्टीजन को बाँधने की प्रतिक्रिया में लिम्फोसाइट्स (Lumphocytes) द्वारा उत्पन्न होता है।
- यह संक्रमित जीवाणु को लक्ष्य बनाता है।
- यह प्रतिरक्षक कोशिकाओं को अलग करता है।
- यह टॉक्सिन को न्यूट्रेलाइज़ (neutralize) करता है।
- यह संचलन से बाहरी एण्टीजन को हटाता है।
- यह उन कोशिकाओं को उद्दीप्त करता है, जो बाहरी तत्व खा सकें।
- एण्टीबॉडीज़ पूर्व में हुए जीवाणुज, विषाणुज, टीकाकरण (Vaccination) अथवा गर्भाशय में माता से शिशु में स्थानान्तरित होने के परिणामस्वरूप पायी जाती हैं।
- किसी ज्ञात एण्टीजन उत्तेजन के अभाव में भी एण्टीबॉडी उत्पन्न हो सकती हैं।
- सभी एण्टीबाड़ीज़ प्लाज़्मा प्रोटीनों के एक विशेष वर्ग इम्युनोग्लोबिन (immunoglobin) की होती हैं। मानव वयस्क में सामान्यतः चार प्रकार की इम्यूनोग्लोबिन पाई जाती हैं, जिन्हें संक्षेप में Ig कहा जाता है। इनका वर्णन निम्न है–

a. **इम्यूनोग्लोबिन जी** (IgG)

यह सबसे अधिक पाई जाने वाली और प्रमुख इम्यूनोग्लोबिन है। यह प्रतिरक्षा तंत्र की बहुत सारी कोशिकाओं से सम्पर्क करने में सक्षम होती हैं, इसलिए यह बाहरी तत्वों को पहचानते ही उन पर आक्रमण करने के लिए कोशिकाओं को उद्दीप्त कर सकती हैं।

यह प्रसव से पूर्व प्लेसेण्टा (Placenta) से होकर शिशु में पहुँच जाती है और उसमें उन बीमारियों का सामना करने के लिए थोड़ी सुरक्षा प्रदान करती है जो उसे जन्म के बाद हो सकती है।

b. **इम्यूनोग्लोबिन ए** (IgA)

यह बहिस्रावी ग्रन्थियों (exocrine glands) के स्रावों, जैसे दूध, श्वसनीय पथ, आँत की श्लेष्मा तथा आँसुओं आदि में पाई जाने वाली इम्यूनोग्लोबिन है जो श्लेष्मिक कला की सतह की जीवाणुओं एवं विषाणुओं के संक्रमण से रक्षा करती है। यह दूसरी सबसे अधिक पाई जाने वाली इम्यूनोग्लोबिन है।

c. **इम्यूनोग्लोबिन एम** (IgM)

यह प्रायः प्रत्येक रोगक्षम अनुक्रिया में संक्रमण के प्रारम्भिक काल में बनने वाली इम्यूनोग्लोबिन है। सूक्ष्माणु के प्रारम्भिक सम्पर्क से सबसे पहले IgM एण्टीबॉडी ही बनती है।

d. **इम्यूनोग्लोबिन ई** (IgE)

- यह आकार में सबसे बड़ी इम्यूनोग्लोबिन है पर स्वस्थ मनुष्य के शरीर में यह बहुत कम मात्रा में पाई जाती है। परजीवी संक्रमण के दौरा IgE के स्तर में वृद्धि हो जाती है। इसका स्तर उस अवस्था में भी बड़ा होता है जब कोई एलर्जी हो जाती है।
- IgE की अधिक वृद्धि के कारण हेफीवर (Hayfever) की स्थित बन जाती है।

17.6 एण्टीजन्स

शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाला या उसमें उत्पन्न होने वाला ऐसा पदार्थ जो प्रतिपिण्ड या एण्टीबॉडी के बनने को प्रेरित करता है, जो विशेष रूप से इसी के साथ प्रतिक्रिया करता है, एण्टीजन कहलाता है। एण्टीजन – एण्टीबॉडी प्रतिक्रिया इम्यूनिटी का आधार होती है। एक पूर्ण एण्टीजन होने तथा एण्टीबॉडी निर्माण को प्रेरित करने के लिए एण्टीजन का अणु भार इससे अधिक होना आवश्यक है। एण्टीजन प्रायः प्रोटीन होते हैं। कोई एण्टीजन शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाला जैसे जीवाणु, विषाणु, कवक, जीवविष (Toxin) बाह्य रक्त कोशिकायें आदि होते हैं तथा वैक्सीन के रूप में इन्जैक्शन द्वारा शरीर में पहुँचाये जाने वाले कृत्रिम एण्टीजन होते हैं।

अभ्यास प्रश्नः–

सही/गलत

(i) प्रतिरक्षा तंत्र शरीर की अपनी कोशिकाओं एवं बाहरी तत्वों के बीच भेद करने की क्षमता रखता है।

(ii) सहज प्रतिरोधक क्षमता जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश करने के उपरान्त क्रियान्वित होती है।

(iii) ज्वर शरीर के सामान्य तापमान से घटा हुआ तापमान है।

(iv) शरीर में उतकों को क्षति पहुँचने की अवस्था में सूजन उत्पन्न हो जाती है।

(v) त्वचा में स्वेद ग्रन्थि और वसा ग्रन्थि होती हैं।

(vi) एड्स में हैल्पर टी.कोशिकाएँ अधिक हो जाती हैं।

रिक्त स्थानों की पूर्तिः–

(i) अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली में मुख्य रूप से दो कोशिकाएँ............................ .... और.. होती हैं।

(ii) बी कोशिकाएँ.. एवं.. प्रकार की होती हैं।

(iii) बी कोशिका प्रतिरक्षा प्रणाली को .... इम्यूनिटी भी कहा जाता है।

(iv) टी कोशिकाएँ.. में परिपक्व होती हैं।

(v) शरीर को ऑटोइम्यूनिटी के आक्रमण से बचाने में .... महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(vi) बी कोशिकाएँ... में परिपक्व होती हैं।

17.7 सारांश

मानव शरीर निरन्तर ऐसे तत्वों से लड़ता रहता है, जो शरीर को नुकसान पहुँचाते रहते हैं। हानिकारक जीवाणु, विषाणु आदि लगातार शरीर को नुकसान पहुँचाकर कमजोर बनाते रहते हैं। यदि प्रतिरक्षा प्रणाली न हो तो शरीर के अंग रोगग्रस्त हो कर शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे एवं जीवन सम्भव न हो सकेगा। यह प्रणाली सही समय पर सही स्राव को करने की तीव्र एवं सटीक क्षमता द्वारा हमारे शरीर की सुरक्षा करती है। सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता के माध्यम से हमारा शरीर विभिन्न विपरीत परिस्थितियों में सहज एवं सक्षमता बनाये रखता है।

17.8 शब्दावली

1. स्वेद ग्रन्थि – पसीने की ग्रन्थि, sweat gland
2. सीबम – एक प्रकार का गाढ़ा व तैलीय पदार्थ
3. म्यूकस – गाढ़ा चिपचिपा पदार्थ

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सही / गलत

(i) सही
(ii) गलत
(iii) गलत
(iv) सही
(v) सही
(vi) गलत

रिक्त स्थानों की पूर्तिः–

(i) बी कोशिकाएँ, टी कोशिकाएँ
(ii) प्लाज्मा, स्मृति
(iii) ह्यूमरल मीडिएटिड
(iv) थाइमस ग्रन्थि
(v) सप्रैसर टी कोशिका
(vi) बॉन मैरो

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रा0 अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)
6. Principles of Anatomy & Phisiology, Geroard J. Tortora and Bryan H. Derrickson (2008), John Wiley & Sons (India)

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रतिरक्षा तंत्र से क्या आशय है, समझाइये।
2. सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता से आप क्या समझते हैं, विस्तापूर्वक समझाइये।
3. अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता को विस्तार पूर्वक समझाइये।
4. एण्टीबॉडी एवं एण्टीजन को समझाइये।
5. संक्षिप्त टिप्पणी –
   (i) टी–कोशिकाओं के प्रकार व कार्य
   (ii) बी–कोशिकाओं के कार्य